वैद्यविद्यावरेण्यसुरपालमुनिविरचितः

वृक्षायुर्वेद

(उपवन-दकार्गलविज्ञान-तरुरोपण व चिकित्सा विधि)

संपादक एवं व्याख्याकार

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

बनारस आयुर्वेद सीरीज

६

✦✦✦

वैद्यविद्यावरेण्यसुरपालमुनिविरचितः

वृक्षायुर्वेदः

(उपवन-दकार्गलविज्ञान-तरुरोपण व चिकित्सा विधि)

सान्वय 'मोहनबोधिनी' हिन्दीव्याख्योपेतम्

संपादक एवं व्याख्याकार

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

BANARAS AYURVEDA SERIES
6

+++

Surapala's

VṚKṢĀYURVEDA

(An ancient Treatise on plant life)

With
Original Sanskrit text, translation and commentaries.

Editor & Commentator
Dr. Shrikrishna 'Jugnu'

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

पुरोवाक्

प्राचीन भारत में विज्ञान की जिन शाखाओं पर ऋषियों ने गहन चिंतन आरम्भ किया था, उनमें वृक्षायुर्वेद भी एक था। कृषि शास्त्र के साथ ही वनस्पति विज्ञान पर अनुसंधान आरंभ हो गया था। कृषि से पूर्व वृक्ष ही मानव के आश्रय-आवास, आहार और आनन्द के आधार रहे। वायुपुराण और महाराजा भोजकृत समराङ्गणसूत्रधार के सहदेवाधिकाराध्याय पर चिन्तन किया जाए तो वृक्षवास से मानव के यायावर जीवन में ठहराव आया जिसे कृषि के प्रति आस्था और विश्वास ने दृढ़ता प्रदान की।

कालान्तर यदि यज्ञभूमि के शोधन के लिए वृक्षों का संहार किया गया तो ऋषियों को अवज्ञान हुआ कि वृक्षों का सार ही सृष्टि के विकास में सहायक है, ऐसे में मारिषा-सोम की अवधारणा का विकास हुआ। ऋषि मनीषा ने वृक्षों में चैतन्य की अवधारणा को भी प्रतिपादित किया। अगस्त्य, काश्यपादि ऋषियों ने वृक्षविज्ञान में प्रयोग प्रारम्भ किए और आश्रयद्रुम, मिश्रित द्रुम, संकरद्रुम जैसे विचार ही नहीं दिए वरन् ऐसे प्रायोगिक चमत्कार भी सृष्टि के सम्मुख रखे। इस प्रकार उद्भिज विद्या या वृक्ष विद्या का विकास निरन्तर रहा। कालान्तर में मानव एवं अन्य जीवनोपयोगी प्राणियों की चिकित्सा विधियों के साथ ही साथ द्रुम व्याधि, निदान व उपचार की विधियाँ भी खोजी गईं। 'वृक्षायुर्वेद' इसी चिरन्तन चिन्तन का सुविचार है। मत्स्यपुराण सिद्ध करता है कि वेदों के साथ ही यह वृक्ष विषयक ज्ञान भी लुप्त हो गया था, जिसका भगवान् मत्स्य ने पुनः कथन किया था। भारत में विभिन्न राजवंशों के काल में इस विषय पर लगागार कार्य होता रहा। उद्यानिकी अथवा बागवानी हमारे जनजीवन का अहम् अङ्ग रही।

मनु, काश्यप, सारस्वत प्रभृति ऋषियों ने इस विषय में चिन्तन कर शास्त्रों का प्रणयन किया- परंपरा ऐसा बताती है। पुराणों ने इस विषय को अक्षुण्ण बनाए रखने की दिशा में सहयोग किया तो वराहमिहिर की संहिताओं- समास संहिता, बृहत्संहिता एवं एतद् विषयक अन्य ग्रंथों, नीति एवं वास्तु-शिल्पशास्त्रों ने भी इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया। नाना दृष्टियों से वृक्ष विद्या पर विचार हुआ। सुरपाल का 'वृक्षायुर्वेद' इन समस्त विचार धाराओं, स्थापनाओं का समन्वित और सुन्दर-सार रूप है। इसका संपादनकाल दसवीं-ग्यारहवीं सदी निर्धारित किया गया है।

वर्ष 1993 से 1995 तक जब मैं भारतीय गौरव के प्रतीक महाराणा प्रताप के दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र (1571-1600 ई.) द्वारा लिखित वृक्षायुर्वेद विषयक

कृति 'विश्ववल्लभ' के संपादन और अनुवाद में लगा था तब ज्ञात हुआ कि इस विषय पर बहुतेरे ग्रन्थ लिखे गए हैं। विश्ववल्लभ की भूमिका के लिए मैंने जब पूर्ववर्ती ग्रंथों की तलाश प्रारम्भ की तो विष्णुधर्मोत्तरपुराणोक्त वृक्षायुर्वेद, वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता के वृक्षायुर्वेदाध्याय, शार्ङ्गधरपद्धति के वृक्षायुर्वेदाध्याय-उपवनविनोद, मत्स्य व अग्निपुराणोक्त वृक्षायुर्वेद, वृक्षारोपणविधि, चालुक्य भूलोकमल्ल सोमेश्वर कृत मानसोल्लास वर्णित भूधर-क्रीड़ा विमर्श जैसी कई कृतियाँ व सामग्री उजागर हुईं।

इसी दौरान वृक्षायुर्ज्ञानम् व मानसोल्लास की भूधरक्रीड़ा विषयक वर्णन तथा शार्ङ्गधरोक्त वृक्षायुर्वेद की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी मिली जिन पर पर्याप्त कार्य किया। इस बीच, मुझे मास्को, ऑक्सफोर्ड तथा इंग्लैण्ड में भी भारतीय वृक्षायुर्वेद विषयक ग्रंथों के होने का पता चला। मास्को एवं इंग्लैण्ड की इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में तो मुझे मुनि पराशर कृत कृषि कृति का पता चला जबकि ऑक्सफोर्ड की बाडलियन लाइब्रेरी में विद्यमान मातृका के आधार पर एशियन एग्री हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकन्दराबाद से प्रकाशित वृक्षायुर्वेद का पाठ मिल गया। यह अंग्रेजी अनुवाद सहित था और इसमें पाठ को मातृका की छायाप्रति के रूप में दिया गया था। कृषि वैज्ञानिकों के अध्ययन-अनुसंधान के उद्देश्य को लेकर इसका प्रकाशन किया था। मैंने पाया कि शार्ङ्गधर के अधिकांश श्लोक उसमें थे एवं चक्रपाणि के वर्णन का आधार भी उक्त ग्रंथ ही था। मेरा विश्ववल्लभ विषयक कार्य तो पूर्ण हो गया किंतु जब वृक्षायुर्वेद पर संगृहित अध्ययन सामग्री को देखा तो इस पर कार्यैच्छा जागृत हुई। प्रस्तुत कार्य इसका परिणाम है।

प्रस्तुत पाठ में वृक्षायुर्वेद का पाठ ही नहीं दिया गया है बल्कि उसका सरल हिंदी अनुवाद भी दे दिया गया है। 'भारतीय परंपरा में वृक्षायुर्वेद' शीर्षक भूमिका में ऋग्वेद से लेकर मध्यकाल तक की विद्या पर हुए चिंतन को संक्षिप्त रूप से रेखाङ्कित करने का प्रयास भी किया गया है। मूल पाठ के श्लोकों के संपादन के साथ ही पाठान्तर या सुझावपाठ और श्लोकों पर शीर्षक भी दे दिए गए हैं। अन्य पूर्व सूरियों व ग्रंथों के श्लोकों को भी दे दिया गया है ताकि भारतीय मनीषा के इस दिशा में अवदान का अवलोकन हो सके तथा विद्वज्जन तुलना भी कर सके। इतना ही नहीं, परिशिष्ट में वृक्षायुर्ज्ञानम् नामक मेवाड़ी (राजस्थान के उदयपुर अंचल में व्यवहार्य एक बोली) में लिखित ग्रंथ, विष्णुधर्मोत्तर के वृक्षायुर्वेदाध्याय व द्रुमरोपणाध्याय, मत्स्यपुराणोक्त वृक्षरोपण विधि, शुक्राचार्यकृत वृक्ष विचार, गर्गमुनि प्रोक्त वृक्षवैकृतम् आदि भी दे दिए गए हैं।

मेरी जानकारी में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। आशा है विद्वज्जनों को पसंद आएगा और शोधार्थियों-अनुसंधित्सुओं के लिए उपादेय होगा। कृषि एवं बागवानी ही नहीं, पर्यावरण एवं पारिस्थिकीय अध्ययन कार्य में लगे सज्जनों के लिए भी यह

रुचिकारक व उपयोगी होगा, ऐसी उम्मीद है। ऋषि प्रदत्त ज्ञानानुशासन की सार्वकालिकता को यह लघु ग्रंथ सम्यक्, सटीक रूप से सिद्ध करता है।

वृक्षायुर्वेद के पाठ के शोधन, संपादन और अनुवाद सहित ग्रंथ को प्रस्तुत स्वरूप देने के कार्य में सहधर्मिणी पुष्पा, सुपुत्री आयुष्मती अनुभूति चौहान व अनुज अरविंद चौहान एवं भतीजे राजेश चौहान ने पर्याप्त श्रम किया। मैं सबके स्नेहाधीन हूं। इस पाठ के लिए जिन-जिन ग्रंथों, पाण्डुलिपियों का उपयोग किया गया, उनके प्रकाशकों, संपादकों, संग्रहकर्ताओं के प्रति अनेकशः आभार। अंत में उपस्कारक ग्रंथों की सूची भी दी गई है।

मैं चिकित्सक नहीं किंतु मेरी अवधारणा है कि चिकित्साकर्म कभी निष्फल नहीं जाता, अबोले-निरीह द्रुमों की चिकित्सा के सम्बन्ध में तो यह बात और भी विचारणीय है— *क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मैत्री क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः। कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फल।* फिर, ऋग्वेद के अनुसार *कृषिन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वनप वृङ्क्ते चरित्रैः* अर्थात् भूमि को खोदता हुआ हल का फाल कृषक को फल देता है- उसी प्रकार यह कार्य भी बहुजनोपयोगी होगा, मैं पुनरापेक्षा कर रहा हूँ। मेरा यह कार्य 'स्वांतः सुखाय' ही रह जाता यदि चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के संचालक श्रद्धेय श्रीबृजमोहन दास गुप्ता इसके प्रकाशन में रुचि नहीं दिखाते। उन्होंने इसे 'बहुजन हिताय' सिद्ध करने का श्लाघनीय उपक्रम किया, वे धन्यवादार्ह है।

विद्वानों की सम्मति की सदा प्रतीक्षा रहेगी।

विदुषां वशंवदः
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

15 दक्षिण सुन्दरवास, शिवनगर
उदयपुर (राजस्थान)
2 अक्टूबर, 2003.

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्थुर्वृक्षा उर्ध्वस्वरनास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव।।

(अथर्ववेद ६,४४,१)

वृक्षायुर्वेदविधिना व्याधितन्तु यक्षाक्रमम् ।
नीरूजं मानवः कृत्वा स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।।

(विष्णुधर्मोत्तपुराण ३,२९७,१८)

विषयानुक्रमणिका

विषयः	पृष्ठाः

विषयः	पृष्ठाः

परिशिष्टम्-

भूमिका
भारतीय परम्परा और वृक्षायुर्वेद

जीव मात्र के लिए विविध दृष्टियों से परिवेश या पर्यावरण को आधारभूत माना गया है। इसमें वह अपना व्यवहार निर्धारित करता है, अपनी आवश्यकताओं को सम्भूत-सृजित और विकसित हुआ देखता है तथा उनकी पूर्णता के लिए पुरुषार्थ भी करता है। पर्यावरण ही उसे नानाविध दृष्टियों से परिपक्व और संघर्षशील बनाता है। यह पर्यावरण की अवधारणा का एक विस्तृत फलक है किंतु यदि हम उसके संक्षिप्त रूप को भी लें तो ज्ञात होता है कि हमारे अपने चतुर्दिक जो वातावरण है, वह भी पर्यावरण-पोषित है और इसका मूलाधार है- वायु, वृष्टि और वृक्ष। जीवनोपयोगी वैभव की पूर्ति का एक बड़ा सच इस 'व-त्रयी' के साथ जुड़ा है। फिर, इन तीनों में ही जीवन के विकास के सोपान भी मिले।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस वैज्ञानिक सत्य को संस्कृति के उषःकाल में ही जान लिया था। 'अथर्ववेद' में इस धारणा का बीज-वाक्य विद्यमान है- आपो वाता ओषधयः (18, 1, 17)। इसे आधुनिक विद्वानों-वैज्ञानिकों ने भी माना है कि भू-संतुलन के लिए वृक्ष-वैभव अपरिहार्य है। 'वन' ही जीव के साथ जुड़कर जीवन के आनन्दोत्स का कारण बनता है। तभी तो वृक्षों को भारतीय जीवन में पूज्य, आदरणीय कहा गया है। कुलों की परम्परा को वृक्षों की शाखाओं के रूप में जाना गया, ज्ञान के क्षेत्रों को भी इसी रूप में देखा और पहचाना गया।

संस्कृत में 'वृक्ष' पुर्ल्लिङ्गशब्द है जिसकी उत्पत्ति व्रश्च्+क्स रूप में होती है। नामलिङ्गानुशासन या अमरकोश के टीकाकार ने वृक्ष शब्द की व्युत्पत्ति के लिए यह उक्ति उद्धृत की है- 'वृक्षति वृक्ष वरणे पचाद्यच् वृश्च्यते वा ओकश्च् छेदने अक्' अर्थात् जिसने सेवा कार्य स्वीकारा हो या जो किसी वस्तु या फल को परिपक्व करें या जो किसी अन्य द्वारा उच्छ्रित किया जाए उसको वृक्ष कहा जाता है। अमरकोश में वृक्ष के तेरह पर्यायवाची दिए गए हैं— 1. वृक्ष 2. महीरूहः 3. शाखी 4. विटपी 5. पादपः 6. तरुः 7. अनोकहः 8. कुटः 9. शालः 10. पलाशी 11. द्रुः 12. द्रुमः और 13. अगमः (द्वितीय काण्ड, वनौषधि वर्ग 5)। इसी प्रकार त्रिकाण्डशेष कोश में चार अन्य पर्यायवाची भी हैं— 1. कारस्करः 2. गच्छः अथवा गक्षः 3. विष्टरः तथा 4. स्थिर (2, वनौषधि वर्ग 2)। इस प्रकार इन शब्दकोशों में कुल सत्रह पर्यायवाची मिलते हैं। देशज व अन्य पर्याय भी हो

भूमिका

भारतीय परम्परा और वृक्षायुर्वेद

जीव मात्र के लिए विविध दृष्टियों से परिवेश या पर्यावरण को आधारभूत माना गया है। इसमें वह अपना व्यवहार निर्धारित करता है, अपनी आवश्यकताओं को सम्भूत-सृजित और विकसित हुआ देखता है तथा उनकी पूर्णता के लिए पुरुषार्थ भी करता है। पर्यावरण ही उसे नानाविध दृष्टियों से परिपक्व और संघर्षशील बनाता है। यह पर्यावरण की अवधारणा का एक विस्तृत फलक है किंतु यदि हम उसके संक्षिप्त रूप को भी लें तो ज्ञात होता है कि हमारे अपने चतुर्दिक जो वातावरण है, वह भी पर्यावरण-पोषित है और इसका मूलाधार है- वायु, वृष्टि और वृक्ष। जीवनोपयोगी वैभव की पूर्ति का एक बड़ा सच इस 'व-त्रयी' के साथ जुड़ा है। फिर, इन तीनों में ही जीवन के विकास के सोपान भी मिले।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस वैज्ञानिक सत्य को संस्कृति के उष:काल में ही जान लिया था। 'अथर्ववेद' में इस धारणा का बीज-वाक्य विद्यमान है- आपो वाता ओषधय: (18, 1, 17)। इसे आधुनिक विद्वानों-वैज्ञानिकों ने भी माना है कि भू-संतुलन के लिए वृक्ष-वैभव अपरिहार्य है। 'वन' ही जीव के साथ जुड़कर जीवन के आनन्दोत्स का कारण बनता है। तभी तो वृक्षों को भारतीय जीवन में पूज्य, आदरणीय कहा गया है। कुलों की परम्परा को वृक्षों की शाखाओं के रूप में जाना गया, ज्ञान के क्षेत्रों को भी इसी रूप में देखा और पहचाना गया।

संस्कृत में 'वृक्ष' पुर्ल्लिङ्गशब्द है जिसकी उत्पत्ति व्रश्च्+क्स रूप में होती है। नामलिङ्गानुशासन या अमरकोश के टीकाकार ने वृक्ष शब्द की व्युत्पत्ति के लिए यह उक्ति उद्धृत की है:- 'वृक्षति वृक्ष वरणे पचाद्यच् वृश्र्च्यते वा ओकश्च् छेदने अक्' अर्थात् जिसने सेवा कार्य स्वीकारा हो या जो किसी वस्तु या फल को परिपक्व करें या जो किसी अन्य द्वारा उच्छ्रित किया जाए उसको वृक्ष कहा जाता है। अमरकोश में वृक्ष के तेरह पर्यायवाची दिए गए हैं— 1. वृक्ष 2. महीरूह: 3. शाखी 4. विटपी 5. पादप: 6. तरु: 7. अनोकह: 8. कुट: 9. शाल: 10. पलाशी 11. द्रु: 12. द्रुम: और 13. अगम: (द्वितीय काण्ड, वनौषधि वर्ग 5)। इसी प्रकार त्रिकाण्डशेष कोश में चार अन्य पर्यायवाची भी हैं— 1. कारस्कर: 2. गच्छ: अथवा गक्ष: 3. विष्टर: तथा 4. स्थिर (2, वनौषधि वर्ग 2)। इस प्रकार इन शब्दकोशों में कुल सत्रह पर्यायवाची मिलते हैं। देशज व अन्य पर्याय भी हो

सकते हैं। अमरसिंह ने 'वानस्पत्य: फलै: पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पति:' (वही 6) कहकर वृक्षों की दो कोटियाँ मानी हैं—

1. वानस्पत्य: अर्थात् जो वृक्ष पुष्प और फल देते हैं। यथा- आम जैसे पेड़ पहले फूलित होते होते हैं और फिर फल देते हैं- पुष्पाज्जातै: फलै: उपलक्षितो वृक्षो 'वानस्पत्य:' एकं आम्रादे।

2. वनस्पति: अर्थात् जो पुष्प और फल नहीं देते हों। जैसे उदुम्बर, पनसादि बिना पुष्पों के ही फल देते हैं— अपुष्पात् पुष्प विना जार्तै फलै: उपलक्षितो वृक्षो वनस्पति: एकं पनसोदुम्बरादे: द्रुम मात्रेऽपि वनस्पति:।

इन वृक्षों के छह अङ्गों का ऋषियों ने नामोल्लेख किया है-

1. वनस्पति- बिन बौराये ही फल देने वाले पेड़ न्यग्रोध या वट, पीपल और उदुम्बर आदि।

2. ओषधि- फलों के पक जाने के उपरांत जो पेड़ नष्ट हो जाते हैं, ओषधि कहे जाते हैं यथा गेहूं, धान्य, चना इत्यादि।

3. लता- किसी अन्य पेड़ के सहारे के आश्रय से बढ़ने वाले पेड़ लता, लतिका कहे जाते हैं। जैसे गिलोय, ब्राह्मी, मिर्चवेल, पञ्चपत्ती आदि।

4. त्वक्सार- ऐसे पेड़ जिनकी छाल पर्याप्त कठोर होती है, त्वक्सार कहे जाते हैं जैसे बाँस, वेणु, बरू आदि।

5. वीरूध- ऐसी लताएं जो कठोरता और भारीपन के कारण ऊपर की ओर नहीं बढ़ती बल्कि भूमि पर ही विस्तृत होती जाती है यथा तरबूज, खीरा, खरबूज आदि।

6. द्रुम- पहले पुष्पोत्पत्ति के बाद जिनमें फलों का उद्भव होता है वे द्रुम संज्ञक हैं जैसे जम्बूफल, आम आदि। (श्रीमद्भागवतपुराण 3, 10, 18-19)

पुरा शास्त्रवेत्ताओं ने इन षडङ्गों को मुख्य अथवा स्थावर माना है जिनका संचार मूल से ऊपर की ओर होता है। यद्यपि इनमें प्रत्यक्ष ज्ञान शक्ति नहीं होती किंतु वे अन्तस्थ में स्पर्श की अनुभूति कर सकते हैं। इसमें भी प्रत्येक में कोई न कोई विशेष गुण विद्यमान रहता है- वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरूधो द्रुमा:। उत्स्त्रोतसस्तम: प्राया अन्त:स्पर्शा विशेषिण:॥ (भागवत उपर्युक्त)

उपवेदाङ्ग के रूप में स्वीकृति-

उपवेदों के रूप में जब आयुर्वेद, धनुर्वेद जैसी ज्ञान की इतर शाखाओं की स्थापना

के साथ ही विषय-विशेष क्षेत्र में शोधानुसंधान का पथ प्रशस्त हुआ तो उद्यानाराम, अरण्यादि क्षेत्र के वृक्षों के संरक्षण, उनके दीर्घायु तथा संकर प्रजातियों के वृक्षों के उद्भव एवं विकास जैसे ज्ञान के वातायनों में दृष्टि निक्षेपण का विचार जागा। 'वृक्षायुर्वेद' इसी दिशा में विचार, मंथनजन्य अनुसंधान का अवदान है। कृषिकार्य की भांति ही पेड़ों, पौधों की भी खेती के पालन का विचार इसके साथ जुड़ा है। इसके विशेषज्ञों को ऋषियों ने भी आदर दिया गया, जिन्होंने इसके नियम 'याम' बनाए थे (अथर्ववेद 6, 116, 1)।

कृषि के साथ यद्यपि इसका प्रारंभिक रूप यद्यपि ऋग्वेद (10, 34, 13) में खोजा जा सकता है, किंतु सशक्त आधार देने का श्रेय अथर्ववेद के ऋषियों को है। यह वेद आयुर्वेद विषयक सामग्री का आदि-आकर ग्रंथ है जिसमें विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों, ओषधियों, कृमियों-विष-रोग नाशन आदि का विस्तार से विवेचन मिलता है और यह विश्व के चिकित्सकीय ज्ञान का आधार माना जाता है।

योग्यायोग्यभूमि-

वेद व संहिताओं में कृषि और पेड़-पौधों के योग्य भूमि पर विचार किया गया है। प्रारंभिक स्तर पर उर्वरा (उपजाऊ), इरिण (ऊषर) और शष्प्य (चरागाह या चरणोट योग्य) जैसा भू विभाजन हुआ। अथर्ववेद (10, 6, 33), यजुर्वेद (16, 33, 42-43) और तैत्तरीय संहिता (4, 5, 6, 8-9) के इस विभाजन के साथ ही कृष्टपच्य एवं अकृष्टपच्य नाम से दो और वर्गीकरण मिलता है जहां क्रमशः जुते खेत और बिना जुते खेत में उत्पन्न अन्न, फल-फूलादि उपजते। यजुर्वेद (18, 13 व 16, 33 एवं 43), अथर्ववेद (12, 1, 26) व तैत्तरीयसंहिता (4, 7, 5, 1 व 4, 5, 9, 1) में मिट्टी के नाना रूपों की चर्चा भी इसी प्रसंग में मिलती है- मृद् मृत्तिका (स्निग्ध मिट्टी), रजस् भूमि (सामान्य), अश्मा, अश्मन्वती (पथरीली), किंशिल (नन्हें कंकड़वाली), इरिण्य (ऊसर या अनुपयुक्त), उर्वरा, उर्वर्य (उपजाऊ) तथा सिकता, सिकत्य (बालू या रेतीली मिट्टी)।

यजुर्वेद (16, 38) एवं तैत्तरीयसंहिता (4, 5, 7, 2) में वर्ष्य या वर्षा से होने वाली और अवर्ष्य अथवा वर्षा के बिना, अन्य स्रोतों से होने वाली उपज- इस प्रकार उपज के भेदों पर चर्चा है। 'शतपथब्राह्मण' में कृषि कर्म के चार भेद स्पष्ट किए गए हैं- कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः एवं मृणन्तः जो क्रमशः जुताई, बुवाई, लुनाई और मर्दन भेदों के परिचायक है, वनस्पति के लिए आज भी यही हमारे बीच व्यवहार्य है।

करीषोपयोग का विकास-

वनस्पति की उत्तम उपज के लिए खाद का चलन उस समय हो चुका था, अथर्ववेद में इसके लिए करीष या शकन् शब्दों का प्रयोग है (19, 31, 3)। इसके लिए

तब घृत और शहद का प्रयोग होने लगा था- करीषिणीम् फलवतीं स्वधाम् (अथर्व. वही) घृतेन सीता मधुना समक्ता (अथर्व. 3, 17, 9)। जल से सिंचाई को आवश्यक माना गया, कहा गया कि पैदावार के लिए जल घृत के समान है- आप: चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति (अथर्व. 7, 18, 2)। पौधों की निराई-गुडाई कर खरपतवार को हटाना आवश्यक माना गया था- यथा दान्ति अनुपूर्वं वियूप (अथर्व. 20, 125, 2)। खेती के लिए इस काल तक कई प्रकार के औजार, उपकरण या आदान भी प्रचलन में थे।

ईतियों पर विचार-

वैदिक काल में वनस्पति के लिए हानिकारक तत्त्वों, कारणों को खोज लिया गया था और रक्षा के लिए नाना विधियां अपनाई जाती थीं। ये ही विधियां वनस्पतिशास्त्र और वृक्षायुर्वेद के विकास का कारक बनीं। हानिकारक तत्त्वों को 'ईति' की संज्ञा दी गई है। इनका क्रमश: विवरण इस प्रकार है-

1. नाशक जीव- ऋग्वेद में कृषिनाशक जीवों का सर्वप्रथम उल्लेख है जिनमें जलचारी जीवों से कृषि को खतरा बताया गया है और किसानों (कीनाश) को इनसे रक्षा का विचार दिया गया है- उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा: (10, 68, 1)। अथर्ववेद में तर्द (खाती चिड़ा या कठफोड़वा),पतङ्ग (टिड्डी दल), जभ्य (घुन या घुण) और उपक्वस (बीजों को क्षति पहुंचाने वाले कीट) नाम से हानिकारक जीवों का उल्लेख है और इनको व्यद्वर (या व्य-अद्वर) कहा गया है। शतपथब्राह्मण में व्यद्वर को कुतरने वाले जीव के रूप में संकेतित किया गया है (11, 2, 6, 13)।

ऋषियों ने अश्विनीकुमारों को ब्रह्म के समान तेज आहुति प्रदान कर इनको नष्ट करने का आग्रह किया है- तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस। ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित (अथर्व. 6, 50, 2)। यही नहीं, इन जीवों के स्वामियों से भी इनके शमन का आग्रह किया गया है- तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे। य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वाञ्जम्भयामसि (वही 3)। ये जीव विभिन्न ढंग से वनस्पति व धान्यादि को खाते हैं और ग्राम एवं जंगल में रहते हैं। कृषि को नष्ट करने के कारण वे तर्दापति, वघापति और तेज दांतों वाले होने से तृष्टजम्भ कहे गए हैं। उपनिषदों में छान्दोग्योपनिषद में टिड्डियों का उल्लेख है और उन्हें 'मटची' संज्ञा दी गई है। उस समय टिड्डियों ने सम्पूर्ण कुरु जनपद में आक्रामक की भांति वनस्पति को नष्ट कर दिया था और वहां दुर्भिक्ष कर दिया था- मटचीहतेषु कुरुष. (1, 10, 1)। शतपथब्राह्मण में कृषिनाशी टिड्डियों को शलभ कहा गया है (1, 2, 3, 9)।

2. अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि से होने वाली हानि जिसमें विद्युत्पात व तपते सूर्य की

रश्मियां भी शामिल है जिससे फसलों की रक्षा की कामना की गई है- मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं, मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य (अथर्व. 7, 11, 1)। वृष्टि में उचित वर्षा की कामना की गई है- प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः। उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो विष्या दृतिम् (7, 18, 1)।

3. सूर्य ताप एवं हिमपात जन्य व्याधियों से वनस्पति नष्ट हो जाती है अतः इनसे बचाव की कामना अथर्ववेद में की गई है- न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः (7, 18, 2)।

4. आखू या चूहे वनस्पति, उपज के सबसे बड़े दुश्मन है। अथर्ववेद के अभययाचनासूक्त में यवादि फसलों को मूषकों के प्रकोप से बचाने के लिए अश्विनीकुमार से आग्रह किया गया है कि वे इन हिंसक चूहों का नाश करें, इनका शिरोच्छेदन करें, हड्डी-पसली का चूर्ण कर दें और मुँह बंद कर उपज की सुरक्षा करें- हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीताम्। यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणतु धान्याय (6, 50, 1)। शतपथब्राह्मण में चूहे के बिलों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे इस पृथ्वी का रस जानते हैं, जहां रस होता है वहीं पर वे बिल (आखुकरीष या आखूतकर) बनाते हैं (2, 1, 1, 5 एवं 4, 5, 3, 15)।

इस प्रकार इस काल में कीटों, हानिकारक जीवों से पेड़-पौधों, बीज-धान्यादि की रक्षा करने के लिए प्रार्थनादि को ही मुख्य माना गया किंतु आहुति देने से ज्ञात होता है कि तब धुआँ करने से तर्द, पतङ्ग, जम्भ्य और उपक्वस जैसे कीटों पर नियंत्रण करना ज्ञात कर लिया गया था।

कई ओषधियों के (पिंगवज या सफेद सर्षप, गुग्गुलु) प्रयोगों से वृक्ष ही क्या, मानव के लिए भी कष्टकारी कृमियों-विषाणुओं को नष्ट किया जाता था- तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशाय (अथर्व. 8, 6, 10)। ओषधियों को स्थापित किए जाने से भी कृमि या जीवाणु उसी प्रकार भाग जाते जैसे ससुर को देखकर बहू हट जाती है— ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि। बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् (वही 24)। नदी या समुद्र तट पर होने वाली गुग्गुलु के लिए कहा गया है कि जहाँ गुग्गुलु होती है, वहाँ कोई रोग नहीं होता, दूसरों के दिए गए शाप का असर नहीं होता। क्षय जैसी व्याधियां अश्व और मृग की गति के समान भागी जाती है (वही, 19, 38, 1-3)।

जलस्त्रोतों का विकास-

पौधों के लिए वर्षा जल को अति गुणकारी माना गया था। तैत्तिरीयसंहिता में वर्षा को जनजीवन के रक्षक तत्त्व के रूप में देखा गया है और यज्ञ विधि से वर्षा करने व रोकने

के प्रयोग दिए गए हैं। ऋग्वेद में पहली बार वनस्पति के लिए उपयोगी जल के चार प्रकार कहे गए हैं- 1. दिव्या या वर्षा से प्राप्त जल 2. खनित्रिमा अथवा कृत्रिम या कूपादि का जल 3. स्वयंजा या झरनों, स्रोतों का जल और 4. समुद्रार्था अथवा समुद्रगामी सरिताओं का पानी (7, 49, 2)।

अथर्ववेद काल में कृषि के लिए पाँच जल-स्रोतों का उपयोग होता था और पानी को भी उसी स्रोत के नामानुसार जाना जाता था- शं न आपो धन्वन्या३: शमु सन्त्वनूप्या:। शं न: खनित्रिमा आप: शमु या: कुम्भ आभृता: शिवा न: सन्तु वार्षिकी (1, 6, 4) तथा- अपो देवीरुप ह्वये यत्र गाव: पिबन्ति न:। सिन्धुभ्य: कर्त्वं हवि: (1, 4, 3)।

इस प्रकार इस काल में स्रोतानुसार जल के नाम निम्न थे- 1. धन्वन्य अथवा मरुप्रदेश का जल 2. अनूप्य अथवा जिस प्रदेश में पर्याप्त रूप से पानी मिलता है या सरोवरादि का जल 3. खनित्रिम या खुदाई कर बनाए गए कूप, वापी, कुण्ड आदि का जल 4. वार्षिक अथवा वृष्टि से प्राप्त जल 5. सिन्धुभ्य: अथवा सरिताओं में प्रवहमान पानी। यजुर्वेद (16, 37, 38) व तैत्तिरीयसंहिता (4, 5, 7, 1-2) के रचनाकाल तक वनस्पत्यर्थ कुआँ, नहर, सोतों के पानी, तडाग, सरिता एवं बांधों का उपयोग होने लगा था- स्रुत्याय, कुल्याय, सरस्याय, नादेयाय, वैशन्ताय, कूप्याय, अवट्याय, मेघ्याय, वर्ष्याय इत्यादि।

इस प्रकार वैदिक स्रोत सामग्री में कृषि फसल के रूप में नाना अन्नों को उपजाने की विधियों, रक्षा उपायों व साधनों का उल्लेख हैं, वहीं पेड़-पौधों का विवरण भी कम नहीं है। निष्पत्ति के रूप में प्राप्य अन्नों में यजुर्वेद (18, 12) व तैत्तिरीयसंहिता (4, 7, 4, 2) में ब्रीहि, यव, माष, तिल, मुद्ग, खल्व, प्रियङ्गु, अणु, श्यामाक, नीवार, गोधूम, मसूर- इन बारह अन्नों का उल्लेख है। तैत्तिरीय में कृष्णब्रीहि, आशुब्रीहि, महाव्रीहि, गवीधुक या गवेधुक के नाम भी आए हैं। अथर्ववेद में यव या जौ एवं ब्रीहि या चावल को दिव्य ओषधि तथा ईश्वरीय उपहार कहा गया है जिनमें रोग विनाशक और पुष्टि प्रदायक शक्ति होती है (8, 2, 18)। इनके साथ ही ईक्षुरस का उल्लेख भी किया गया है (1, 34, 5)।

वृक्षों में जीवन की अवधारणा व प्रयोग-

वृक्षों और वनस्पति में जीवनी शक्ति की अवधारणा वैदिक काल की देन है। विश्वामित्र ऋषि और वनस्पति देवता के अथर्ववेदोक्त रोगनाशन सूक्त में यह अवधारणा प्रस्तुत की गई है कि ग्रह-नक्षत्रों वाले स्थिर द्युलोक में सभी प्राणियों के आधारभूत पृथ्वी पर स्थित वृक्षों में जीवन विद्यमान है, वे एक ही स्थान पर स्थिर होकर, खड़े-खड़े शयन

करते हैं और जागते हैं-अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्रास्तिष्ठात् (6, 44, 1)।

इसी मान्यता का विकास 'वृहदारण्यकोपनिषद्' में हुआ है जहाँ याज्ञवल्क्य मानव की भाँति वृक्षों में चैतन्यगुणों को देखते हुए वर्णन करते हैं। इस प्रकार वे अन्तश्चेतना से परिपूर्ण स्वीकारे गए हैं, यह मान्यता आज के वैज्ञानिकों की अवधारणा का मूलाधार कही जा सकती है।

'अवि' नामक तत्त्व जिसे देवता कहा गया है, को पेड़ों का रक्षक तत्त्व स्वीकारा गया है। यह पर्णहरित की एक संज्ञा हो सकती है। अथर्ववेद ने इसी कारण वृक्षों और पत्तों का हरा-भरा रहना स्वीकारा है, यह ऋत से आच्छादित माना गया है- अविर्वै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता! तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः(10, 8, 31)।

अथर्ववेद में वर्षा, सूर्य और चन्द्रमा को वनस्पतियों का पिता अथवा पालनकर्ता कहा गया है, वर्षा से उनको रस मिलता है, सूर्य से ऊर्जा तथा चन्द्रमा से पोषण मिलता है। पुराणकारों ने सोम को सुधाधारक इसी अर्थ में ग्रहण किया है। इस काल में खाद्य पदार्थों का परीक्षण किया जाना आवश्यक मान लिया गया था, इसीलिए निर्विष को भोज्य और सविष को अभोज्य कहा गया है। दूषित अन्न को शुद्ध करने या निर्विष अथवा रोग रहित करने का उल्लेख मिलता है- यद् आद्यं यद् अनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोभि (8, 2, 19)।

अथर्ववेद के अन्य उल्लेख से ज्ञात होता है कि आबयु नामक वृक्ष को संकर विधि से तैयार किया था। उसकी माता मदावती है और पिता विहल्ह वृक्ष है- विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता (6, 16, 2)। यह नवीन वृक्ष इन दोनों के फल के आकार-प्रकार से पृथक् फल देता था- स हि न त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः (उपर्युक्त)। इस वृक्ष का रस दोनों का मिश्रण और खाद्याखाद्य किंतु उग्र व रोगनाशक शक्ति से सम्पन्न था। अक्षिरोग भेषज के रूप में इसका उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार पेड़ों पर कलम लगाकर अथवा संकर विधि से वृक्ष तैयार करने का प्रयोग ऋषियों ने बहुत पहले कर दिखाया था। इसी प्रकार का प्रयोग महर्षि कश्यप ने भी किया था। महाभारत के खिल हरिवंश में मरीचिनन्दन महर्षि कश्यप द्वारा किए इस प्रयोग का विवरण मिलता है। अदितिदेवी की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने उपहार रूप में देने के लिए मन्दार या अर्क वृक्ष का सार निकाला तथा गंगा नदी के किनारे पर पारिजातद्रुम की सृष्टि की जिसे वृक्षों में श्रेष्ठ कहा जाता है- मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः। तस्मादेष तरुश्रेष्ठः सर्वेषां श्रेष्ठतां गतः॥ (हरिवंश, विष्णुपर्व 67, 65) इस वृक्ष की यह विशेषता थी कि वह सदा तीन शाखाओं से युक्त दिखाई देता और अपनी शोभा से लोगों

शती तक और नवीं शती के बीच प्रणीत हुए या पूर्ण किए गए- यह पुराणों के विकास की चौथी सीढ़ी है जबकि उपपुराणों का संग्रहण सातवीं या आठवीं शताब्दी से आरंभ हुआ और उनकी संख्या तेरहवीं शती तक या इसके आगे तक बढ़ती गई- यह पुराण सहित्य के विकास की अन्तिम सीढ़ी है (डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थभाग, लखनऊ 1996 पृष्ठ 298)।

पञ्चमवेद नाम से स्वीकार्य पुराणों में शतपथ आदि ब्राह्मणग्रंथों की तर्ज पर वृक्षों के उत्पति प्रसंगों को भी लिखा गया है। प्राचीन पुराणों में 'वायुपुराण' के उपोद्घातपाद में कश्यपीयप्रजासर्ग में वृक्षों, लता, वल्लियों को भी प्रजा माना गया है। पुराणकार ने गरुड़ की संततियों के बाद इरा की तीन कमलनयना कन्याओं के विषय में कहा है कि उनके नाम लता, वल्ली और वीरुधा थे। ये सभी मानुषी कन्याएं थीं।

इनमें से लता ने नदी आदि के तट प्रदेश में स्थित, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया। साथ ही पुष्पों व फल से संयुक्त वृक्षों को भी जन्म दिया। वल्ली ने गुल्मों को जन्म दिया, समस्त तृण जाति एवं त्वक् सार या जिनके चमड़े में ही सार हो, बाँस आदि को भी उत्पन्न किया। वीरुधा की संततियाँ वीरुध या विस्तार से फैलने वाली लताओं के नाम से जानी गई- इरा प्रजज्ञे कन्या वै तिस्त्रः कमललोचनाः॥ वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः। लता चैवाथ वल्ली च वीरुधा चेति तास्तु वै॥ तला वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान्पुलिनस्थितान्। युक्तान्पुष्पफलैर्वृक्षाँल्लता वै संप्रसूयते॥ अथ वल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः। वीरुधा तदपत्यानि वंशश्चात्र समाप्यते॥ (वायुपुराण 69, 339-342)

एक अन्य आख्यान के अनुसार वरुत्रीपुत्रों के वे सिर खजूर रूप में हुए जिन्हें गीदड़ों व कुत्तों ने खाया था (65, 83)। हरिवंश में कपित्थ के वृक्षों पर आश्रय लेने वाले समुदाय के ब्रह्मवादी तापसों को कापित्थिक, सृगालवृक्षाश्रितों को सृगालवाटीय, उदुम्बर के अश्रितों को औदुम्बर, वटवृक्षाश्रितों को वाटमूल कहा गया है-औदुम्बरान् वाटमूलान् द्विजान् कापित्थिकानपि। तथा सृगालवाटीयान् धर्मात्मानो दृढव्रतान्॥ (विष्णुपर्व 82, 32) इस प्रकार वृक्षों के आश्रय समुदायों के नामकरण का आधार भी मिलता है।

पुराणों ने वृक्षविद्या पर पर्याप्त विमर्श किया। पहली शताब्दी के आसपास संपादित हुए 'ब्रह्माण्डपुराण' की तो विषयसूची में ही इस विद्या पर विमर्श को सम्मिलित किया गया है- वृक्षाणाम् ओषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्तनम्। आम्रादीनां तरुणां च सर्जनं व्यञ्जनम् तथा (1, 1, 51-52)। इस पुराण में वृक्षारोपण का महत्व बताया गया है और इस विषय को वास्तु के साथ जोड़ा गया है। इसमें उद्यानस्थ वृक्षों की संख्या हजार से अधिक बताई गई है जिसमें फल, फूल, पल्लव और सौरभयुक्त वृक्षों का आरोपण मुख्य बताया गया है-

का मन हर लेता, इसके पुष्प कमल जैसे आते। इसके तीन नाम थे- मन्दार, कोविदार तथा पारिजात। इस विशिष्ट पेड़ को देखकर लोग अचरज में पड़ जाते थे और प्रश्न करते थे कि यह भी कोई दारु (वृक्ष) है- कोऽप्ययं दारुरित्याहुरजानन्तो यतो जना:। कोविदार इति ख्यातस्तत: स सुमहातरु:॥ (उपर्युक्त 71)

कश्यप के अतिरिक्त अथर्वा, कण्व, अगस्त्य आदि ऋषियों ने भी ओषधियों का प्रयोग व ओषधीय वृक्षों का उपचार किया था, जैसा कि अथर्ववेद के कृमिनाशन सूक्त से ध्वनित होता है- त्वया पूर्वमथर्वाणा जघ्नू रक्षांस्योषधे। त्वया ज़घान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्य: (4, 37, 1)। पीपल का पेड़ लगाए जाने से किसी स्थान से जल में फैलने वाले कृमी नष्ट हो जाते थे, इसी प्रकार गुग्गुलु, पीलु, नलदी या जटामाँसी, औक्षगन्धी व प्रमोदिनी से जलोत्पन्न कृमि नष्ट होते।

अथर्ववेद में साथ-साथ फलीभूत होने वाले वृक्षों की मान्यता मिलती है- ते वृक्षा: सह तिष्ठन्ति। इस संकेत का श्रीराम शर्मा आचार्य ने यह आशय भी लगाया कि प्रकृति में पोषक तत्त्व सूक्ष्मकण के रूप में विद्यमान हैं, वृक्ष उन्हें धारण कर परिपक्व करते हैं और इस तरह वे प्राणियों के लिए हितकारी बनते हैं। (अथर्व. 20, 131, 11) यहीं पर एक पेड़ पर दूसरा पेड़ उगाने का वर्णन भी विद्यमान हैं। खदिर पर अश्वत्थ को स्थानान्तरित कर उगाने का संकेत है- अश्वत्थ खदिरो धव: (वही, 14)। इसी प्रकार अरुधन्ति लता का आविर्भाव भी खदिर से बताया गया है।

वनस्पति के लिए उपचार-

तैत्तिरीयसंहिता में स्पष्ट तौर पर कृषि कार्य में रोग विनाश एवं फसलोन्नयन के लिए ओषधियों व वनस्पतियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इनमें मूल, कन्द, तूल या रूई, पुष्प, फल एवं पत्रादि मुख्य हैं (7, 3, 19-20)। अथर्ववेद में इनको भेषज एवं सुभेषज (अचूक या उत्तम चिकित्सा) के लिए प्रयुक्त किए जाने का विस्तृत वर्णन है। ये पर्वतोत्पन्न, खननयोग्य, भूमिजा, समुद्रोत्पन्न होती थीं। द्युलोक को इनका पिता, पृथ्वी को महतारी व सागर को ओषधियों का मूल कहा गया है- यासां द्यौ: पिता पृथिवी माता, समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव (3, 23, 6)। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि वर्षा से ओषधियां होती हैं अत: द्युलोक वृष्टि के द्वारा रसदान देने से पिता है, पृथ्वी पर ओषधियां होती है, अंत: पृथ्वी माता के तुल्य इनकी पालक है, समुद्र वर्षा का कारण है, अत: वह ओषधियों का मूल है। समुद्र से स्वयं भी ओषधियां निकलती है (अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर-वाराणसी, 1988, पृष्ठ 140)।

वैदिक औषधियों में मुख्य हैं- सोमलता, अपामार्ग, पाटा, पिप्पली, पृश्निपर्णी, ऋषभ ओषधियाँ, मधुला, मुञ्ज, शर, सहस्रकाण्ड, दशवृक्ष, आब्रयु, विहल्ह, मदावती, तौविलिका, अलसाला, सिलाञ्जाला, नीलोगलसाला। इस काल के पुष्पों में कमल, कुमुद मुख्य हैं जबकि फलों में बिल्व, पीलु, उदुम्बर, कर्कन्धु, उर्वारुक या उर्वारू उल्लेखनीय है।

इसी प्रकार इस काल के वृक्षों, वल्लरियों आदि में अश्वत्थ, न्यग्रोध, महावृक्ष, शिखण्डिन्, भद्र, प्लक्ष, खदिर, धव, पर्ण, बिल्व, उदुम्बर, शिंशपा, विकंकत, तलाशा, अर्जुन, आघाट, कर्करी, ब्राह्मी, गुग्गुलु, अजश्रृङ्गी, पीला, पीलु, नलद या नलदी, औक्षगन्धि, प्रमन्दनी, अरटु, आञ्जन, मदुघ आदि मुख्य हैं।

शतपथब्राह्मण में कई वृक्षों का नामकरण, उनकी उत्पत्ति, उपयोग तथा उनकी योग्यायोग्य भूमि व गुणावगुण के सम्बन्ध में आख्यानात्मक वर्णन मिलता है। इनमें अध्याण्डा, अर्क, अवका, अश्मगन्धा या अश्वगन्धा, अश्वत्थ, अश्ववाल, उदुम्बर, आदार, उशना, करीर, कार्ष्मर्य, कुवल, कर्कन्धु, बदर, कुश, कृमुक, खदिर, गवेधुक, गुग्गुलु, तिल्वक, नड, नीवार, न्यग्रोध, पलाश, पीतदारु, पुण्डरिक, पूतीक, पृश्निपर्णी, प्लक्ष, फाल्गुन, बिल्व, भूमिपाश, मुञ्ज, रज्जुदाल, वंश, वधक, वरण, विकंकत, विभीदक, वीरिण, वेणु, वेतस, शण, शमी, शल्मलि, श्येनहृत, स्फूर्जक, सुगन्धितेजनम्, सोम, हरिद्रु आदि का विवरण तत्कालीन भारतीयों के वनस्पति जीवन से घनिष्ठ सरोकार और उनके तत्सम्बन्धित विशाल ज्ञान का प्रकाशनकर्ता स्वीकारा जाना चाहिए।

इस प्रकार वृक्ष विषयक विज्ञान वैदिक और उत्तर वैदिक काल में विकसित हुआ जिसकी नींव पर कृषि एवं वृक्ष शास्त्र के विभिन्न अनुशासनों का निर्माण शुरू हुआ। वृक्षों की सदा रक्षा करने का निर्देश रहा, इनमें में भी जीवन से जुड़े वृक्षों को मूल्यवान समझा गया जिनकी सुरक्षा के लिए वनप और दावप अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था- वनाय वनपम्, अन्यतोरण्याय दावपम् (यजुर्वेद 30, 19)। ब्राह्मणों व उपनिषदों के रचनाकाल तक वृक्षों में देवी-देवताओं के निवास की मान्यता प्रतिष्ठित होती चली गई।

पौराणिक मान्यताओं का विकास-

पुराणों की रचना वेदों और वेदाङ्गों से बहुत बाद की मानी जाती है किंतु सूत्रकाल तक कुछ पुराण लिखे जा चुके थे। ईसा पूर्व चौथी या पाँचवीं सदी के 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' (2, 9, 24, 6) में भविष्यत्पुराण का जिक्र है और एक पुराण से चार श्लोक लिये गये हैं। (एफ. ई. पार्जीटर : प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुश्रुति, पृष्ठ 44-54) पुराणों का लेखन इसके बाद भी निरंतर रहा। महापुराणों में अधिकांश पाँचवीं या छठी

शती तक और नवीं शती के बीच प्रणीत हुए या पूर्ण किए गए– यह पुराणों के विकास की चौथी सीढ़ी है जबकि उपपुराणों का संग्रहण सातवीं या आठवीं शताब्दी से आरंभ हुआ और उनकी संख्या तेरहवीं शती तक या इसके आगे तक बढ़ती गई– यह पुराण सहित्य के विकास की अन्तिम सीढ़ी है (डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थभाग, लखनऊ 1996 पृष्ठ 298)।

पञ्चमवेद नाम से स्वीकार्य पुराणों में शतपथ आदि ब्राह्मणग्रंथों की तर्ज पर वृक्षों के उत्पति प्रसंगों को भी लिखा गया है। प्राचीन पुराणों में 'वायुपुराण' के उपोद्घातपाद में कश्यपीयप्रजासर्ग में वृक्षों, लता, वल्लियों को भी प्रजा माना गया है। पुराणकार ने गरुड़ की संततियों के बाद इरा की तीन कमलनयना कन्याओं के विषय में कहा है कि उनके नाम लता, वल्ली और वीरुधा थे। ये सभी मानुषी कन्याएं थीं।

इनमें से लता ने नदी आदि के तट प्रदेश में स्थित, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया। साथ ही पुष्पों व फल से संयुक्त वृक्षों को भी जन्म दिया। वल्ली ने गुल्मों को जन्म दिया, समस्त तृण जाति एवं त्वक् सार या जिनके चमड़े में ही सार हो, बाँस आदि को भी उत्पन्न किया। वीरुधा की संततियाँ वीरुध या विस्तार से फैलने वाली लताओं के नाम से जानी गई– इरा प्रजज्ञे कन्या वै तिस्रः कमललोचनाः॥ वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः। लता चैवाथ वल्ली च वीरुधा चेति तास्तु वै॥ तला वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान्पुलिनस्थितान्। युक्तान्पुष्पफलैर्वृक्षाँल्लता वै संप्रसूयते॥ अथ वल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः। वीरुधा तदपत्यानि वंशश्चात्र समाप्यते॥ (वायुपुराण 69, 339-342)

एक अन्य आख्यान के अनुसार वरुत्रीपुत्रों के वे सिर खजूर रूप में हुए जिन्हें गीदड़ों व कुत्तों ने खाया था (65, 83)। हरिवंश में कपित्थ के वृक्षों पर आश्रय लेने वाले समुदाय के ब्रह्मवादी तापसों को कापित्थिक, सृगालवृक्षाश्रितों को सृगालवाटीय, उदुम्बर के अश्रितों को औदुम्बर, वटवृक्षाश्रितों को वाटमूल कहा गया है–औदुम्बरान् वाटमूलान् द्विजान् कापित्थिकानपि। तथा सृगालवाटीयान् धर्मात्मानो दृढव्रतान्॥ (विष्णुपर्व 82, 32) इस प्रकार वृक्षों के आश्रय समुदायों के नामकरण का आधार भी मिलता है।

पुराणों ने वृक्षविद्या पर पर्याप्त विमर्श किया। पहली शताब्दी के आसपास संपादित हुए 'ब्रह्माण्डपुराण' की तो विषयसूची में ही इस विद्या पर विमर्श को सम्मिलित किया गया है– वृक्षाणाम् ओषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्तनम्। आम्रादीनां तरुणां च सर्जनं व्यञ्जनम् तथा (1, 1, 51-52)। इस पुराण में वृक्षारोपण का महत्व बताया गया है और इस विषय को वास्तु के साथ जोड़ा गया है। इसमें उद्यानस्थ वृक्षों की संख्या हजार से अधिक बताई गई है जिसमें फल, फूल, पल्लव और सौरभयुक्त वृक्षों का आरोपण मुख्य बताया गया है–

नाना वृक्ष महोद्यानं वर्तन्ते कुम्भ सम्भवः। परंप सहस्रास्तरवः सदापुष्पा सदाफलाः। सदा पल्लव शोभाढ्या सदासौरभ सङ्कुलाः (3, 4, 31, 54-55)।

'विष्णुपुराण' जिसका पाठ अद्यतन सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है, में वृक्ष विद्या को उद्भिद्विद्या कहा गया है तथा वृक्षों को संवृतात्मा या मूढ़स्वाभावी कहा गया है किंतु उन्हें मुख्य सर्ग भी स्वीकारा है (1, 5, 6-7)। इसका अर्थ यह लिया जा सकता है कि वे मुख्यसृष्टि हैं, उनमें जीवन है। इसी तथ्य को ब्रह्माण्डपुराणकार ने अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि वृक्ष चेतन प्राणी है और वे यद्यपि तामस ज्ञान से आवृत्त हो किंतु अपने अन्तस्थ में वे अज्ञानी हो, ऐसा नहीं है। परिवेश पर वे पूरी क्षमता के साथ संवेदनात्मक व्यवहार करते हैं, जीवन्त रहने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं, ऋतुओं के साथ उनका संज्ञान जुड़ा है और अपने निराले संसार के हेतु बने रहते हैं। पुराणकार का यह निहितार्थ विचारणीय है- सर्वतस्तमसा चैव बीजकुम्भलतावृतः। बहिरन्तश्चाप्रकाश-स्तथा निःसंज्ञ एव च॥ यस्मात् तेषां कृताबुद्धिर्दुःखानि करणानि च। तस्मात् ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः (1, 5, 33-34)।

'वामनपुराण' में देवताओं से वृक्षों की उत्पत्ति के प्रसंग को विस्तार के साथ लिखा गया है। पुराणकार का कथन है कि आश्विन मास में विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति हुई और उसी समय अन्य देवताओं के विभिन्न अङ्गों से नाना वृक्ष जातियों का उद्भव हुआ इसीलिए इन देवताओं की प्रीति उनके वृक्षों में रहती है (18, 1-10)। वामनपुराण ने वृक्षों की उत्पत्ति की पूरी सूची दी है। संक्षेप में यहाँ विमर्श अप्रसांगिक नहीं होगा- कामदेव के हस्ताग्र से कदम्ब की उत्पत्ति हुई, मणिभद्र से वट, शिव के हृदय से धत्तूर, ब्रह्मा के देह के मध्य भाग से खदिर, विश्वकर्मा के देह से कंटकी, पार्वती के करतल से कुन्द-गुल्म, गणेश के कुम्भदेश से सिन्धुवारक, यमराज के दक्षिणपार्श्व से कृष्ण उदुम्बर, रुद्र से वासक या अडुसा, स्कन्द से बन्धुजीवा, सूर्य से अश्वत्थ, कात्यायनी से शमी, लक्ष्मी के कर से बिल्व, शेषनाग की पूँछ व पीठ से श्वेत-श्याम दूर्वा तथा साध्य के हृदय से हरितचंदन का उद्भव हुआ।

वृक्षों के सार की कन्या मारिषा-

'वायुपुराण' का मारिषाख्यान अन्य कई पुराणों ने उद्धृत किया है। इसमें समुद्र कन्या सवर्णा द्वारा चाक्षुष मन्वन्तर में दस पुत्रों को जन्म देने का वर्णन है जो प्रचेता कहलाए। वे तपस्वी और धनुर्वेद में पारंगत थे। इस समय वृक्षों की उचित देखरेख नहीं हुई तो वृक्षावलियाँ इतनी फैल गई कि पृथ्वी ही नहीं आकाशमण्डल तक को छेक लिया और प्रजा का विनाश होने लगा। दस हजार साल तक प्रजा निश्चेष्ट पड़ी रही। यह स्थिति देख प्रचेताओं ने वायु व अग्नि को छोड़ा जिससे वृक्षों का विनाश होने लगा। इस पर वृक्षों

के राजा सोम ने प्रचेताओं से स्पष्ट किया कि वृक्ष जन संततियों के लिए नित्य प्रयोजनीय है। इस पर प्रचेताओं ने अपना क्रोध शांत किया व शेष रहे वृक्षों ने पुनः अपना विकास किया- वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यन्ति (63, 33)।

इसी कथा में वृक्षों द्वारा उत्पन्न कन्या 'मारिषा' का उल्लेख है जो अति सुंदर व रत्नभूत थी, सोम ने उसे भविष्य के पूर्वानुमानों को जानकर अपनी किरणों से विकसित किया। सोम ने उसे अपने गर्भ में धारण किया था। इसके बाद उसे प्रचेताओं को सौंप दिया, वह सबकी पत्नी बनीं जिसने मानसिक संकल्प से दक्ष प्रजापति को उत्पन्न किया। दक्ष ने ही अग्नि से नष्ट हुई वसुधा व प्रजा का पोषण किया। सृष्टि विकास का यह आख्यान वृक्षों के अद्भुत योगदान को विवेचित करता है।

कृमियों के कारणभूत वृक्ष--

वृक्षों से पैदा होने वाले कीट, मक्खी आदि जीवों पर इस समय तक अध्ययन किया गया था और ऋषिमत से प्रजोत्पत्ति के प्रसंग में युक्तिपूर्वक स्पष्ट किया गया कि घृत, उड़द, मूँग, बिल्व, जामुन, आम, सुपारी, कटहल, चावल ही नहीं, वृक्षों के कोटर से भी अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाते हैं किंतु वे चिरकालीन नहीं रहते- सर्पिर्भ्यो माषमुद्गानां जायन्ते क्रमशस्तथा। बिल्वजम्बाम्रपूगेभ्यः फलेभ्यश्चैव जन्तवः॥ मुद्गेभ्य पनसभ्यश्च तण्डुलेभ्यस्तथैव च। तथा कोटरेशुष्केभ्यो निहितेभ्यो भवन्ति हि॥ अन्येभ्योऽपि च जायन्ते न हि तेभ्यश्चिरं सदा (वायु. 69, 307-309)।

इसी पुराण में श्लेष्मान्तक या लिसोड़ा में ब्रह्मराक्षसों का निवास बताया गया- श्लेष्मातकतरुष्वेते प्रायशस्तु कृतालयाः (वही, 135), यक्षों का बरगद में रहना बताया गया- यक्षाणां न्यग्रोधः सर्वतः प्रियः (वही 150)।

'मार्कण्डेयपुराण' में चींटी, चूहा, नेवला, छिपकली, कपिञ्जल सहित दीमक को छोटे शरीर वाला होकर ही मिट्टी का ढेर बनाकर वृक्षों को नष्ट करने वाला बताया गया है और नष्ट होने से उन्हें कोई खेद नहीं होने की उपमा योगी के चित्त के साथ की गई है (40, 50-53)।

वृक्षों का माहात्म्यलेखन-

अन्य पुराणों में वृक्षों के माहात्म्य लेखन की मान्यता का विशेष विस्तार हुआ मिलता है। वृक्षों के माहात्म्य में हजारों श्लोक लिखे गए हैं। ज्यों-ज्यों नए वृक्षों से परिचय हुआ, उनके संबंध में जनश्रुतियों को पौराणिक आधार दिया जाने लगा। स्कन्द, पद्म आदि पुराणों में रुद्राक्ष की उत्पत्ति, आँवले की महिमा तथा तुलसी का माहात्म्य दिया गया है जबकि वराहपुराण में इसका अभाव है। 'अग्निपुराण' में दमनक की उत्पत्ति कथा

दी गई है।

'पद्मपुराण' के सृष्टिखण्ड में शिव द्वारा आजगव नामक धनुष संधान से त्रिपुर दानव के वध के उपरांत पृथ्वी पर रुद्र के स्वेद-पतन के साथ ही रुद्राक्ष की उत्पत्ति की कथा दी गई है। ध्यान से देखें तो उसकी चौदह प्रजातियों का वर्णन भी है जो क्रमशः एक से लेकर चौदह मुख तक के बीज उत्पन्न करते हैं। इसी पुराण में आँवले का महत्व एक कथा के साथ बताया गया है कि आँवला के सेवन से आयु बढ़ती है, उसका जल पीने से धर्म का सञ्चय होता है और उसके द्वारा स्नान करने से दरिद्रता दूर होती है व सभी प्रकार का ऐश्वर्य मिलता है। जिस घर में आँवला सदा रहता है, वहाँ पर दैत्य और दानव नहीं जाते। आँवला में विष्णु व लक्ष्मी का निवास होता है।

इसी पुराण में आगे शिव मुख से कार्तिकेय के प्रति तुलसी की महिमा कही गई है कि सब प्रकार के पत्तों और पुष्पों में तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गई है। विष्णु ने पूर्वकाल में सम्पूर्ण लोकों का हित करने की इच्छा से तुलसी का रोपण किया था। जहाँ तुलसी का वन है, वहाँ श्रीकृष्ण की समीपता है। ब्रह्मा और लक्ष्मी भी वहाँ पर सम्पूर्ण देवताओं के साथ विराजमान है, इसलिए तुलसी के पौधे का पूजन, ध्यान, रोपण व उसे धारण करना चाहिए- पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ। तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥ उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः। स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम् (58, 131-132)॥

'पद्मपुराण' के सृष्टिखण्ड के 59वें अध्याय में स्कंदपुराण के वर्णन को उपन्यस्त करते हुए तुलसी स्तोत्र भी दिया गया है। तुलसी के पूर्वजन्म की कथा व गणेश द्वारा आदर नहीं दिए जाने का विवरण रोचक रूप से 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के गणेशखण्ड में दिया गया है।

'ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' के कृष्णजन्मखण्ड के 103रे अध्याय में कौनसा वृक्ष किस प्रकार से मङ्गलमय होता है और किस प्रकार उपयोगी वृक्ष भी वर्जनीय हो जाता है, इसका वर्णन किया गया है। विश्वकर्मा के प्रति भगवान् कहते हैं कि गृहस्थों के आश्रम में नारियल का वृक्ष धन प्रदान करने वाला होता है, वह यदि शिविर के ईशानकोण या पूर्व दिशा में हो तो पुत्रप्रद होता है। यदि पूर्व दिशा में आम का वृक्ष हो तो वह सम्पत्ति देने वाला होता है। बेल, कटहल, जम्बीर, नीम्बू तथा बेर के वृक्ष पूर्व दिशा में संतानदायक, दक्षिण में धनदाता तथा सर्वत्र सम्पत्तिप्रद होते हैं। इनसे गृहस्थ की उन्नति होती है। जामुन, केला और आँवला के वृक्ष पूर्व में बंधुप्रद तथा दक्षिण में मैत्रीवर्द्धक होते हैं और सर्वत्र शुभप्रद माने जाते हैं। नगर में वन्यवृक्ष का निषिद्ध हैं, वट वृक्ष रहना अनुचित है क्यों कि उससे चोरी का भय रहता है। इसी प्रकार सेमल का वृक्ष भी नगर में अनुचित है,

इमली का वृक्ष भी नगरोचित नहीं है। वह बुद्धि व विद्या का विनाशक है, खर्जूर व अन्य काँटेदार वृक्ष अनुचित है। अन्नों में चना, शाकों में लौकी, कुम्हड़ा, आयाम्बु, पलाश, कर्कटी, हल्दी, अदरक, हरितकी, आमलकी व ईख तथा वृक्षों में अशोक, सिरिस, कदम्ब सदा शुभदायक कहे गए हैं।

'अग्निपुराण' में दमनकारोपण नाम से पूरा अध्याय (80) लिखा है जिसमें महेश्वर ने सप्तमी या त्रयोदशी पर संहिता मन्त्रों के साथ दमनक का वृक्ष लगाने की विधि को 15 श्लोकों में वर्णित है। इस वृक्ष की चैत्र में पूजा को स्वर्ग देने वाली कहा गया है- सकलं चैत्रमासोत्थं फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् (80, 15)॥

पद्मपुराणकार का कथन है कि पवित्रवृक्षों को बचाना चाहिए। पवित्र वृक्ष व गोचर भूमि का उच्छेद करने वाले की इक्कीस पीढ़ियाँ रौरव नरक में जाती है, गोपालक को चाहिए कि वह ऐसे नष्टकर्ता का पता लगाकर उसे दण्ड दें- यश्छिनत्ति द्रुमं पुण्यं गोप्रचारं छिनत्त्यपि। तस्यैकविंशत् पुरुषाः पच्यन्ते रौरवेषु च॥ गोचारघ्नं ग्रामगोपः शक्तो ज्ञात्वा तु दण्डयेत् (सृष्टिखण्ड 56, 41)॥ 'स्कन्दपुराण' में पीपल को विष्णुरूप कहा गया है। पीपल की जड़ में विष्णु, तने में केशव, शाखाओं में नारायण, पत्तों में भगवान् हरि और फल में सभी देवताओं से युक्त अच्युत सदा ही निवास करते हैं। यह वृक्ष मूर्तिमान विष्णुस्वरूप है, महात्मा पुरुष इस वृक्ष के पुण्यमय मूल का सेवन करते हैं। इसके गुणों से युक्त और कामपूरक आश्रय मनुष्यों के हजारों पापों का नाश करने वाला है- मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च। नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः॥ फलेऽच्युतो न संदेहः सर्वदेवैः समन्वितः। स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः। यस्याश्रयः पापसहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुघो गुणाढ्यः (नागर. 257, 41-42, 44)॥

'गरुडपुराण' के प्रेतकल्प में कुशा या काश की महिमा लिखी है जबकि 'आदित्यपुराण' और 'भविष्यपुराण' में कुशा की रस्सी बनाकर 'मार्गपाली बन्धन' कृत्य किए जाने का विवरण मिलता है। इस रस्सी को कार्तिक की पड़वा को पूर्व दिशा में स्थित किसी वृक्ष या लम्बे स्तम्भ से बांधा जाता है और बस्ती के सभी लोग बंधु-बांधवों व पशुधन सहित नमन करते हुए उसके नीचे से निकलते हैं। दक्षिण राजस्थान में आज भी मार्गपाली की यह परंपरा 'सिरोल बंधन' नाम से इसी रूप में प्रचलित है। आदित्यपुराण की इस परंपरा को निर्णयसिंधुकार (पृष्ठ 202) एवं व्रतराज के संपादक (पृष्ठ 70) ने भी उद्धृत किया है।

संतति से वृक्ष श्रेष्ठ-

'मत्स्यपुराण' जिसका नामोल्लेख महाभारत में भी हुआ है, में पार्वती ने कहा है

कि एक पुत्र दस गहरे जलाशयों के तथा एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान है, यह लोकों का कल्याण करने वाली मर्यादा है- दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥ एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी॥(154, 512)। उक्त मत शिवपुराण के पार्वतीखण्ड, स्कंदपुराण के महेश्वरखण्ड व केदारखण्ड, कौमारिकाखण्ड, कालिकापुराण, पद्मपुराण, बृहद्धर्मपुराण आदि में भी प्राप्त होता है। पद्मपुराण का यह श्लोक महनीय है कि पेड़ पुत्रहीन के प्रति पुत्रवत् होता है- अपुस्य च पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते। पुराणों का यह निष्कर्ष भी सार्वकालिक सत्य है कि वृक्ष यों तो उद्भिद् हैं किंतु उनके उपकार का कोई सानी नहीं, वे अपने पत्र, पुष्प, फल, मूल, छाया, वल्कल और काष्ठ तक से सबका सदा उपकार ही करते रहते हैं- पत्र-पुष्प-फलच्छाया-मूल-वल्कल-दारुभिः। परेषामुपकुर्वन्ति तारयन्ति पितामहान्॥ यही मान्यता वराहपुराण की भी है (172, 40)।

मत्स्यपुराण में पहली बार 'वृक्षोत्सवविधि' दी गई है (59, 1-19) जिसे 'पद्मपुराण' (5, 24, 192-211) और 'अग्निपुराण' (अ. 70) ने मामूली फेरबदल के साथ उद्धृत किया है। वृक्षों के प्रति ममत्व का यह पौराणिक निर्देश आज भी प्रासंगिक है। इसे प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

'वराहपुराण' जिसे भी प्रारंभिक पुराण माना गया है, में वृक्षारोपण के माहात्म्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि एक अच्छा पुत्र कुल की रक्षा करता है, उसी प्रकार पुष्पों-फलों से लदा हुआ एक वृक्ष स्वामी को नरकगामी होने से बचाता है, जो व्यक्ति आम्र के पाँच वृक्ष लगाता है, वह नरक में नहीं जाता (173, 36-37)। इस पुराण के इसी अध्याय में अयोध्या नरेश गोकर्ण की कथा में मालती प्रभृति पुष्पजाति तथा वृक्षों की यज्ञाङ्ग-साधनभूता, फल प्रदता छाया से सम्बद्ध ज्येष्ठादेवी का उल्लेख है जो उद्यानरोपण को महान् धर्म बताती है। इस पर गोकर्ण ने मथुरा में निवास कर वहाँ की प्रजा को बाग लगाने की प्रेरणा दी। पुराणकार ने 172वें अध्याय में वृक्षारोपण से उसी फल की प्राप्ति बताई है जो भूमिदान व गोदान से प्राप्त हो सकता है।

इसी प्रकार पाँचवीं-छठी शताब्दी में संपादित 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' का निर्देश है कि एक व्यक्ति द्वारा रोपित और पालित वृक्ष वही कार्य करता है जो एक पुत्र करता है, वह अपने पुष्पों से देवों को प्रसन्न करता है, छाया से यात्रियों को, अपने फलों से मनुष्यों को संतुष्ट करता है, वृक्ष रोपने वाले को नरक में नहीं गिरना पड़ता है (खण्ड 3, 297, 13-15)। अग्निपुराण में तो रोपितवृक्षों को धर्मपुत्र के रूप में मान्यता दी गई है, यह परंपरा आज तक भारतीय समाज में वृक्षपालन का आधार बनी हुई है- तस्मात् सुबहवो वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽभिवाञ्छता। पुत्रवत् परिपाल्याश्च ते पुत्रा धर्मतः स्मृताः॥

विष्णुधर्मोत्तर के तृतीय खण्ड में हंसगीता के अंतर्गत वृक्षारोपणफल निरूपित किया गया है। यह अकेला उपपुराण है जिसमें द्रुमरोपण माहात्म्य पर 31 श्लोकों का अध्याय है जबकि वृक्षायुर्वेद पर भी पहली बार अध्याय मिलता है। कौटिल्य ने यदि प्रथमतः वृक्षायुर्वेद का उल्लेख किया तो विष्णुधर्मोत्तर ने प्रथमतः इस ज्ञानानुशासन को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यही अध्याय नवीं शताब्दी के आसपास संगृहीत किए गए 'अग्निपुराण' में न्यूनाधिक फेर-बदल के साथ इसी नाम अथवा कुछ पाठों में 'वृक्षायुर्ज्ञानम्' नाम से उद्धृत किया गया है जिसे पुष्कर-राम संवाद की अपेक्षा धन्वन्तरि के मुँह से कहलाया गया है। इससे पूर्व वराहमिहिर (505-580 ई.) ने बृहत्संहिता में वृक्षायुर्वेद को संगृहीत कर इसे संहितोक्त विषय के रूप में सम्मिलित किया।

वृक्षपूजाधारित व्रतोत्सव की परंपरा-

वृक्षों और वनस्पतियों से जुड़े कई लोकपर्वों को पुराणकारों ने शास्त्रीय आधार दिया है। पुराणकारों का यह प्रयास पेड़ों के संरक्षण के साथ ही उनमें देवत्व को महत्व दिए जाने का अद्भुत प्रयास कहा जा सकता है। हालांकि हमारे अधिकांश पर्वोत्सव कृषि उपज से ही जुड़े हुए हैं यथा- आश्वयुजी एवं आग्रयण या नवसस्येष्टि आदि, तथापि कुछ व्रतादि सात्विक रूप से वृक्ष पूजा का भाव लिए हुए हैं।

अग्निपुराण, नारदपुराण, भविष्यपुराण, मत्स्यपुराण, ब्रह्मपुराण, लिङ्गपुराण, वराहपुराण, नीलमतपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदि में ऐसे सैकड़ों व्रतों का उल्लेख है। डॉ. काणे ने इसकी वृहद् सूची है, जिनमें से कतिपय व्रतोत्सव निम्न है-

अक्षय या आँवला नवमी, अरण्यद्वादशी, अरण्य षष्ठी, अर्क सप्तमी, अशोक कलिकाभक्षण या अशोकाष्टमी, अशोकत्रिरात्र, अशोकद्वादशी, अशोकपूर्णिमा, अशोक प्रतिपदा, अशोकषष्ठी, अशोकसंक्रान्ति, अशोकाष्टमी, अशोकिकाष्टमी, अश्वत्थव्रत, आमलक्येकादशी, आम्रपुष्पभक्षण, उभयनवमी, ऋषिपञ्चमी या या सावाँ पाँचम, कदलीव्रत, कमलषष्ठी और कमल सप्तमी, करवीर प्रतिपदा, कल्पवृक्षव्रत, कूष्माण्डदशमी, कोजागर या कौमुदी महोत्सव, गोधूम, गौरी विवाह, चम्पकषष्ठी, द्वादशी व चतुर्दशी, ताम्बूलसंक्रान्ति, तालनवमी, तिन्दुकाष्टमी, तिलकव्रत, तिलचतुर्थी, तुलसीविवाह, दमनकारोपण, दशाफलव्रत, दानाफलव्रत, दूर्वाष्टमी, दूर्वागणपतिव्रत, दूर्वात्रिरात्रव्रत, द्राक्षाभक्षण या श्यामामहोत्सव, धात्रीव्रत, धान्यव्रत, धान्यसप्तकव्रत, नवान्नभक्षण, नारेली पूर्णिमा, निम्बसप्तमी, पुष्यार्कद्वादशी, फलत्यागव्रत, फलव्रत, फलषष्ठी, फलसंक्रान्ति, फलसप्तमी, फलाहार हरिप्रियव्रत, बकुलामावस्या, बिल्वत्रिरात्रव्रत, बिल्वरोटकव्रत, बिल्वलक्षव्रत, बिल्वशाखा पूजा, मन्दारषष्ठी व सप्तमी, महाफलव्रत, मेघपालीतृतीया, यक्षकर्दम, रम्भातृतीया, रम्भात्रिरात्रव्रत,

वृन्ताकत्याग, शाकसप्तमी, श्रीवृक्षनवमी, षट्तिलाद्वादशी, सर्षपसप्तमी, सस्योत्सव, सोमव्रत, स्नुहीविटपे मनसापूजा इत्यादि (धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थभाग पृष्ठ 97-237)।

भविष्यपुराण के उत्तरपर्व में अशोकव्रत के सम्बन्ध में कहा गया है कि आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सप्तधान्य, फल, नारियल, अनार, मोदक आदि नाना नैवेद्यों से मनोरम सपल्लव अशोक वृक्ष की पूजा करने से कभी शोक नहीं होता है। इस व्रत में अशोक की पूजा के लिए जो मन्त्र दिया गया है, उसका आशय है कि अशोक का वृक्ष व्रतकर्ता के कुल में पिता, भाई, पति, सास व ससुर आदि का शोक दूर करता है- पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च। अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले (भविष्य. उ.प. 9, 4)॥ पुराणकार ने कहा है कि वनगमन के समय सीता ने भी अशोक पूजन के साथ प्रदक्षिणा की थी। इसमें कहा गया है कि अशोक पूजा करने वाली स्त्री पति सहित सांसारिक सुखों का उपभोग कर अन्त में गौरी लोक में निवास करती है।

इसी प्रकार ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा को सूर्योदय वेला में देवोद्यान में लगे करवीर के वृक्ष के पूजन-व्रत का महत्व बताते हुए कहा गया है कि इसको विधिपूर्वक करने वाला सूर्यलोक को प्राप्त होता है। करवीर के लिए कहे गए मन्त्र का भावार्थ है कि वह विष्णु व शङ्कर के मुकुट पर रत्नरूप में सुशोभित होता है, वह भगवान सूर्य को अतिप्रिय है। उसको विष का आवास भी कहा गया है- करवीर विषावास नमस्ते भानुवल्लभ। मौलिमण्डनसद्रत्न नमस्ते केशवेशयोः (वही 10, 4)॥

भविष्यपुराण में फल, मन्दार आदि के मन्त्र भी व्रत सन्दर्भ में दिए गए हैं। ये सूर्य के साथ जुड़े हुए हैं- यथा फलकरो मासस्त्वद्भक्तानां सदा रवे। तथानन्तफला वाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि (वही 39, 11)॥ नमो मन्दारनाथाय मन्दरभवनाय च। त्वं च वै तारयस्वास्मानस्मात् संसादकर्दमात् (वही 40, 11)॥ इन व्रतों का उल्लेख मत्स्यपुराण में भी क्रमशः अध्याय 76 व 79 में हुआ है।

इस प्रकार पुराणकाल में वृक्षविद्या पर विशेष कार्य हुआ। प्रसिद्ध पुराणविमर्शकार रामशङ्कर भट्टाचार्य कहते हैं कि वृक्षों की उपादेयता-अनुपादेयता, कौन वृक्ष छेदनीय है, कौन छेदनीय नहीं, वृक्षों से लौकिक विशिष्ट लाभ- इत्यादि विषयों पर इन ग्रन्थों में जो मत मिलते हैं, परीक्षणपूर्वक उन मतों की उपयुक्तता को जानकर उनका यथासंभव उपयोग करना चाहिए (इतिहासपुराण का अनुशीलन, वाराणसी, 1963 पृष्ठ 117)।

जैन एवं बौद्धकालीन चिंतन-

भारतीय संस्कृति में जैन और बौद्धकाल कृषि और वृक्ष विषयक ज्ञान की दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखता है। अहिंसा के सिद्धांत के प्रचार से पहली बार कृषि के उत्थान में

मदद मिली लेकिन जैन धर्म में अहिंसा के सिद्धांत पर अनावश्यक जोर देने से कृषकों को प्रोत्साहन नहीं मिला; क्योंकि कृषि कार्य में कीड़े-मकोड़ों के मरने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता था। महावीर के विचारों को ऐसे कारीगरों और दस्तकारों ने भी स्वीकार नहीं किया जिनके धंधों में दूसरे जीवों के मरने का खतरा मौजूद था (डी.एन. झा- प्राचीन भारत : एक रूपरेखा, दिल्ली, 1995, पृष्ठ 43 तथा मैक्स वेबर- दी रिलिजन्स ऑफ इण्डिया पृष्ठ 193-202)।

जैन मत में गति और ज्ञान के आधार पर जीव के दो विभाग किए हैं 1. स्थावर अर्थात् जिनमें गमन करने की क्षमता नहीं हो और 2. त्रस अर्थात् जिनमें चलने की क्षमता विद्यमान हो (उत्तराध्ययनसूत्र 36, 68)। इनमें स्थावर जीवों के तीन विभाग हैं- पृथ्वी, जल और वनस्पति और इनमें भी सूक्ष्म और स्थूल जीव होते हैं (वही 36, 69, 78, 86 एवं 100)। स्थूल वनस्पति के दो प्रकार कहे गए हैं- 1. प्रत्येक शरीरी अर्थात् जिसके एक शरीर में एक जीव हो और 2. साधारण शरीरी अर्थात् जिसके एक शरीर में अनंत जीव होते हैं (वही 36, 93)। प्रत्येक शरीरी वनस्पति के 12 प्रकार बताए गए हैं- वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, तृण, लतावलय, पर्वग, कुहुण, जलज,औषधितृण हरितकाय। साधारण शरीरी वनस्पति के अनेक प्रकार कहे गए हैं यथा कन्द, मूल आदि (वही 36, 94-95, 96 एवं 99)।

इस प्रकार जैनाचार्यों ने असि, मषी, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन छह कर्मों को एक ही कोटि का माना और व्यापार को इसलिए स्वीकारा क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष जीव-वध नहीं होता जैसा कि तत्वार्थराजवार्त्तिक में कहा गया है- षडप्येते अविरतिप्रवणत्वात् सावद्यकर्मार्या: (3, 36)।

बुद्ध ने कृषि कार्य पर जोर दिया, पशुओं को कृषि के लिए अनिवार्य बताया, दीघ निकाय के अनुसार बुद्ध ने राजा महाविजित की कहानी सुनाई जिसमें पुरोहित ने किसानों को बीज मुहैया कराने का आदेश दिया था (झा-उपर्युक्त, पृष्ठ 44)। जातकों से ज्ञात होता है कि उस काल में यह कार्य उन्नत दशा में था। खेत को जोतकर, मिट्टी को भुरभुरी करके सुखमय पर बीज रोपण किया जाता था। खेतों का सीमाङ्कन होता था। प्राय: वनभूमि को साफकर खेत तैयार किए जाते थे किंतु उपयोगी वृक्षों को आहत नहीं किया जाता था- सव्वं वनं छिन्दित्वा खेत्ताणी कारित्वा कसिकम्मं करन्सु (जातक-हिंदी, जिल्द 3 पृष्ठ 83)।

इस समय कई प्रकार के अन्न ही नहीं, शाक तरकारियाँ और फल-फूल भी पैदा किए जाते थे। जातकों में ऐसे कई फलों व फूलों का नामोल्लेख है जो कि संस्कृत के

अतिरिक्त तत्कालीन लोकभाषा में व्यवहृत उनके नामों की जानकारी देने की दृष्टि से उपयुक्त है। जैन और बौद्धकाल कृषि क्रांति की दृष्टि से इतिहास में स्वीकार्य रहा है जबकि हल और बैलों को भी महत्व मिला। बीजारोपण अवसर पर 'वप्पमङ्गल' उत्सव इस काल की विशिष्ट परंपरा के रूप में पहचाना गया है। फसल की रखवाली के लिए खेत में पत्तों की झण्डी (धोखा या बीजूका) बांधा जाता था, वृक्षायुर्वेद में भी फूटे मटके का मुंह आदि लगाने का निर्देश है।

जातकों से ज्ञात होता है कि वनों की विद्या को इस काल में पर्याप्त रूप से जाना गया था और वनों के लिए 'वनकम्मिका' की नियुक्ति की जाती थी, फलों व सब्जियों का कारोबार प्रमुखता से किया जाता था और इसके लिए 'मणिक' जन नियुक्त होते थे। 'आरामिक' नाम से माली उद्यानों की देखभाल करते थे और उद्यान को रमणीक बनाए रखते थे। इनको उद्यानपाल भी कहा जाता था। (डॉ. कृष्णाकुमारी श्रीवास्तव : पाली जातक-एक सांस्कृतिक अध्ययन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 284, 283, 278)।

जातकों से ज्ञात होता है कि आरामिकों को पेड़ों में कौतुकीय प्रयोग करना आता था। जातक कथाओं में काशी के एक ऐसे माली का उल्लेख है जो मधुर आमों को कड़ुआ करने की कला में दक्ष था (जातक हिंदी अनुवाद जिल्द 2, पृष्ठ 285-86)। इस काल में अम्बा (आम) कैथा (कपित्थ) पनसा (कटहल) साला (शाल) जम्बु (जामुन) विभितका (बहेड़ा) हरीतिका (हर्रे) आमलका (आँवला) अस्सत्था (पीपल) खदिरानी (खैर) निग्रोधा (बरगद के फल) मधु-मधुका (महुआ) उमरा (उदुम्बर) नारियल (नारिकेल) खज्जुरीन (खर्जूर) सिंघाटिका (सिंघाड़े) पियालानि (चिरौंजी) बदरा (बेर) कदली (केला) आदि फलों का व्यापार व जीवन में उनकी उपयोगिता के महत्व को स्वीकारा जा चुका था (डॉ. श्रीवास्तव, वही 271)। शाक तरकारियों में लौकी कद्दू (लालुकुम्माण्डादीन) कन्दमूल (कलम्बानि) आलु, विलाली (विलालि) तथा तक्कल (तक्कलानि) मुख्य थे और ऐसी हल्दी भी उगाई जाने लगी थी जो स्वर्णवर्ण (सुवण्णहालिदिं) की होती थी, पाण्डुवर्ण की बेल (पण्डुबेलुब) भी प्रमुख उपज थी। ईख उत्पाद आधारित व्यापार इस समय तक महत्व पा चुका था। शक्कर के लिए चरखियों (उच्छयन्ते) का प्रयोग होता था।

वेदों में जहाँ वृक्षों को सम्मान्य स्थान दिया गया, वहीं इस काल में वृक्षों की पूजा को पर्याप्त महत्व मिला। यह लोक विश्वास सुदृढ़ हो चुका था कि वृक्षों में अनेक देवताओं का निवास होता है। इनमें पीपल, वट, नीम आदि वृक्ष मुख्य माने गए। पेड़ों की पूजा के साथ ही पुत्र, पौत्र, संपत्ति, राज्य, सुख-समृद्धि की कामना का जो रूप आज लोकजीवन

में देखा जाता है, वह उस काल में भी था। रेतीलाल मेहता ने लिखा है कि वृक्षों की आत्मा, मनुष्य और जानवरों के रक्त और मांस से सींची जाती थी (प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, मुम्बई 1939 पृष्ठ 326)।

इस समय तक शाल वृक्ष का गाँव, नगर-निगम में होना शुभ माना जाता था। राजकुल तक से उसके लिए बलिपूजा होती थी। वृक्षों को हानि पहुँचाने से वहाँ निवासिन देवता कुपित हो जाता था। इसलिए समय-समय पर वृक्षों को वस्त्र, माला, बलि आदि दिए जाने की परंपरा थी। 'निदान कथा' में सुजाता का उल्लेख है जो वट वृक्ष से कामना करती है कि यदि उसे पुत्र प्राप्ति हुई तो वह हर साल एक लाख व्यय कर उसकी पूजा करेगी।

'हत्थिपालजातक' में निग्रोध या वट वृक्ष को राजा द्वारा प्रतिवर्ष हजार मुद्राओं को अर्पितकर बलि दिए जाने का उल्लेख है। 'धोनसाखजातक' में वृक्ष को बलि देकर विजय निश्चित मानने का विश्वास व्यक्त हुआ है। 'दुम्मेधजातक' में वाराणसी के निवासियों के एक विचित्र विश्वास का उल्लेख है जो वृक्षों को नमस्कार करते हैं और अनेक भेड़-बकरियों, मुर्गों, सूअर आदि का वधकर कई पुष्प-गंधों, रक्त व मांस के साथ बलि अर्पित करते थे। 'महासुतसोमजातक' में उस समय के विश्वासों का चरम ही देखने को मिलता है जबकि एक नरभक्षी अपनी देह के घाव के भरने के लिए वृक्ष देवता की मनौती करता है कि यदि एक सप्ताह में उक्त जख्म ठीक हो गया तो वह सारे जम्बूद्वीप के शत क्षत्रियों के सिरों के रक्त से तेरा तना धोएगा, उनकी अंतड़ियाँ चारों ओर लपेटकर पाँच प्रकार के मधुर मांस से बलिकर्म करेगा (डॉ. श्रीवास्तव : उपर्युक्त 259-60)। बुद्ध ने इस प्रकार के अन्ध विश्वासों को रोका था।

बुद्ध के काल में वनों का पर्याप्त विकास हुआ। अशोक नन्दन वन को पुष्करिणी के समान आनंददायक माना गया व देवताओं का वन तथा तुषितलोक का वन माना गया है। कौमार भृत्य जीवक ने आम्रवन में बुद्ध की पूजा की। बुद्ध अनूप्रिया के निकट आम्रवन में सप्ताह भर रुके। जातकों में खदिरवन, चित्रलतावन, जामुनवन, जेतवन, तपोदाराम, दण्डकारण्य वन, निग्रोधाराम, पारिलेयकवन, महावन, भद्दकुच्छि मिगदाय, यष्ठिवन, लुम्बिनी वन, बेलुवन, शालवन, सिम्बलीवन, अंजनवन, अरण्डवन, एरकवन, केतकवन, कविट्ठवन, कुण्डधानवन, कुरंगवन, कर्णिकारवन, कुमुदवन, कदलीवन, कप्पासिय वन, जातीयवन, नारियलवन, नारीवन, पाटलीवन, पाळिमद्धकवन, बरहलवन, मृगाकीर्णवन, मृगाचिरंवन, रम्यवन, लतावन, सेमरवन, सुभगवन, सरकण्डवन, सीतवन, सुपुत्रवन जैसे वनोपवनों का नामोल्लेख मिलता है, जिनमें से अधिकांश वन वनस्पति की विपुलता के आधार के पहचाने जाते थे।

इसी प्रकार नीलोत्पलवन, रक्तोत्पलवन, श्वेतोत्पलवन, मिश्रितवन, लालशालीवन, नीले, पीले, रक्त, श्वेतवर्ण व सुगन्धित फूलों वाले पौधों के वन, छोटे-बड़े उड़दों के वन, मूँग का वन, कद्दू का वन, पेठे की लताओं के वन, सुपारी, केले व मीठे फलों वाले वन, इमली के वन, कपिट्ठ वन, बाँसों के वन आदि का उल्लेख छद्दन्तजातक में हुआ है (जातक हिंदी जिल्द 5 पृष्ठ 136)। इससे लगता है कि इन वनों के विकास के लिए निश्चय ही तब तक वैज्ञानिक विधियां काम में ली जाने लगी होंगी। वनों का यही विस्तृत आधार परवर्ती उपपुराणों, ओपपुराणों व स्थलपुराणों के वन वर्णन के लिए भी अनुसरणीय बना, हालांकि वे ब्राह्मण, आरण्यक और वैदिक निर्देशों के निकट अधिक थे।

महाकाव्यकालीन अवधारणा-

महाकाव्यों के रचनाकाल को लेकर विवाद है किंतु उनका सृजन पाँचवीं सदी ईसा पूर्व आरंभ हो गया था और यह क्रम गुप्तकाल तक रहा, इस पर विद्वान लगभग सहमत है। महाभारत की 'जयसंहिता' रूप में उपलब्धता व भारत के रूप में विस्तार और रामायण को उसी के एक आख्यान के रूप में स्थापित करने के कई प्रयास हुए हैं तथापि यह निर्धारित है कि ये आख्यान और इनका परिवेश नवीन नहीं है।

'महाभारत' व 'वाल्मीकीय रामायण' में वृक्षों और उद्यानों पर कई प्रसंग मिलते हैं। वन की महिमा मोक्षधर्माभ्यासी के लिए अरण्यनित्य होने के धर्मसूत्रीय निर्देशों की भाँति ही महाभारत में निहित है- वननित्यैर्वनपरैर्वनस्थैर्वनवासिभिः। वनं गुरुमिवासाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः (अनुशासनपर्व 141, 13)। आर्यों द्वारा जहां वृच्छोच्छेदन के अनन्तर यज्ञार्थ भूमि उद्धार का उल्लेख मिलता है वहीं महाकाव्यों ने वनों में भी यज्ञ सत्रों गाथाओं का गायन किया है- नैमिसारण्ये शौनकस्य कुलपतेः द्वादशवर्षिके सत्रे (आदिपर्व 1, 1)।

महाभारत में वृक्षों की सजीवता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है और कहा गया है वे देखते नहीं किंतु अचेतन नहीं है- सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात् जीवं पश्यामि वृक्षाणां अचैतन्यं न विद्यते (शान्तिपर्व 184, 17)। वृक्षावयवों का जो रूप मार्कण्डेय पुराण (35, 8-12) ने प्रस्तुत किया है, वह महाभारत (आदिपर्व 1, 88-91) से ही अभिप्रेरित है जिसमें बीज, मूल, स्कन्ध, विटङ्क, सार, महाशाखा, पलाश आदि शब्द मुख्य है। ऐसे ही रूपक आदिपर्व (1, 110-111) तथा उद्योगपर्व (29, 52-53) में भी प्रस्तुत किए गए हैं।

इस काल तक अश्वत्थ वृक्ष की पूजा को महत्व मिल गया था। महाभारत के युद्धपर्वोक्त गीता में श्रीकृष्ण ने यदि वृक्षों में अश्वत्थ स्वयं को बताया है तो अनुशासन पर्व में देवराज के प्रति विष्णु का कथन बताया गया है कि जो कोई पीपल, गोरोचना व गाय

की पूजा करता है उसके द्वारा देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत की पूजा हो जाती है- अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद् या नर: सदा ॥ पूजितं च जगत् तेन सदेवासुरमानुषम् (अनु. 126, 5-6)।

इसी प्रकार रामायणकाल में फलों के उद्यानों का लोग बहुत परिश्रम के साथ विकास करते थे, फलोद्यान उनके जीविकोपार्जन के साथ जुड़े थे। वाल्मीकि ने रावण की अशोकवाटिका का जो वर्णन किया है, वह रोचक है- सालान्शोकान् भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान्। उद्दालकान् नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि॥ तथाऽऽम्रवणसम्मपन्नां-ल्लताशतसमन्वितान्। ज्यामुक्त इवं नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकान् (5, 14, 3-4)।

सुग्रीव के मधुवन का वर्णन भी अद्भुत है- यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्या-भिरक्षितम्। अघृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् (वही, 61, 8)। इसके साथ ही अयोध्यापुरी की स्थिति के वर्णन में उसे आम्रवृक्षों के उद्यानों से घिरा हुआ बताया है। ये वृक्ष वहां की समृद्धि की परिचायक थे- उद्यानाम्रवणोपेतान् महती सालमेखलाम् (1, 5, 12)। महाकवि का यह कथन वृक्षों के लिए लोक समुदाय की चिंताशीलता को प्रदर्शित करता है कि राम के काल में वृक्षों की जड़ें सदैव सुदृढ़ रहती थी और वृक्ष सदा ही फलों से लकदक रहते थे- नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिता (6, 128, 103)। उस काल में यह मान्यता थी कि वायु और धूप से सूखकर नष्ट हुआ बीज भी वर्षा के जल से हरा हो जाता है- वातातपक्लान्त मिव प्रणष्टं वर्षेण बीजं प्रतिसंजहर्ष (5, 29, 6)

रामायणकाल में एक ऐसी कौतुकी उद्यान-शृङ्खला होने का वर्णन भी मिलता है जो वानर केसरी के रमणस्थल सुवर्णमयगिरि महामेरु पर थी और वहाँ के वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाँछित वस्तुओं को फल के रूप में प्रदान करने का सामर्थ्य रखते थे। वे वृक्ष सदा ही फलान्वित रहते थे- मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः। सर्वकामफलावृक्षाः सदाफल समन्विता (1, 5, 12)। डॉ. जगदीशचंद भट्ट ने लिखा है कि उस काल में विकसित उद्यानकला से हम कह सकते हैं कि लोग उद्यानों के वर्द्धन एवं पोषण में प्रवीण थे तथा अधिकाधिक फलों को प्राप्त कर उनके विक्रय से अपनी आजीविका चलाते थे। (रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति, दिल्ली 1984 पृष्ठ 40)

रामायणकालीन सस्यशालिनी वसुन्धरा का चित्र आज के कृषि व वनस्पतिविदों के लिए अवश्य ही प्रासंगिक एवं अभीप्सित होगा- वाष्पछन्नायरण्यानि यवगोधूमवन्ति च। शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौञ्चसारसेः ॥ खर्जूर पुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः। शोभन्ते किञ्चिदालम्बा शालयः कनकप्रभाः (3, 16, 16-17)।

इस प्रसंग में तुलसीदास की यह कहावत भी स्मरणीय है कि कितना ही सीञ्चा

जाए किंतु काटने पर ही कदली का पेड़ फल देता है– काटेहिं पई कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच (रामचरितमानस 5, 58)।

स्मृतिकालीन निर्देश–

स्मृतियों में मनु, याज्ञवल्क्य आदि 20 स्मृतियाँ वर्तमान में विद्यमान हैं किंतु मनु की अपेक्षाकृत पुरानी और जैन व बुद्ध की परवर्ती स्वीकारी गई है। इसमें वृक्ष व कृषि सम्बन्धी मान्यताएं पारंपरिक ही हैं। इस समय तक बीजों, भूमि के भेद और गुणों का परिचय कृषि ज्ञान के लिए आवश्यक माना गया था (9, 330)। बीजों में मिलावट करने वालों को दण्ड का प्रावधान कर दिया गया था ताकि प्रमाणित बीज–शुद्धि रहे (9, 291)। इस समय तक वसंत और शरद में दो फसलें ली जाती थी (6, 11)। इस काल में कपास, जौ, गेहूँ, ब्रीहि, मूँग, तिल, उड़द, ईख और शाक की पैदावार बहुत ध्यान पूर्वक ली जाती थी (9, 39) तथा राजा दण्ड का भय दिखाकर भली प्रकार से उपज लिए जाने का प्रावधान करता था (8, 243)। मनु ने अधर्म के सम्बन्ध में वृक्षोक्ति से कहा है कि वह समय आने पर अवश्य फल देता है– नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति (4, 172)॥

मनु ने सर्वप्रथम जल विषयक विद्या 'दकार्गल' का प्रतिपादन किया, ऐसा वराह और उसके विवृत्तिकार उत्पल ने संकेत दिया है। मनु को ही ओषधियों की प्रथम खोज का श्रेय ऋग्वेद देता है। यह ओषधि भयों को नष्ट करने वाली थी। मरुद्गणों से ऐसी ही ओषधि की कामना की गई है– या वो भेषजा मरुतः शुचिनिया शन्मा वृषणो मयोभु। यानि सनुरवृणीता पिता नस्ता श च योश्च रुद्रस्य वश्मि (2, 33, 13)॥

स्मृतिकारों ने वृक्षों को आहत करने, काटने या हानि पहुँचाने पर दण्डादि का प्रावधान भी किया है। स्मृतियों में 'वास्तुकेगृहवास्तुकम्' संज्ञक अपराधों में गृह, खेत, उपवन, सेतुबंध, सीमा तथा फूल–फल के बगीचे, सरोवरादि सम्मिलित थे, अर्थशास्त्र (38, 3, 9) और गौतमगृहसूत्र (2, 3, 34–35; 2, 6, 19) इसकी पुष्टि करते हैं।

'मत्स्यपुराण' ने मनु प्रोक्त दण्डप्रावधानों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि फलयुक्त वृक्ष को काटे जाने पर अपराधी को सुवर्ण का दण्ड दिया जाना चाहिए– वृक्षं तु सफलं छित्त्वा सुवर्णं दण्डमर्हति (मस्त्य. 227, 91)। यदि वह वृक्ष किसी सीमा, मार्ग या जलाशय के समीप है तो अपराधी को दुगुना दण्ड दिया जाना चाहिए– द्विगुणं दण्डयेच्चैनं पथि सीम्नि जलाशये (वही)। फलरहित पेड़ को काटने पर मध्यम साहस (पाँच सौ पर्ण) के दण्ड का प्रावधान किया गया है– छेदनादफलस्यापि मध्यमं साहसं स्मृतम् (वही 92 तथा मनु. 8, 285)। इसी प्रकार गुल्मों, लताओं तथा बल्लियों को काटने

पर एक माशा सुवर्ण का दण्ड दिया जाना चाहिए और बिना किसी आवश्यकता के तृण को भी नष्ट कर दिए जाने वाले को एक कार्षापण का दण्ड मिलना चाहिए- गुल्मवल्लीलतानां च सुवर्णस्य च माषकम्॥ वृथाच्छेदी तृणस्यापि दण्ड्यः कार्षापणं भवेत् (वही 92-93)।

यही नहीं, पेड़ों के काटे जाने पर राजा को देश व काल के अनुसार उचित मूल्य का दण्ड देते हुए वह दण्ड वृक्षादि के स्वामी को दिलाने का प्रबंध करना चाहिए- देशकालानुरूपेण मूल्यं राजा द्रुमादिषु। तत्स्वामिनस्तथा दण्ड्या दण्डमुक्तस्तु पार्थिव (वही 94)। ऐसे ही प्रावधान पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली, अधिक अन्न, शाक, मूल और फल की चोरी करने पर निर्धारित किए गए हैं किंतु कोई अकिञ्चन ब्राह्मण मार्ग में चलते हुए दो ईख, दो कन्द या मूली, दो खीरे, दो तरबूज, दो अन्य फल, दो मुट्ठी अन्य या साग चुरा ले तो वह चोर नहीं होता। इसी प्रकार भोजन के लिए वृक्ष से उत्पन्न फल, मूल और ईंधन की लकड़ी और गाय के लिए घास लेने वाला भी दण्ड की सीमा में नहीं आता। देवता के लिए देवता की बाड़ी के अतिरिक्त अन्य खेत से पुष्प तोड़ना भी दण्डनीय नहीं माना गया है (वही 108, 9, 11-13, मनु. 8, 339, गौतम. 12, 25, अर्थ. 4, 10 एवं अग्निपुराण अ. 258)।

अन्य प्रसङ्गों के अनुसार सीमा निर्धारण के वृक्ष, देवालय, राजचिह्नित वृक्ष, राजभवन के वृक्ष को क्षति पहुंचाने पर भी दण्ड का प्रावधान था। इन प्रकरणों में फल, फूल, पत्ते, पुष्प नष्ट करने पर 18 पण दण्ड, शाखा भञ्जन पर 28 पण, आधा पेड़ काटने पर मध्यम साहस, पूरा पेड़ काटने पर उत्तम साहस दण्ड दिया जाता था- सोमवृक्षेषु चैत्येषुद्रुमेष्वालक्षितेषु च। त एव द्विगुणदण्डाः कार्यराजवनेषु च॥ (अर्थ. 3, 19, 1)। याज्ञवल्क्य ने फलदार पेड़ों के नष्टकर्ता को 80 पण का दण्ड, न्यून वृक्षों के संहारक को 20 एवं 40 पण, धार्मिक स्थानों के पीपल आदि वृक्षों को काटने पर 160 पण के अर्थदण्ड का निर्देश दिया है (2, 227-228)।

स्मृतियों में इष्टापूर्तकर्म के अन्तर्गत उद्यान लगाना, फलदार, छायादार वृक्षों का रोपण जैसे विषयों को महत्व दिया गया है- इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते॥ वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते। आरामश्च विशेषण देवद्रोण्यस्तथैव च। वापीं कूपतडागानि देवतायतानि च। पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तंफलमश्नुते॥ (लघुयमस्मृति 68-70)॥ लिखितस्मृति में इष्टापूर्त को प्रयत्नपूर्वक करने का निर्देश दिया गया है। भूमिदान व गोदान के पुण्य से जो लोक प्राप्त होते हैं, उनकी प्राप्ति वृक्षारोपण से हो जाती है- भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः। तांल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे (3)॥ अनध्याय जैसे प्रसङ्ग में स्मृतिकारों ने ऐसे वृक्षों की सूची दी है जिनके तले अध्ययन निषिद्ध होता है-

श्लेष्मातकस्य छाययाँ शाल्मलेर्मधुकस्यः च। कदाचिपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः (औशनसस्मृति 181)॥

विष्णुस्मृतिकार की यह उक्ति तो अनुपम ही कही जाएगी कि जो मनुष्य वृक्षों का आरोपण करते हैं, वे वृक्ष परलोक में उसके पुत्र होकर जन्म लेते हैं। वृक्षों का लगाने वाला पुष्पों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करता है, फलों द्वारा अतिथियों को संतुष्ट करता है, धूप व वर्षा में छाया द्वारा अभ्यागतों को प्रसन्न करता है।

शुक्र ने तो राज्य व्यवस्था की तुलना कई स्थानों पर वृक्षावयवों से की है- राज्य एक वृक्ष है जिसका मूल राजा है, उसका स्कन्ध मन्त्री, उसकी शाखा सेनापति, उसके पल्लव और कुसुम सेना, फल प्रजा और बीज भूभाग हैं (1, 61-62)। इसी प्रकार राजा व माली की तुलना है (4, 221)। नीतिशास्त्रों में इस प्रकार के कई निर्देश मिलते हैं। ग्यारहवीं सदी में सोमदेवसूरि ने सस्य, वनस्पति को महत्व देते हुए राजकोश के अङ्ग के रूप में इसे देखा है। उन्होंने नीतिवाक्यामृत में जिस प्रजापरिपुष्टि सिद्धान्त की परिकल्पना की है, उसका उत्स वन्य संपदा है- दुधियाते गेहूँ, जौ आदि धान्य को ग्रहण करने वाला राजा अपने अधीन जनपद की प्रजा का उन्मूलक ही होता है (19, 15)।

मौर्यकालीन अवदान -

वेदों में अथर्ववेद इसका उत्स माना जाता है। आयुर्वेद में जब औषधीय पौधों के निर्धारण, चयन और संरक्षण को महत्व मिला तो मानवीय देह की भांति वृक्षयष्टि की आरोग्यता की दिशा में भी वैद्य विशारदों ने सोचा ही होगा। मौर्यकाल तक आते-आते इस सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञानानुशासन का विकास हो चुका था और यह विषय अध्यययोग्य मान लिया गया था। तत्कालीन ग्रंथ इस तथ्य पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं कि तब कृषि निदेशक को कृषितंत्र (कृषिविद्या), शुल्बशास्त्र (पैमाइश) के साथ ही वृक्षायुर्वेद (वनस्पतिजीवन की विद्या) में निपुण होना पड़ता था। (राधाकुमुद मुखर्जी : चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 132) ऋग्वेद में कृषि-विशेषज्ञ को 'क्षेत्रवित्' कहा गया है और जिसे इस विद्या का ज्ञान नहीं है उसे 'अक्षेत्रवित्' नाम दिया गया है (ऋग्वेद 10, 32, 7)।

इस काल में शस्योपयोगी ऋतुओं पर पर्याप्त अनुसंधान हुआ तथा उस समय बोये जाने वाले पेड़-पौधों, शाक-धान्यादि पर प्रभावादि का निरीक्षण किया गया। चाणक्य के अनुसार खेती के मौसम और फसलों का वर्गीकरण इस प्रकार है-

1. पानी की फसलें- शाली या ब्रीहि (चावल), कोद्रव (कोदो), तिल, मिर्च और प्रियाङ्गु (जाफरान)। ये फसलें सबसे पहले, वर्षा में बोई जाती थी इसलिए इनको

'पूर्ववाप:' कहा जाता था।

2. शीत की फसलें (हैमनम्)- मुद्ग (मूँग) तथा माष (उड़द) की दालें।

3. ग्रीष्म की फसलें (ग्रैष्मिकम्)- ये अन्तिम फसलें थीं। कुसुंभ (जाफरान), मसूर, कुलुत्थ, यव (जौ), गोधूम (गेहूं), कलाय, अवसी और सर्षप (सरसो) की फसलें ग्रैष्मिक कही गई है।

चाणक्य ने राजाओं के लिए सेतु, वारि-स्थल-पथ, आराम (बगीचे) और इसीं प्रकार के सार्वजनिक हित के कार्य कराने का निर्देश दिया है। इससे पूर्व के राजाओं के निर्माणों की रक्षा व नए निर्माण कराना भी राजधर्म माना गया है (द्वितीय अधिकरण, १)। इससे पूर्व 'संयुक्त निकाय' में स्पष्ट निर्देश किया गया है कि जो लोग बगीचे और फलों के पेड़ लगवाते हैं और जो लोग पुल के सिरों की ऊंची सड़कें और बांध बनवाते हैं, कुएँ और प्याऊ बनवाते हैं और (बेघरबार लोगों को) आश्रय देते हैं- वे स्वर्ग में जाते हैं (1, 5, 7)।

इस समय तक खाद्यान्न की फसलों पर भी पर्याप्त विचार किया गया था और शाल्यादि की फसल को ज्येष्ठ या महत्वपूर्ण इसलिए माना गया था क्योंकि इनको कम व्यय और कम मेहनत से उगाया जा सकता था और इनकी पैदावार भी अच्छी होती थी। इसके बाद कदली आदि फलों (शण्ड: कदल्यादि) को महत्व मिला। ईख (इक्षु) को बुरी फसल इसलिए कहा गया क्योंकि इसे चूहे आदि जानवरों से बहुत हानि पहुँचती है, इसमें लागत पर्याप्त लगती और ईख की कटाई से लेकर पेराई व रस को कड़ाहों में उबालने तक के कार्यों पर अधिक श्रम व्यय होता।

फलों के बागों को 'शण्ड' एवं उद्यानों को 'वाट' कहा जाता था। फलों की पैदावार पर राज्य को अदा किया जाने वाला भाग 'कर' तथा राज्य के तालाबों से सिञ्चित भूमि का कर 'कोष्ठेयक' कहा जाता था। इसी प्रकार पशुओं द्वारा फसलों को होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति 'परिहीणक' नाम से ली जाती थी।

पेड़-पौधों को उगाने के लिए विभिन्न प्रकार की भूमि का भी चाणक्य के काल में अध्ययन किया गया था। चाणक्य ने जमीन की प्रकृति के अनुसार पैदावार का संकेत इस प्रकार दिया है-

1. फेनाघात- अर्थात् झाग के थपेड़े वाली भूमि जो नदियों के किनारे की और दलदली होती है। यह कद्दू, लौकी आदि वल्लीफलों के लिए बहुत उपयोगी होती है।

2. परिवाहान्त- अर्थात् वह भूमि जिस पर बाढ़ का पानी जमा हो जाता है। यह

ईख (इक्षु), मिर्च (पिप्पली), तथा अङ्गूर (मृद्वीका) के लिए उपयुक्त होती है।

3. **कूप पर्यन्त**- अर्थात् वह भूमि जिसे कुएँ के पानी से सींचा जाता था। यह सब्जियों (शाक) और उन पौधों के लिए श्रेष्ठ मानी जाती थी जिनकी जड़ें खाई तक पहुँचती हो।

4. **हरणीपर्यन्त**- अर्थात् नहरों (कुल्या), झीलों या सरोवरों के पास की भूमि जिस पर चारा (हरितक) आदि अच्छा होता है।

5. **खेत के बीच की भूमि**- इसका लौंग, जड़ी-बूटियाँ और सुगन्ध के पौधे उगाने के लिए उपयोग किया जाता था। ओषधियों के पौधे यथा आवश्यकता दलदली और सूखी भूमि पर उगाए जा सकते थे।

इस काल तक कृषि और वन क्षेत्र के विकास और संरक्षण के लिए सीताध्यक्ष (द्वितीय अधिकरण, 24) का कर्त्तव्य था कि वह विभिन्न फसलों के बीजों का भण्डार अपने पास रखता था। इनमें अनाज (धान्य), फूल, फल सब्जी (शाक), जड़ीबूटी (कन्द), सन आदि (क्षौम), तथा कपास (कार्पास) इत्यादि। वह इन कार्यों के लिए आवश्यक औजार हल, रस्सी, हँसिया आदि (कर्षण-यंत्र) के साथ ही बैल देता था। किसानों, वन पालकों के सहायतार्थ शिल्पकार (कारु) गाँव-गाँव होते थे, जैसे लौहार (कर्मार: अयस्कार:), बढई (कुट्टाक: तक्षा), खोदने वाला (मेदक या खनक अथवा भेदक), रस्सी बंटने वाला (रज्जुवर्तक:) और पौधों को हानि पहुँचानेवाले जीव-जंतुओं (सर्पग्राहादि) को नष्ट करने वाला।

मौर्य राजवंश के केंद्रीय अन्न भण्डार (कोष्ठागार) में वर्षा नापने की व्यवस्था होती थी और राज्य की ओर से मौसम की पूर्व घोषणाएं करने की परंपरा थी (अधिकरण द्वितीय, 5)। कोष्ठागार में ऐसा पात्र रखा जाता था जिसका मुँह 1 अरत्नी चौड़ा होता और यह वर्षा नापने के काम आता था। तब एक अरत्नी 24 अङ्गुल और आज के डेढ़ फुट के के बराबर था।

इस काल में वन को राजकीय सम्पत्ति माना गया था। राज्य का अधिकारी 'कुप्याध्यक्ष' उसकी निगरानी के लिए नियुक्त होता था (द्वितीय अधिकरण, 17)। वह जंगल के रखवालों (वनपाल) की सहायता लेता था और ऐसे लोगों की सवैतनिक नियुक्ति करता था जो पेड़ों के प्रत्येक भाग से, मूल, तना, शाखा और फुनगी तक से भलीभाँति परिचित होते थे। इनको 'वृक्षमर्मज्ञ' कहा गया है। ये लोगों पेड़ों का परीक्षण करते थे और इनके ही परामर्श पर यह निर्णय होता था कि दुर्ग, प्राकारादि (दुर्गतारणार्थ) के लिए पेड़ों के किन हिस्सों को, वृक्ष को हानि पहुँचाए बिना काटा जा सकता है। यदि

कोई आदेश के विपरीत कुठार चला देता तो उसे दण्ड दिया जाता किंतु संकटकाल में जैसे कि रास्ते में ही वाहन क्षतिग्रस्त हो जाता तो उसके अनुरक्षण के लिए यदि कोई काष्ठ काट लेता तो उसका अपराध क्षमा योग्य (अन्यत्रआपदभ्य:) माना जाता था।

मौर्यकाल में वृक्षों का उनकी प्रजाति या कोटि के अनुसार वर्गीकृत कर लिया गया था, कदाचित यह प्रथम वैज्ञानिक आधार पर वृक्ष जातियों का विभाजन है। चाणक्य का वृक्ष-वन विभाजन इस प्रकार है-

1. **दारुवर्ग**- इसके अन्तर्गत शाल, शिंशप (सीसम) आदि के पेड़ आते हैं जिनकी लकड़ी इमारती कार्य में ली जाती रही है।

2. **वेणुवर्ग**- नाना प्रजातियों के बाँस, बरु आदि।

3. **वल्लीवर्ग**- बेंत (वेत्र) आदि नानाभेदों वाली बेलें, लताएँ।

4. **वल्कलवर्ग**- सन (शण) जैसे अनेक प्रकार के रेशों वाले पौधे।

5. **रज्जुभाण्ड**- मूँज (मुञ्ज) आदि रस्सियाँ बनाने की सामग्री।

6. **पत्र**- अर्थात् लिखने के लिए विभिन्न पेड़ों के उपयोगी पत्ते जैसे ताड़पत्र।

7. **रंगों के लिए कुसुम**- जैस कि किंशुक, कुसुम्भ और कुंकुम।

8. **औषधीय वर्ग**- वह वनस्पति जो औषधि के लिए उपयोगी होती है (कन्द, मूलफल)।

9. **विषवर्ग**- इस कोटि में ऐसे पेड़ों को लिया गया जो कि विषैले हों।

इस प्रकार चाणक्य अथवा प्रारंभिक मौर्य काल में वृक्ष विज्ञान के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन किया गया और नाना रूप में इस ज्ञान की शाखाओं को विकसित और उन्नित करने का यत्न हुआ। मूर्तियों में वृक्ष-वनस्पति का चित्रण भी इस काल की महत्वपूर्ण देने है। इस दिशा में सम्राट अशोक (269-232 ई.पू.) ने बहुत रुचि ली।

अशोक के प्रयास-

सम्राट अशोक ने वृक्षों के प्रति शासक और सर्वसामान्य के कर्त्तव्य को समझने का प्रयास किया। उसके शिलालेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि इस मौर्य कुमार ने जनहितकारी जो निर्णय किए, उनमें पर्यावरण की रक्षा के रूप में प्राणियों को अभयदान, वृक्षारोपण और वृक्षों का संरक्षण अहम था।

अशोक ने औषधीय वृक्षों, जड़ी-बूटियों की पहचान के साथ ही उनके रोपण, संरक्षण के लिए न केवल आज्ञा (260-258 ई. पू.) जारी की, स्वयं भी इस कार्य का

संपादन किया। उसने राज्य में सभी ओर तथा पडौसी राज्यों चोड, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी और अंतियोक नामक यवन राज तक ओषधि उद्यानों का भी प्रबन्ध किया जिनमें चिकित्सा के लिए ओषधियां, जड़ी-बूटियाँ, फल आदि लगाए गए। जहाँ पर ये उपलब्ध नहीं थे, वहां बाहर से मंगाकर लगाए गए थे। गिरनार के द्वितीय अभिलेख में स्वयं अशोक की स्वीकारोक्ति है-

सर्वत विजितम्हि देवानंप्रियस पियदसिनो राञो

एवमपि प्रचंतेसु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो आ तंब-

पणी अंतियको योन-राजा ये वा पि तस अंतिय्(I)कस्(I) सामीप् (i)

राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे चिकीछा कता

मनुस-चिकीछा च पसु चिकीछा च ओसुढानि च यानि म(I)नुसोपगा(f)न च

पसो(प)गानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि च रोप(I)पितानि च

मूलानि च फलानि च यत यत्र नास्ति सर्वत हारापितानि च रोप(I)पितानि च

पंथेसू कूपा च खानापिता व्रछा च रोपापित(I) परिभोगाय पसुमनुसानं।

अशोक ने सड़कों पर उसके मनुष्यों व पशुओं को छाया देने के लिए बरगद के पेड़ लगवाए, आम्रवाटिकाएं लगवाईं, हर आधे कोस पर कुएँ खुदवाए, सरायें भी बनवाई, अनेक प्याऊ-पौसले (आपान) भी स्थापित किए। जैसा कि सातवें स्तम्भ लेख में वह कहता है-

देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

मगेसु पि मे निगोहानि लोपापितानि छायोपगनि होसंति

पसु मुनिसानं अंबा-वडिक्या लोपापिता

अढ(को)f(स)क्यानि पि मे उदुपानानि

खानापापितानि निंसि(ढ)या च कालापिता

आपानानि मे ब(ह)ु कानि तत क(I)लापितानि पटीभो-गाये

प(I)सु-मुनिसानं

(ल)... एस पटीभोगे नाम

विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च

सुखयिते लोके

इमं च धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे.... ।

इसमें अशोक यह भी स्पष्ट करता है कि यह उपकार कुछ भी नहीं है, पहले के राजाओं ने भी ऐसा किया है, किंतु वह इसलिए कर रहा है कि लोग धर्म के अनुसार आचरण करें । उसकी दूसरी रानी, तीवर की माता कारुवाकी ने आम्रवाटिका, उद्यान आदि का दान किया-देवानंप्रियषा व् (ा)चनेना सवत महमता, वतविया ए हेता दुतियाये देवीये दाने, अंबा-वडिका वा आलमे व दान-(गह) (व ए वा पि अ) ने, कीछि गनीयति ताये देविये षे नानि (हे) व...... (न)... दुतीयाये देविये ति तीवल मातु कालुवाकिये ।

इस प्रकार अशोक के काल में वृक्षारोपण का केवल महत्व ही नहीं समझा गया, वृक्षारोपण किया भी गया, वाटिकाओं का विधान भी आरंभ हुआ। इसे राजधर्म के रूप में मान्यता मिली। आयुर्वेद के साथ ही वृक्षायुर्वेदोक्त रोपण विधियों का व्यावहारिक प्रयोग भी इस समय हुआ, ऐसा बोध होता है।

अशोक और अन्य पूर्व व परवर्ती नृप-निर्देश शुक्रादि नीतिग्रंथों के लिए महत्वपूर्ण आधार बने। अशोक ने गिरनार के लेख में जिस उद्यान का संकेत किया है उसकी तुलना मैक्क्रिंडल ने एरियन (13, 18) के उल्लेख से करते हुए स्पष्ट किया है कि अशोक का पाटलीपुत्र में भव्य उ़द्यान था। 'बगीचों में पालतू मोर और महोख है। छायाप्रद बाग है, चरागाहों में पेड़ लगाए गए हैं, जिनमें से कुछ पेड़ तो हमेशा हरे-भरे रहते हैं, कुछ सदाबहार पर रहते हैं। कुछ पेड़ स्थानीय है, कुछ बाहर से मंगाए गए हैं और अपने सौंदर्य से भूदृश्य का सौंदर्य द्विगुणित करते हैं। तोते राजा के सिर पर गोलाई में मंडराया करते हैं। महल की खुली हुई जमीनों में सुन्दर बावलियां हैं जिनमें बहुत बड़ी मछलियां पाली जाती है। राजा के बेटे उनसे खेलते हैं। वे इन बावलियों में नावें चलाते हैं।' जातक (हिंदी के द्वितीय जिल्द) में भी इस प्रकार के उद्यानों व उद्यान-यात्रा का उल्लेख मिलता है।

राधाकुमुद मुखर्जी इस उद्यान की तुलना चाणक्य (2, 3) से करते हैं और कहते हैं कि वह मृगवन है जो राजा के आनंद के लिए होता था। इस शिकार के वन के चारों ओर खाई होती थी, उसमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष होते थे, झाड़ियों, लता-मण्डप और बिना कांटों के वृक्ष होते थे। राजा के आनंद के लिए इनमें अनेक जंगली जीव जैसे बाघ, हाथी, कबूतर आदि रखे जाते थे। इनके घातक अङ्ग जैसे पंजे और दांत काट दिए जाते थे। (मुखर्जी राधाकुमुद : अशोक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1995, पृष्ठ 123 पर पाद टिप्पणी)

सुखयिते लोके

इमं च धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे.... ।

इसमें अशोक यह भी स्पष्ट करता है कि यह उपकार कुछ भी नहीं है, पहले के राजाओं ने भी ऐसा किया है, किंतु वह इसलिए कर रहा है कि लोग धर्म के अनुसार आचरण करें । उसकी दूसरी रानी, तीवर की माता कारुवाकी ने आम्रवाटिका, उद्यान आदि का दान किया-देवानंप्रियषा व् (ा)चनेना सवत महमता, वतविया ए हेता दुतियाये देवीये दाने, अंबा-वडिका वा आलमे व दान-(गह) (व ए वा पि अ) ने, कीछि गनीयति ताये देविये षे नानि (हे) व...... (न)... दुतीयाये देविये ति तीवल मातु कालुवाकिये।

इस प्रकार अशोक के काल में वृक्षारोपण का केवल महत्व ही नहीं समझा गया, वृक्षारोपण किया भी गया, वाटिकाओं का विधान भी आरंभ हुआ। इसे राजधर्म के रूप में मान्यता मिली। आयुर्वेद के साथ ही वृक्षायुर्वेदोक्त रोपण विधियों का व्यावहारिक प्रयोग भी इस समय हुआ, ऐसा बोध होता है।

अशोक और अन्य पूर्व व परवर्ती नृप-निर्देश शुक्रादि नीतिग्रंथों के लिए महत्वपूर्ण आधार बने। अशोक ने गिरनार के लेख में जिस उद्यान का संकेत किया है उसकी तुलना मैक्रिंडल ने एरियन (13, 18) के उल्लेख से करते हुए स्पष्ट किया है कि अशोक का पाटलीपुत्र में भव्य उद्यान था। 'बगीचों में पालतू मोर और महोख है। छायाप्रद बाग है, चरागाहों में पेड़ लगाए गए हैं, जिनमें से कुछ पेड़ तो हमेशा हरे-भरे रहते हैं, कुछ सदाबहार पर रहते हैं। कुछ पेड़ स्थानीय है, कुछ बाहर से मंगाए गए हैं और अपने सौंदर्य से भूदृश्य का सौंदर्य द्विगुणित करते हैं। तोते राजा के सिर पर गोलाई में मंडराया करते हैं। महल की खुली हुई जमीनों में सुन्दर बावलियां हैं जिनमें बहुत बड़ी मछलियां पाली जाती है। राजा के बेटे उनसे खेलते हैं। वे इन बावलियों में नावें चलाते हैं।' जातक (हिंदी के द्वितीय जिल्द) में भी इस प्रकार के उद्यानों व उद्यान-यात्रा का उल्लेख मिलता है।

राधाकुमुद मुखर्जी इस उद्यान की तुलना चाणक्य (2, 3) से करते हैं और कहते हैं कि वह मृगवन है जो राजा के आनंद के लिए होता था। इस शिकार के वन के चारों ओर खाई होती थी, उसमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष होते थे, झाड़ियों, लता-मण्डप और बिना कांटों के वृक्ष होते थे। राजा के आनंद के लिए इनमें अनेक जंगली जीव जैसे बाघ, हाथी, कबूतर आदि रखे जाते थे। इनके घातक अङ्ग जैसे पंजे और दांत काट दिए जाते थे। (मुखर्जी राधाकुमुद : अशोक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1995, पृष्ठ 123 पर पाद टिप्पणी)

यह विवरण 'वृक्षायुर्वेद' के प्रारंभिक श्लोक व वाटिकाविधि के निर्देश के उत्स के रूप में देखा जा सकता है तथापि राजाओं के अनुरञ्जनार्थ आरामादि के निर्माण के लिए इस प्रकार का निर्देश धाराधिप भोज ने समराङ्गणसूत्रधार, भुवनदेवाचार्य ने अपराजितपृच्छा या सूत्रसंतान गुणमञ्जरी, भूलोकमल्ल सोमेश्वर ने मानसोल्लास या अभिलषितार्थचिंतामणि, सूत्रधार मण्डन ने राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्, वास्तुसारमण्डनम् तथा वास्तुमण्डनम् और सूत्रधार नाथा ने वास्तुमञ्जरी आदि ने भी दिया है।

वृक्ष, वनस्पति विषयक मन्त्र-टोनादि विश्वास-

'वृक्षायुर्वेद' में वृक्षों को ईतियों से बचाने के लिए मन्त्र दिया गया है। इन्द्रजाल, कौतुक रत्नभण्डार आदि में भी वृक्षों के लिए ऐसे प्रयोग मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में ऐसे उल्लेख उपलब्ध हैं जिनमें पेड़ों के लिए टोने-टोटके का प्रयोग बताया गया है।

कौटिल्य ने बीज वपन के समय उच्चारण के लिए एक मन्त्र दिया है। चाणक्य का कहना है कि बुवाई से पूर्व बीज को सोनाजल या जिस जल का सोने से स्पर्श कराया गया हो, में डाल दें तथा फिर इसी एक मुट्ठी बीज को निम्न मन्त्र को बोलते हुए खेत में बोया जाए- सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसंप्लुतां पूर्वामुष्टिं वापयेदमुंम् च मन्त्रम् ब्रूयात् (अ.प्र. 36)॥ मन्त्र इस प्रकार है-

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नम: सदा।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च॥

इसी प्रकार दसवीं सदी के आसपास लिखित पराशरीय कृषिपद्धति अथवा 'कृषिपराशर' में भी वपन से पूर्व धान्य का पुण्याह करने व सूर्योदय की दिशा में मुख कर निम्न मन्त्र पढ़ने का निर्देश दिया गया है-

वसुन्धरे महाभागे बहुशस्यफलप्रदे।

देवराज्ञि नमोऽस्तु ते शुभगे सस्यकारिणी॥

रोहन्तु सर्वसस्यानि काले देव: प्रवर्षतु।

सुस्था भवन्तु कृषका धनधान्यसमृद्धिभि:॥ (कृषिपराशर 179-80)

कृषिपराशर ग्रंथ में धान्य का कोठे में संग्रह करते समय मन्त्र लिखकर उसमें रखने और फिर लक्ष्मी को पूजने का निर्देश दिया गया है- लिखित्वा तु स्वयं मन्त्रं धान्यगारेषु निक्षिपेत्। समृद्धिं च परां कुर्यात् ततो लक्ष्मी प्रपूजयेत् (वही 243)। मन्त्र निम्नलिखित है-

ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धनं स्वाहा।

ॐ नवधुर्यसहे देवि! सर्वकामविवर्द्धिनी कामरूपिणि! देहि मे धनं स्वाहा।

पराशर ने धान्य की वृद्धि के लिए जो अलक्त से लिखकर अनाज में बांधने के लिए जो मन्त्र दिया (195) है, वह तो सुरपाल के वृक्ष व्याधि विनाशक मन्त्र के ही कुल का जान पड़ता है, तुलनीय है-

ॐ सिद्धिः श्रीमुरुपादेभ्यो नमः। स्वस्ति हिमगिरिशिखरशङ्खकुन्देन्दुधवल शिलातटात् नन्दनवनसमायतनात् परमेश्वरपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीमद्रामपादा विजयिनः समुद्रतटे अनेकशतसहस्त्रवानरगणमध्ये खरनखरचरणोर्द्धलाङ्गूलं पवनसुतं वातवेगं परचक्रप्रमथनं श्रीमद्धनुमन्तमाज्ञापयान्त कुशलमन्यस्य अमुकगोत्रस्यश्रीअमुकस्य क्षेत्रखण्डमध्ये वाता भाम्भा भान्ती....(?) शाङ्खीगान्धीपाण्डरमुण्डीधूलीशृङ्गारीकुमारी मडकादयः। अजाचटकशुकाशूकरमृगमहिषवराहपतङ्गादयश्च सर्वे सस्योपघातिनो यदि त्वदीय वचनेन तत् क्षेत्रं न त्यजन्ति तदा तान् वज्रलाङ्गूलेन ताडयिष्यसीति ओं घां घीं घूं घः।

सुरपाल के समय यह मन्त्र इस रूप में था- (ॐ) स्वस्ति किष्किन्धातः। परमभट्टा(द्य?)रक परमेश्वर परमवैष्णव प्रगट पराक्रम विजितार्क मण्डलोपजीवीतः। श्रीमहनूमद्देवचरणविजयिनः। अमुक क्षेत्रे मूषक गन्धिका श(स)लभादीन समाज्ञायंति। यथा- एतद्राज्ञादेन्द्रायद्दक दर्शना देवक्षेत्रमिदं विहायान्यत्र यास्यथ। नोचेत् हनरदेहरपचरवक्ष लाङ्गुलेन हुं फट् स्वाहाः (वृक्षायुर्वेद १६१)।

शार्ङ्गधर के काल में इसका यह रूप हो गया- ॐ स्वस्ति किष्किन्धास्थित प्रकटपराक्रमान्तर्हितार्कमण्डलोपजीवितस्य श्रीहनूमानाज्ञापयति मूषकपतङ्गपिपीलिका शलभकरभान्बककीटगन्धिकानिहैर्न स्थातव्यम्। आज्ञामतिक्रममाणस्य शरीरनिग्रहः समार्वयति। तस्य वानरस्य क्रममाणस्य सागरम्। कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव नर्दति॥ हुं फट् नमः॥ (उपवनविनोद, शार्ङ्गधरपद्धति, पृष्ठ 320)

'विश्ववल्लभ' (1578 ई.) की रचना करते समय चक्रपाणि मिश्र को शार्ङ्गधरपद्धति में यही मन्त्र इस रूप में मिला था - ॐ स्वस्ति किष्किन्धास्थित प्रकट पशक्रमांतर्हिता कंडुलोप जीवितस्य हनूमाना ज्ञापयति मूषक पतङ्ग पिपीलिका शलभकरभान्वककीट गंधिकाविम्विभिरहैवन स्यात् व्यंक्रममाणस्यशरीरः निग्रह समावर्त्तपतितस्य वानरसिंहस्य वानरःसिंहस्य क्रममाणस्य सागर कक्षान्तर गतो वायु जीमूतदवनदंति हुं फट् (विश्ववल्लभ उल्लास 6, 4)॥

इस प्रकार हनुमान से वनस्पति, द्रुमादि की रक्षा के लिए कामना से प्रेरित यह मन्त्र

कई सदियों तक वनस्पतिवेत्ताओं के लिए बड़ा उपादेय रहा। मन्त्रों की शक्ति के सहारे ही अन्य कई साधन सिद्ध किए गए। 'काश्यपीयकृषिसूक्ति' में लाङ्गल या हल पूजा से पूर्व भूमिदेवी की प्रार्थना मिलती है। इसके मूल में पुरुषार्थ का उत्तम फल मिलने का भाव अन्तर्निहित है-

भूमिदेवि नमस्तेऽस्तु महि सर्वं सहेऽधुना।
कृष्यारंभ करिष्याापि प्रसन्ना भव सुव्रते॥
कर्षणं ताडनं यच्च त्वयि यद्यत्कृतं मया।
देवि क्षमस्व तत्सर्वं कुरु मह्यं महाफलम्॥
त्वमेव माता सर्वेषां प्राणिनामिह कीर्त्यते।
अत: प्रसन्ना भूदेवि फलं देह्यमितं क्षितौ॥ (274-76)

सोमदेव द्वारा 11वीं सदी में लिखित 'कथासरित्सागर' में पौधों पर टोना प्रयोग करने वाली एक महिला की कथा आती है। एक टोनाहिन मन्त्रोच्चारण के साथ एक मुट्ठी जौ की बुवाई करती है। बात ही बात में वे पौधे बन जाते हैं एवं उनके बालियाँ लग जाती हैं। टोनाहिन पकी हुई बालियों को तोड़कर अनाज प्राप्त करती है और पीसकर सत्तू बनाती है। सत्तू को काँसे के बर्तन में रख उस पर पानी छिड़कर घर को व्यवस्थित कर वह स्नान के लिए चली जाती है। चोरी-छिपे उसका पति यह सब ताड़ लेता है। दबे पाँवों से वह उस बर्तन के सत्तू को सत्तू की हण्डियाँ में और हण्डियाँ में से उतना ही सत्तू निकालकर काँसे के पात्र में रख लौट जाता है। इस उलट-पलट का महिला को पता नहीं था, वह हण्डियाँ सत्तू को स्वयं खाती है और काँसे के पात्र के सत्तू को पति के लिए रखती है। मन्त्र-सिद्ध सत्तू खाने से वह बकरी बन गई, क्रोधित पति ने उसे तुरन्त ही खटीक के हाथों बेच दिया (कथा. 12, 4, 265-73)।

इस प्रकार तत्काल वनस्पति को उगाने के लिए मन्त्र प्रयोग मिलते हैं। प्राचीन काल में तन्त्र, मन्त्र, जादू-टोना का व्यापक प्रभाव एक विशेषता के रूप में सामने आता है। समाज के अधिकांश लोगों की आस्था इस चमत्कारी विद्या के प्रति थी, ऐसा कथासरित्सागर (3, 6, 87-88; 7, 3, 170; 8, 3,115-116) सिंहासनद्वात्रिंशिका (पृष्ठ 80) तथा बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (20, 93-102)से बोध होता है।

वृक्षों के फलने-फूलने के लिए मन्त्र, मणि एवं ओषधीय प्रयोग का हर्ष ने भी उल्लेख किया है और इन उपायों की तुलना सफल दोहद क्रिया से की है जिससे भी उक्त प्रयोगों का प्रयोजन सिद्ध हो जाता था- वयस्य क: सन्देह:। अचिन्त्यो हि मन्त्रमौषधीनां प्रभाव: (रत्नावलीनाटिका अङ्क 2)। यहीं पर मन्त्र का प्रभाव यह भी बताया गया है-

मन्त्रबलाद्वसन्ति वसुधामूलेभुजङ्गाः हता। ...महौषधेर्गुणनिधेर्गन्धं पुनर्जीविताः (2, 5)।

वृक्षों को लेकर वास्तुविषयक ग्रंथों में भी कई मतों का विकास हुआ। भवन के लिए उपयोगी काष्ठ के चयन, काष्ठ के लिए वनगमन तथा काटे जाने वाले वृक्षों के लक्षण की तात्कालिक परीक्षा व लक्षणों पर अनेक श्लोक लिखे गए हैं। वृक्षों को काटने से पूर्व वहां रहने वाले जीवों से क्षमा कामना व उनके अन्यत्र वास का आग्रह इस सम्बन्ध में लिखे गए मंत्रों में चला आ रहा है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3, 89, 15) में कदाचित सर्वप्रथम इस प्रकार की मान्यता मिलती है- वसन्ति यत्र भूतानि तेभ्यस्स्वति नमोऽस्तु वः। उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः॥

प्रसिद्ध पूर्वमध्यकालीन वास्तुग्रंथ 'मयमतम्' में वृक्षोच्छन के लिए मन्त्र इस प्रकार मिलता है- अपक्रामन्तु भूतानि देवताश्च सगुह्यकाः [सपरश्चयः]। युष्मभ्यं तु बलं भूयः सोमो दिशतु पादपाः! ॥ शिवमस्तु महीपुत्रा देवताश्च सगुह्यका कर्मैतत् [किमेतत्] साधयिष्यामि क्रियतां वासपर्ययः॥ एवमुक्ता [एवमुक्तान्] नमस्कृत्य पादपेभ्यो नमः शुचिः (15, 89-90)।

सूत्रधार मण्डन (1433-67 ई.) ने इस मंत्र को इस रूप में दिया है- ॐ अपक्रामन्तु भूतानि देवताश्च (राक्षस)? गुह्यका युष्मभ्यं तु बलिं भूयात् सोमे दिशतु पादपाः (शमे दिशतु दयाः ?)। शिवमस्तु महीपुत्रा! देवताश्च सगुह्यकाः (स्व च गुह्यका ?)। कर्मेतत्सा(ध)यिष्यामि क्रियतां वासपर्ययः(वोपी पर्य्ययः ?) (वास्तुमण्डनम् 4, 101-2)।

'समराङ्गणसूत्रधार' में यह मन्त्र इस प्रकार दिया गया है- अपक्रामन्तु भूतानि यानि वृक्षाश्रितानि हि। कल्पनं वर्तयिष्यामि क्रियतां वासपर्ययः॥ धन्यः शिवः पुष्टिकरः प्रजावृद्धिकरो भव। स्वस्ति चन्द्रमानिलयमाः सूर्यरुद्रानलास्तथा॥ दिशो नद्यस्तथा शैलाः पान्तु त्वामृषिभिः सह (16, 27-29)।

'बृहत्संहिता' में मन्त्र का पाठ है- अर्चार्थमुमकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः। नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत् सम्प्रगृह्यताम्॥ यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तं। अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः (59, 10-11)। इसी प्रकार द्राविड़ वास्तुग्रंथ 'मानसारं' में यह मन्त्र इस रूप में है- ओं राक्षसैः सह भूतैश्च कर्तारं रक्षते नमः (15, 152)।

'विश्वकर्माप्रकाश' में यह मन्त्र इस प्रकार दिया गया है- यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वा। उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः॥ प्रार्थयित्वा वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नमोत्तमे। गृहार्थ वाऽन्यकार्यार्थं पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ (9, 37-38)

अग्निपुराण में दमनक की पूजार्थ मन्त्रों को दिया गया है- हरप्रसादसंभूत त्वमत्र संनिधी भव॥ शिवकायं समुद्दिश्य नेतोव्योसि शिवाज्ञया (80, 3-4), आमंत्रितोऽसि देवेश प्रात:काले मया प्रभो। कर्त्तव्यस्तपसोलाभ: पूर्णं सर्वं तवाज्ञया (वही 9) तथा ॐ हौं महेश्वराय मखं पूरय शूलपाणये नमः (वही 13)। बिल्वपत्र के लिए तो पूरा अष्टक लिखा गया है जिसे शिवस्तुति के रूप में जाना जाता है।

तेरहवीं सदी में हुए शार्ङ्गधर ने क्षेत्र रक्षा के लिए मन्त्रों का विधान किया है तथा कहा कि बालुका में सफेद सरसो मिलाकर निम्न मंत्र को बोलते हुए क्षेत्र में बिखेर देनी चाहिए। इस विद्या के प्रभाव से शलभ, सारस, कीर, वराह, मृग, मूषक, खरगोश आदि का निवारण होता है- कुंभे विद्यां समभ्यर्च्य मन्त्रिता बलविद्यया। वालुका: श्वेतसिद्धार्थन्क्षेत्रमध्ये विनिक्षिपेत्॥ शलभा: सारसा: कीरा वराहमृगमूषका:। शशकाश्च ततो यान्ति बलविद्याप्रभावत:॥ मन्त्र यह दिया गया है- ॐ नमः सुरेभ्यो बल-बल ज-ज चिरि-चिरि मिलि-मिली स्वाहा।

मध्यकाल तक साबरमन्त्रों के साथ ऐन्द्रजालिक प्रभावों के प्रति लोकविश्वास भी देखा जा सकता है। तुलसीदास ने 'अनमिल आखर अरथ न जापू', 'साबरमन्त्र जाल जेहि सिरजा', 'इन्द्रजालि को कहिय न वीरा' जैसी चौपाइयों से तत्कालीन चमत्कारी विद्या के प्रति लोकास्थाओं को प्रदर्शित किया, वहीं उड़ीसा के गजपति प्रतापरुद्रदेव (1497-1539 ई.) ने तो 'कौतुकचिंतामणि' में ऐसे कई प्रयोगों को सूत्र रूप में लिखा जैसा कि उदयपुर में मिली वृक्षायुर्ज्ञानम् की पाण्डुलिपि में संकेत दिया गया है। ज्योतिष में वृक्षचक्र पर विचार किया जाने लगा। शक्ति आदि यामल ग्रंथों के आधार पर गुजरात के नरपति कवि ने 'नरपतिजयचर्यास्वरोदय' में इस प्रकार के चक्र पर विचार किया है। ज्योतिष, मौसम, जलवायु, परिवेष आदि नाना संकेतों के आधार पर घाघ-भड्डरी की उक्तियाँ बेजोड़ मानी जाती है। इनमें कई उक्तियां श्लोकों का देशज रूप ही कही जा सकती है।

प्रस्तुत ग्रंथ के साथ मेवाड़ भाषा में उपलब्ध एक अज्ञात ग्रंथ 'वृक्षायुर्ज्ञानम्' में ऐसे ही एक शाबर मंत्र को दिया गया है और टोना समझाया गया है कि जिस वृक्ष पर फल नहीं लगते हों अथवा झड़ जाते हों तो उस पर निम्न मंत्र से अभिमंत्रित नीला धागा बांध दें ओर भैंसागुग्गुल तथा विडङ्ग की धूनी दें- 'ॐ नमो आदेस गुरु कूं, छूटा मरवा छूटी जाए, छूटी सब ही बंधी बणराया, छूटा नदी बहता नीर, इसमे रोंख का फल झड गले तो लाजे हणवंत वीर। मेरी भक्ति गुरु की सकति फुरो मंत्रो ईश्वरो वाचा।' इसी प्रकार रजस्वला स्त्री के कपड़े की धूनी भी इसके लिए प्रयोजनीय होती है। इसी प्रकार प्रसूता वागधी नामक जीव के बच्चों की झिल्ली की वृक्षों को धूप देना भी एक टोटका बताया गया है। आदिवासी जीवन में वृक्षों पर मूठ मारकर सूखा देने, वृक्षों को अफलित करने जैसे

टोटके भी प्रचलित हैं।

वृक्ष-आकांक्षाओं से जुड़े लोकविश्वास-

अन्यान्य विश्वासों में कामिनी द्वारा आम्रमञ्जरियों को छूने, अशोकद्रुम को बाहुपाश में लेने, मुख आसव से प्रफुल्लित होने जैसे लोक विश्वास भी वृक्षायुर्वेद के अंग बने हैं। वृक्षांकांक्षाओं में अशोक दोहद बहुत लोकप्रिय था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध कलावेत्ता आनन्द के. कुमारस्वामी का कथन है कि भारतीय कला में अशोकदोहद वनिता व वृक्ष प्रकार का सबसे प्रिय कला-अभिप्राय था, सरस सम्बन्ध की यह प्रतीकात्मकता रत्यात्मक अभिप्रायाधारित कही जा सकती है (यक्षाज़ भाग 1, पृष्ठ 32-33)।

कालिदास के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने कहा है कि दोहद से आशय ऐसा संस्कारमय द्रव्य है जो वृक्षों में प्रसव-कारण परिलक्षित होता है- दोहदं वृक्षादीनाम् प्रसवकारणं संस्कारद्रव्यम् (एम. आर. काले सम्पादित मेघदूत, उत्तरमेघ पृष्ठ 132)। इसी बात को नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष (1113 ई.)ने अभिव्यक्त किया है कि दोहद ऐसे द्रव या द्रव्य का फूँक स्वीकारना चाहिए जो वृक्ष, पौधों एवं लतादि में पुष्प प्रसवित करने का सामर्थ्य प्रदान करता है- महीरुहाः दोहदसेकशक्तिराकालिकं कोरकमुद्गिरन्ति (3, 21)।

भारतीय मूर्तिकला में इस प्रकार के कई अङ्कन विद्यमान हैं जिनकी शृङ्खला मौर्यकाल से ही चली आ रही है। मथुरा एवं लखनऊ के राजकीय संग्रहालयों में इस अभिप्राय को अभिव्यक्त करने वाली प्राचीन प्रतिमाएं सुरक्षित है। संघोल-पञ्जाब से भी वृक्ष दोहद के अङ्कन मिले हैं जिनमें दाहिने पाँव से तरुमूल पर प्रहार करती कामिनी को दर्शाया गया हैं। दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में कुषाणकालीन शिल्पदीर्घा में एक वेदिका स्तम्भ है जिसमें रमणी दाहिने पाँव से वृक्षमूल को स्पर्श कर रही है। इसका विन्यास मथुरा कला शैली का प्रतिनिधित्व करता है।

कालिदास, हर्ष आदि ने इन लोकाभिप्रायों का लोकजीवन की विशेषताओं के साथ और अपने कथन को प्रभावी बनाने के लिए किया है। 'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह' में दोहद या गर्भवती स्त्री के छूने से असमय ही वृक्षों को पुष्पित व पल्लवित होते देखा गया है (28, 56-57; 12, 69-73)।

कालिदास द्वारा बकुल या मौलसिरी के वृक्ष के लिए कामिनी के मुख से निकली मदिरा के छींटे को दोहद के समान बताया गया है- गण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः (मेघदूत पर मल्लिनाथ की टीका, उत्तरमेघ श्लोक 18)। इसी प्रकार बदनमदिरा को भी दोहद तुल्य बताया गया है- काङ्क्षयन्तो वदनमदिराम् (मेघदूतम् 2, 18)। रघुवंश महाकाव्य के अजविलाप प्रसंग में कुरबक दोहद का स्मरण किया गया है- तव

निःश्वसितानुकारिभिबकुलैरर्धचितां समं मया। असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरि गात्री सुप्यते (8, 64)।

अशोक वृक्ष के कामिनीचरणघात से प्रफुल्लित होने का विश्वास राजशेखर कृत 'विद्धशालभञ्जिका' में मिलता है जहां कुरङ्गिका चेटी विदूषक की डंकमार हँसी के प्रहारों से ऊबकर कहती है कि तुम इस समय उसी चरण सत्कार के पात्र हो जो अशोक या कङ्केलितरु दोहद के समय पाता है- यत् कङ्केलितरुदोहदे लभते (अङ्क 4)।

ऐसे ही आम्रदोहद, अशोकदोहद, केसरदोहद और प्रियालदोहद का कालिदास ने 'पार्वतीपरिणय' में उल्लेख किया है। कवि ने प्रसंगवश कहा है कि तुम्हारे कमलवत् पाणि के प्रिय स्पर्श बिना ही अकुसुमित आम्र कैसे मुकुलित हो उठा, तुम्हारे चरणों के घात के अभाव में अशोक कैसे पुष्पित हुआ, तुम्हारे संगीत के बिना प्रियालवृक्ष या अङ्गूर की लता किस प्रकार खिलखिला उठी और तुम्हारी बदन मदिरा के स्पर्श को छोड़ बकुल या केसर का वृक्ष कैसे पुष्पित हो उठा- चूताः कोककिता विनापि सदृशां हस्ताम्बुजामर्शनात् तत्पादाम्बुजाताडनैरपि बिना कङ्केलयः पुष्पिताः। तत्सङ्गीतकमन्तरेण हसिता रम्याः प्रियालद्रुमामुक्त्वा तद्वसनासवं मुकुलिता गन्धोत्तरा केसराः (3, 6)।

वृक्षों के साथ वनिता सम्पर्कसुख का यह विश्वासी वर्णन कवियों को अत्यन्त रुचिकर रहा तभी तो कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् (3, 5 एवं 18) व कुमारसम्भव (3, 6) में, हर्ष ने नैषधीय चरितम् (3, 21) रत्नावली नाटिका (1, 18) और बाणभट्ट ने कादम्बरी (पृष्ठ 222) में इसे आलङ्कारिक रूप से परिभाषित करने का यत्न किया है।

मल्लिनाथ टीका में तो इन विश्वासों को एक ही साथ दे दिया गया है कि कामिनी के स्पर्श से प्रियङ्गु विकसित होता है तथा बकुल वृक्ष मुखासवपान, अशोक पादाघात, तिलक दृष्टिपात, कुरबक (सदाबहार) आलिङ्गन, मन्दार मधुरवचन, चम्पक वृक्ष मृदु मुस्कान व हास्य तथा कनैल का वृक्ष नीचे नृत्य करने से पुष्पित होता है- स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्पादाघातादशोकास्तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्यम्। मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः (मेघदूत 2, 18)।

पुरुषाकांक्षी लताएं-

इसी प्रकार लताओं के असमय ही प्रफुल्लित होने के लिए पुरुष सहकार की परिकल्पना भी की गई है। पूर्वोक्त दोहद में जहां वृक्ष पुरुषवत् और कामिनी नायिकावत् है, वहीं प्रस्तुत दोहद में विपरीत रूप या लताओं को नायिकावत् बताया गया है- तरु-गुल्म-लतादीनामकाले कुशलैः कृतम्। पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया (पी.एल.

अभिमन्यु प्रकाशित नैषधीयचरितम्, शब्दार्णव पृष्ठ 138)। यह अभिप्राय हर्ष की रत्नावली में इस प्रकार है- एषामप्यपरा नवमालिकतया यस्या अकालकुसुमोद्गमश्रद्धालुना भर्त्ताऽनुदिनमायाश्यात्मा (अङ्क 1 एवं तुलनीय अङ्क 2)।

वृक्षों का लताओं से विवाह-

वृक्षों का विवाह करवाने की परंपरा भारतीय लोकसमाज में आज तक विद्यमान है, मान्यता है कि इससे वृक्षों का विकास शीघ्र होता है। 'वृक्षायुर्वेद' में भी यह विश्वास व्यक्त हुआ है। यह सहकार-दोहद के रूप में स्वीकार्य है। कालिदास के काल में भी इस प्रकार की मान्यताओं की फलश्रुति देखने को मिलती है। उसने रघुवंश में वियोगी अज की मिलनाकांक्षा के प्रसंग में आम्र वृक्ष व प्रियङ्गुलता के विवाह का उल्लेख किया है- मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनी च नन्विमौ। अविधाय सत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम् (8, 61)।

यही अभिप्राय अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कण्व मुखोक्ति के रूप में दिया है कि मैंने तुम्हारे लिए जैसे पति का विचार किया था, हे शकुंतले, तुमने वैसा ही पति पा लिया, जैसे प्रियङ्गुलता को आम्र का सहारा मिल गया, मैं अब चिंतामुक्त हूँ- संकल्पितं प्रथमेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्। चूतेन संश्रितवती नवमालिकेयमस्याहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः (4, 13)।

वास्तुशास्त्रीय मुख्य मान्यताएं-

भारतीय वास्तुशास्त्र का विकास शुल्बसूत्रों से माना जाता है। प्रारम्भ में यज्ञार्थ कुण्डादि निर्माण के लिए निर्देश तय हुए। सूत्रों में शङ्कु, स्रुवादि के लिए प्रयोजनीय वृक्षों का नामोल्लेख मिलता है। वास्तुशास्त्र के अठारह आचार्यों की सूची सर्वप्रथम मत्स्यपुराण में मिलती है जिसका मय, वराह, मानादि ने विकास किया। मनु, अगस्त्य, मय, प्रह्लाद, अत्रि, वशिष्ठ, नारद, विश्वकर्मा, अपराजितादि के शास्त्रों में गृहारामादि के लिए प्रयोज्याप्रयोज्य वृक्षों की सूचियाँ मिलती है। अधिकांश सूचियाँ मत्स्य से साम्यता लिए है, तथापि देशानुसार वृक्षों की उपलब्धि, अनुपलब्धि को भी दृष्टिगत रखा गया।

विष्णुधर्मोत्तर, मयमतम्, मानसार, विश्वकर्माप्रकाश, समराङ्गणसूत्रधार और अपराजितपृच्छा, मानसोल्लासादि में काष्ठादि के लिए विभिन्न निर्देशों के साथ वनसम्प्रवेशाध्याय मिलते हैं। इन निर्देशों को परवर्ती निबन्ध ग्रंथों में भी प्रभूतरूप से उद्धृत किया गया है। इनमें से अधिकांश आकर-ग्रंथ पाँचवीं से तेरहवीं शताब्दी तक लिखे गए हैं। इनमें वृक्षों के नामादि के साथ-साथ गृहावास, यान, शिबिका, पर्यङ्क, सिंहासन, पीठिका, चल और स्थिर लिङ्ग-प्रतिमादि के लिए उपयोगी काष्ठ, वृक्ष दिशा, पतनादि दिशा, वृक्षावासी

जीवादि योनियाँ, वृक्षवेध, वृक्षव्याधियों, वार, तिथि पञ्चकादि नक्षत्र विचार आदि विचार मिलते हैं। वृक्ष विद्या पर वास्तुशास्त्रीय विमर्श अपने ढंग का अनूठा है जिस पर जिनदत्तसूरि, धनपाल सूरि आदि जैनाचार्यों ने भी विचार किया है।

इनमें उत्तर मध्यकालीन दैवज्ञ वासुदेव प्रणीत 'वास्तुप्रदीप' में स्पष्ट किया गया है कि बबूल, खदिर आदि काँटेवाले पेड़ों के आवास के पास होने से सदा शत्रुभय बना रहता है व दूधवाले वृक्षों से धननाश होता है। फलवाले वृक्षों से प्रजा का क्षय होता है। इसलिए ऐसे वृक्षों की लकड़ी भी घर में वर्जित होती है। अशोक, नागकेसर, शमी, पलाश, अरिष्ठ, मौलश्री, और शाल के वृक्ष घर के पास हो तो शुभदायक होते हैं- आसन्नगाः कण्टकिनोऽथ वृक्षाः स्युः शत्रुदास्त्वर्थरहाः सदुग्धाः। प्रजाक्षया नेष्टफलाः समस्तानास्तस्माद्विवर्ज्याः सकलाश्च वृक्षाः ॥ एषां च काष्ठान्यपि वर्जितानां वर्ज्यानि सद्भिर्गृहमध्यगानि। अशोकपुन्नागशमीपलाशाः शस्तास्त्वरिष्टो बकुलाश्च शालाः (22-23)।

इसी में आवास के अग्निकोण में दुष्टफल, पीड़ा व मृत्युदायक वृक्षों की सूची इस प्रकार दी गई है- क्षीरवृक्षा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा। सकण्टका शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञितौ ॥ अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः। इसके अतिरिक्त निम्न वृक्ष घर की किसी भी दिशा में हों तो शुभकारक होते हैं- पुन्नागफलिनी निम्बदाडिमाशोक जातिकाः ॥ नागकेसरसंपुष्पजपाकुसुमकेशराः। जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवाऽपराजिता ॥ मधुबिल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरं ककुपादिकाः। यत्र-तत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः (विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी संपादित वास्तुरत्नाकर, पृष्ठ 68 पर उद्धृत)।

इस प्रकार के निर्देश सूत्रधारमण्डन कृत राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् (अध्याय 1), शिल्पशास्त्र (4, 4-7), मनुष्यालयचन्द्रिका (1, 22), शिल्परत्नम् (3, 21-22) वास्तुविद्या (2, 33-36), गरुडपुराणम् (46, 36) एवं मत्स्यपुराण (225, 20-24) में भी उपलब्ध हैं। वास्तुमतानुसार वृक्ष छायावेध के लिए कहा गया है कि पहले और चतुर्थ प्रहर की छाया को छोड़कर दूसरे व तीसरे प्रहर में वृक्षादिकों की छाया आवास पर पड़े तो सर्वदा दुःख देने वाली होती है- प्रथमान्त्ययामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहरसम्भवा। छाया वृक्षगृहादीनां सदा दुःखदायिनी।

वृक्षायुर्वेद का ग्रंथ रूप में विकास-

उपर्युक्त विमर्श के बाद यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में कृषि ज्ञान के विकास के साथ अथवा उससे भी पूर्व वृक्ष विद्या पर विमर्श होता रहा। अथर्ववेद काल में यदि वृक्षों में चैतन्य की अवधारणा ने जन्म लिया तो पुराणकाल और महाकाव्यकाल में उसे पर्याप्त महत्व मिला। यदि चाणक्य कृत 'अर्थशास्त्र' के पाठ को प्रमाणित माना जाए

तो उस समय तक वृक्षायुर्वेद की अवधारणा विकसित होकर राजकीय कर्त्तव्य के रूप में सामने आ गई थी। पुराणों में विष्णुधर्मोत्तरपुराण, जिसका रचनाकाल मेरी राय में पाँचवीं-छठी सदी और डॉ. काणे के अनुसार 600 से 900 ईस्वी के मध्य है, में वृक्षायुर्वेद पर स्वतंत्र अध्याय लिखा गया। हालांकि इसे संक्षिप्त रूप में वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में भी दिया है जिसके विवृत्तिकार उत्पल भट्ट (780-870 ई.) ने अपनी टीका में काश्यप कृत एक ग्रंथ से कुछ श्लोक दिए हैं जो पूर्वकालीन वृक्षायुर्वेद विषयक या तन्नामक किसी कृति के होने का परिचय देते हैं, काफी खोज के बावजूद उत्पल संकेतित उक्त कृति मेरे देखने में नहीं आई।

बहुत संभव है कि काश्यपसंहिता के अध्याय के रूप में उक्त श्लोक रहे हों, आज इस संहिता की नेपाली वाचना मिलती है, वह शुद्ध आयुर्वेद पर ही आधारित है। इस नाम का एक ग्रंथ पञ्चरात्र मत का भी है जिसमें सर्पदंश के उपचार का वर्णन है। यह ग्रंथ आठवीं-नवीं शताब्दी में गरुडपुराणकार की दृष्टि से भी वंचित रहा, अन्यथा वह गवायुर्वेद, गजायुर्वेद, हयायुर्वेद की भाँति इसका अवश्य उपयोग कर लेता। किंतु काश्यप के अद्यावधि अज्ञात उक्त ग्रंथ में वृक्षों में वात, पित्त व श्लेष्म या कफ का स्पष्ट निर्धारण नहीं हुआ था क्योंकि उत्पल द्वारा उद्धृत श्लोकों में 'शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्या मिश्रितैरपि' का ही संकेत है जिसे वराह ने भी स्वीकारा है जबकि सुरपाल ने स्पष्ट रूप से वातादि व्याधियों का निर्धारण करते हुए प्रत्येक व्याधिजन्य लक्षणों पर प्रकाश डाला है। हालांकि पत्तियों का पाण्डुवर्णी होने का संकेत सभी रचनाओं में है।

उत्तर गुप्तकाल में संपादित कही जाने वाली 'शुक्रनीति' यह स्पष्ट करती है कि तब तक आयुर्वेदान्तर्गत स्वीकार्य दस कलाओं में चौथी कला के रूप में इसे स्वीकार लिया गया था-वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला (4, 3, 72)। इसके चौथे अध्याय के लोकधर्मनिरूपण प्रकरण में 19 श्लोकों में जो विषय संगृहीत है, उसमें वृक्षायुर्वेद का सार आ गया है। वृक्षारोपण के लिए 20, 15, 10 तथा 5 हाथ का क्रमशः उत्तम, मध्यम, साधारण एवं अधम अंतराल, ग्राम्य और आरण्य वृक्षों का विभाजन जैसे निर्देश नवीन हैं अन्यथा वासस्थान पर उद्यान निर्माण, पोषण विधि, फलनाश चिकित्सा, फल-पुष्पवृद्धि के उपाय, सेचन उपाय विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण की तरह ही है। परिशिष्ट में इसे स्थान दिया गया है। इस प्रकार चाणक्य के बाद, पहली बार एक विशिष्ट रूप में शुक्रनीति ने इस विषय को अपने अङ्क में स्थान देकर जन ही नहीं, राजकीय महत्व का बनाया।

12वीं सदी में चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ के पुत्र भूलोकमल्ल सोमेश्वर तृतीय ने मानसोल्लास या अभिलषितार्थचिंतामणि में वृक्षायुर्वेद के कई प्रसङ्गों को लगभग सवा सौ श्लोकों में निबद्धित किया है। सोमेश्वर 1127 ई. में सिंहासनारूढ़ हुए और 1129 ई.

में उन्होंने उक्त ग्रंथ की रचना की। पूना के भण्डारकर ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट में विद्यमान इसकी दो पाण्डुलिपियों में 'भूधर क्रीडा' वर्णन में राजमहल के एक ओर चित्र-विचित्र वृक्षों से पूर्ण वन बनाने से लेकर बीजों के रोपण, बीजोपचार कृत्य, रोपणीय अंतराल, गर्तविधि, वृक्ष शोभन विधि, आरोग्य, यश व विजयदायी द्रुम, निषिद्धवृक्ष, सेचनविधि, अजीर्णतानष्टोपाय, चूर्णादि प्रयोग से कृमिदोष निवारण, पोषणविधि, विकास उपाय, आधूपन-आलेपनादि उपचार विधियाँ लिखी गई है। सुरपाल व सोमेश्वर के वर्णन में वृक्षारोपण अन्तराल मान को छोड़ अन्यत्र विषयों में अद्भुत साम्यता है, सोमेश्वर को इस अथवा इसके किसी उपस्कारक ग्रंथ की अवश्य जानकारी रही होगी।

वात्स्यायन कृत कामसूत्र पर 13वीं सदी में यशोधर कृत जयमङ्गला टीका (1, 3, 15) में विभिन्न कलाओं में 41वें क्रम पर 'वृक्षायुर्वेदयोगाः' नाम से इस विद्या का जिक्र है जिसका अर्थ बागवानी, वृक्षों की चिकित्सा और उन्हें इच्छानुसार बड़ा-छोटा बना लेने की विद्या किया जाता है। भागवत पर श्रीधरी टीका (10, 45, 36) में भी इसका उल्लेख है।

इसी प्रकार प्रबंधकोष में जिन 72 कलाओं का उल्लेख है उसमें 50वें क्रम पर वृक्ष चिकित्सा का उल्लेख है। अज्ञातकर्तृककृत 'वस्तुविज्ञानरत्नकोश' में 52वें क्रम पर वृक्षविद्या का उल्लेख है जिसे श्रीपतिकृत 'ज्योतिषरत्नमाला' के टीकाकार महादेव (1264 ई.) ने महादेवी टीका में तृतीय वारप्रकरण में उद्धृत किया है। 14वीं सदी तक इसे आयुर्वेद की एक शाखा के रूप में मान लिया गया और इसके लिए कई ग्रंथ भी लिखे जा चुके थे। शार्ङ्गधर ने इसकी स्वीकारोक्ति उपवनविनोद के अंत में की है- एते नानावृक्षायुर्वेदशास्त्रेभ्यः। इस प्रकार तब तक वृक्षायुर्वेद पर अन्य ग्रंथ भी उपलब्ध थे।

सुरपाल : परिचय और प्रतिष्ठा

जैसा कि पहले विमर्श किया गया है, वृक्षविद्या ज्ञान की एक शाखा के रूप में समाज में स्वीकार्य थी और मध्यकाल तक निश्चय ही इसे कलाध्ययन क्षेत्र के एक विषय के रूप में स्वीकारा गया। सूरपाल कृत वृक्षायुर्वेद निश्चय ही पहली नहीं तो इस विषय की एक अति विशिष्ट कृति अवश्य है। इसमें कृषिविज्ञान के साथ ही वृक्षायुर्वेद विषयक स्वतन्त्र ज्ञानाश्रय को महत्व दिया गया है।

सुरपाल के सम्बन्ध विशेष कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। उसका स्वकीय परिचय भी नाम व आश्रयदाता के उल्लेख तक सीमित है। अन्तर्साक्ष्यों के अभाव में उसके जीवन-काल के सम्बन्ध में भी स्पष्ट तौर पर कहना कठिन है।

बाह्य साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 13-14वीं सदी तक वृक्षायुर्वेद के किसी कर्ता के रूप में सुरपाल का नाम ज्ञात नहीं था, अन्यथा शार्ङ्गधर उसका नामोल्लेख अवश्य करता। शार्ङ्गधर ने बहुत उदारता के साथ अपनी पद्धति में जिन कृतियों, कृतिकारों, पूर्वसूरियों के मतादि को उद्धृत किया, उनका नामोल्लेख किया है। शार्ङ्गधर ने कई शास्त्रों के आधार पर 'उपवनविनोद' से सम्बन्धित श्लोक दिए और स्पष्ट किया कि वृक्षायुर्वेद के विविध शास्त्रों से वह मत दे रहा है।

यह संयोग है कि सुरपाल के 'वृक्षायुर्वेद' और 'उपवनविनोद' में अधिकांश श्लोक एक हैं। इस दृष्टि से दोनों ही ग्रंथों का उत्स कोई और ही ग्रंथ, जो अनेक भी हो सकते हैं, जान पड़ता है। फिर यह श्लोक भी दोनों में उसी क्रम पर दिया है जिसमें पूर्व मुनियों द्वारा प्रणीत ग्रंथों का अवलोकन कर प्रस्तुत ग्रंथ लिखने का संकेत दिया गया है-

शास्त्राणि तावदवलोक्य मया मुनीनामर्थः स एव गदितः परमार्थयुक्त्या।

एनं विलोक्य निखिलं च विचारयन्तः सन्तः स्वभाव सरला मुदमाप्नुवन्तु॥ (3)

इससे भी दोनों का अन्य ग्रंथ या ग्रंथों की ओर संकेत परिलक्षित होता है। शार्ङ्गधर को अन्य कई आयुर्वेदिक शास्त्रों की जानकारी थी। उसने गान्धर्वशास्त्र के वर्णन में में गायनार्थ नाना औषधियों का उल्लेख करते हुए 'एते रागार्णवाच्छन्दःशास्त्रेभ्य आयुर्वेदाच्च' के साथ ही अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, गवायुर्वेद, शिवभाषिताद्योगरसायन, योगरत्नावली, श्रीकण्ठशम्भू, गन्धदीपिका, शार्ङ्गधरसंहिता, पद्मश्रिय, गोविन्दराजदेव, श्रीधर, कोक, नानागारुडशास्त्रों सहित नाना रचनाकारों व संहिताओं का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से

यदि सुरपाल द्वारा वृक्षायुर्वेद का कथन किया गया होता तो वह अवश्य इसका नामोल्लेख करता।

यही नहीं, शार्ङ्गधर के पूर्व या बाद में भी कला, ज्योतिष या आयुर्वेद विषयक किसी रचनाकार ने सुरपाल का नाम दिया हो, ऐसे ज्ञात नहीं होता। ऐसे में सुरपाल उसका परवर्ती रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सुरपाल के प्रस्तुत ग्रंथ से ज्ञात होता है कि वह वृक्षायुर्वेद ग्रंथ का स्वतन्त्रकर्ता न होकर सुधी संग्राहक और इस विषय का अध्येता एवं अनुसंधाता था। ग्रंथ के अन्त में वह लिखता है कि वह किसी प्रतापी राजा भीमपाल का अन्तरङ्ग था—

इति धरणिरुहायुर्वेदमुद्यत्प्रतापप्रचरनरपति श्रीभीमपालान्तरङ्गः।

इतिहास में 'पाल' नामांत वाले जिन राजवंशों का उल्लेख है उनमें बंगाल का पालवंश, मध्य प्रदेश के महेंद्रपाल के उत्तराधिकारी, चंदेल वंश आदि मुख्य हैं। इसी प्रकार डॉ. राजबलि पाण्डे कृत 'प्राचीन भारत' में भीमपाल नाम के कई राजाओं का उल्लेख है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है-

1. भीमपाल नामक नरेश कश्मीर के हिंदु शाही में हुआ जो रानी दिद्दा का नाना था और जिसने भीमकेश्वर नामक विष्णुमन्दिर बनवाया। काबुलिस्तान में इस भीमपाल के सिक्के मिले हैं और देवाई-गदून में उसका अभिलेख मिला है जिस पर 'महाराजाधिराज परमेश्वर शाही श्रीभीमदेव' उत्कीर्ण है। (पृष्ठ 322)

2. पंजाब के शासक आनन्दपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल का पुत्र भीमपाल हुआ जो तुर्कों से युद्ध करते हुए 1026 में मारा गया। यह शासक नहीं बना। (पृष्ठ 323)

3. प्रतिहार वंश में भोजदेव हुआ।

4. गुजरात के चालुक्यवंश का दूसरा प्रतापी राजा भीम (1021-63 ई.) हुआ। इसके शासनकाल में महमूद गजनी ने सौराष्ट्र पर आक्रमण किया। यह गजनी के अन्हिलवाड़ पर चढ़ाई के दौरान भाग निकला। बाद में इसने अपनी शक्ति का पुनरूद्धार किया। इसका पुत्र कर्ण हुआ। इसने बहुत से मन्दिर और पोखरे बनवाए। (पृष्ठ 353) इसी वंश में कुमारपाल का उत्तराधिकारी भोला भीम (1178 ई.) हुआ। (पृष्ठ 354)

5. मेवाड़ के गुहिल वंश में महाराणा भीमसिंह (1788-1829 ई.) हुआ।

इनमें से किसी भी राजा के आश्रय में सुरपाल का उल्लेख नहीं आता है किंतु चालुक्यवंशी दोनों भीमपाल राजाओं के शासन काल में पर्याप्त निर्माणकार्य, उद्यान, पोखर आदि का निर्माण होना इतिहास में वर्णित है। भोला भीम ने तो मेवाड़ के वीरपुरा, आहाड़

आदि क्षेत्रों में अरहट सहित भूमिदान किया था। (गौरीशंकर हीराचंद ओझा- डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४९-५०) कहीं उक्त भीम नृपतियों से तो सुरपाल का आशय नहीं है? यहां यह भी संदेह होता है कि यदि सुरपाल इनका दरबारी होता तो वह शार्ङ्गधर के पूर्व होता। 17वीं सदी में सुबंधु लिखित 'वासवदत्ता' नामक संस्कृत ग्रंथ में सुरपाल का नाम मिलता है जहाँ विंध्यवन के साथ 'सुरपालवृत्तिमिवादारसितागणिकारिकम्' प्रयोग किया गया है किंतु इस प्रयोग का ध्वन्यार्थ इन्द्र से निकलता है, जैसा कि डॉ. नलिनी सांधले का मत है (पृष्ठ 38)। डॉ. श्रीमती सांधले सुरपाल का अस्तित्व दसवीं सदी में स्वीकारती है जबकि यह कहने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।

एक समस्या सुरपाल के क्षेत्र निर्धारण को लेकर भी है। वृक्षायुर्वेद के अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि उसने करकाजल या नारियल के पानी, नारियल द्रुम रोपण की विधि, पुग के पेड़ों को उगाने का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया है, कहीं वह समुद्रतटीय किसी प्रदेश का निवासी तो नहीं था? फिर चूंकि उसने खीरा ककड़ी या त्रपुस की खेती; जौ, गेहूं की उपज आदि का उल्लेख किया है जो नर्मदा के निकटवर्ती क्षेत्र और गुर्जरत्रा प्रदेश में अधिक होती है। वह वराहमिहिर के मत का जानकार व 'बृहत्संहिता' का अध्येता था और इसके कई विषयों का सम्बन्ध मालवा व राजस्थान से था, ऐसे में कहीं वह इस क्षेत्र का निवासी तो नहीं था?

इसके अतिरिक्त केतकी, ताड़, पुन्नाग, बकुल, नारियल के साथ ही नाना लताओं व जलप्राय देश का अधिक वर्णन होने से उसका क्षेत्र गुजरात स्वीकारने में अतिशयोक्ति नहीं होगी। द्वारिका की स्थापना-स्थल के वर्णन में ऐसा ही पारिस्थितिकीय विवरण हरिवंश में मिलता है- ते स्म नानालताचित्रं नारिकेलवनायुतम्। कीर्णं नागबलैः कान्तं केतकीखण्डमण्डितम्॥ तालपुन्नागबकुलद्राक्षावनघनं क्वचित्। अनूप सिंधुराजस्य प्रपेतुर्यदुपुङ्गवाः॥ (विष्णु. 56, 21-22)

इस प्रकार हालांकि एक राय बना पाना कठिन है और इस दिशा में विशेष अनुसंधान की भी आवश्यकता है तथापि इतना अवश्य है भूगोल, देशों की भूमि के गुणधर्म, वहाँ की उर्वरता-अनुर्वरता का वह अध्येता था। वह धार्मिक प्रवृति और विशेषकर पुराण व संहिता परंपरा के प्रति आस्थावान था। वृक्षारोपण से देवलोक, देव सन्निधि और देव प्रसन्नता की प्राप्ति उसके इस दृष्टिकोण को प्रकट करते हैं। अपने ग्रंथ के लिए उसने नाना पुराण सहित संहिता ग्रंथों, आयुर्वेदिक ग्रंथों, ज्योतिषग्रंथों की मदद ली थी। इससे उसकी अध्ययनशीलता और एक बिखरे-बिखरे विषय को एक ही वेष्टन में देखने की उत्कट अभिलाषा का भी बोध होता है। वह सर्वदा नवीन कुछ करना चाहता था। शुक्र निर्दिष्ट 'वृक्षादिप्रसवारोपपालनादिकृतिः कला' की तर्ज पर वह वैद्य होकर भी

नवाचार, नवीन प्रयोगों में विश्वासी था, जैसा कि स्वयं उसने अपना परिचय दिया है कि वह विद्यावर्रेण्य कौतुकयोग सिद्ध है—

सुरपालः कौतुकात्सिद्धयोगैर्जगदमलयशः श्रीवैद्यविद्यावरेण्यः। (325)

इससे यह भी ज्ञात होता है कि उसके इन प्रयोगों को समकालीन समाज ने महत्व दिया था और उसका यश बढ़ा था। उसके आधार ग्रंथों में बृहत्संहिता, पद्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण तो थे ही, मयादि कृत वास्तुशास्त्र, विश्वकर्मीयग्रंथ, कश्यपकृत ग्रंथ और ऐन्द्रजालिक ग्रंथ प्रभृति मुख्य थे। उसने तरु की महिमा के प्रसंग जहां पद्म, विष्णुधर्मोत्तर, वायु आदि पुराणों से लिए तो भूमिनिरूपण के लिए मयादि के ग्रंथों को आधार बनाया। वृक्षों के विचित्रीकरण के लिए बृहत्संहिता, समाससंहिता (अब लुप्त) के निर्देशों को देखा, तो स्वानुभूत प्रयोगों को भी वरीयता दी।

वृक्षायुर्वेद : कुछ विशिष्टताएं

सुरपाल ने परंपरानुसार भूमि के तीन भेद बताए हैं- जाङ्गल, आनूप और सामान्य। वर्ण तथा रस के आधार पर इसके छह भेद हो सकते हैं। इसके अनुसार वहाँ पनपने योग्य वृक्षों की सूची प्रस्तुत की है। एक प्रकार से इस सूची के आधार पर पेड़ों को देखकर किसी प्रदेश के भूगोल को भी समझा जा सकता है। शुक्रादि ने ग्राम्य, वन के आधार पर पेड़ों का विभाजन किया है जबकि सुरपाल ने भूमि के आधार पर पेड़ों का विभाजन किया जो अधिक वैज्ञानिक है। सुरपाल ने पादपविवक्षा के अंतर्गत पादपों की चार जातियों का वर्गीकरण परंपरानुसार ही किया है- वनस्पति-द्रुम-लता-गुल्माः पादपजातयः। बीजात्काण्डात्तथा कन्दात्तद्वपनं त्रिविधं मतं (45)।

ये हैं- 1 वनस्पति 2. द्रुम 3. लता 4. गुल्म। क्रमशः बीज, काण्ड, दण्डी या डण्ठल, कन्द का प्रयोगकर उनको उगाया जा सकता है। इनके रोपण के तीन प्रकार बताए गए हैं।

इसके बाद बीजोप्ति विधि दी है जो कदाचित नवीन है। इसी प्रकार उसने जो बीजवपन कृत्य बताए हैं, वे मत्स्यपुराणोक्त वृक्षोत्सव विधि से भिन्न हैं तथा लोक जीवनाधारित लगते हैं क्योंकि उनमें अनुष्ठान व आचारों की जटिलता की अपेक्षा सहजता है। इसके बाद वह वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त दिवस, तिथि, लग्न और नक्षत्र पर विचार करता है जो वराह, वृद्धवशिष्ठ संहिता की भांति ही अन्यत्र भी उपलब्ध हैं और परंपरानुसार मान्य रहे हैं।

मत्स्याम्बु या मत्स्यजल की परंपरा के साथ ही उसने वृक्षों के लिए तरल खाद्य के रूप में कदाचित पहली बाद सशक्त रूप से 'कुणप' के प्रयोग की सलाह दी। सूरपाल से पूर्व कुणप शब्द को बदबूदार, मुर्दे जैसी दुर्गंध देने वाला आदि अर्थों में ही जाना जाता था, जैसा कि विक्रमांकदेवचरित (5) के 'शव शासनीयः कुणपभोजनः' और मनु (12, 71) के 'अमेघ्यः कुणपाशी च' जैसे प्रयोगों से ज्ञात होता है। उसने केंचुओं को भूमि उर्वर बनाने वाले या किसान मित्र के रूप में जाना। आज वर्मीकम्पोस्ट खाद के रुप में इसका प्रयोग चलन में आया है।

रोपे जाने वाले वृक्षों के बीच अन्तराल को उसने परंपरा से थोड़ा हटकर लिखा है। उसने 14 हाथ की दूरी को अधम माना है जबकि उसके पूर्ववर्ती कश्यप, वराह, शुक्राचार्य, विष्णुधर्मोत्तकार, अग्निपुराणकार आदि ने 12 हाथ को अधम माना है। उसने

पहली बाद झाड़ियों की दूरी भी तय की है और तर्क दिया कि यदि रोपण अधिक दूर-दूर किया जाएगा तो आँधी-झंझावात आदि नुकसान कर सकते हैं और यदि पेड़ों को पास-पास भी लगाया जाए तो वे फलित नहीं होते। इसलिए पेड़ों को निर्धारित दूरी पर ही लगाना चाहिए। पुग या सुपारी के लिए दिया गया निर्देश परीक्षण और अनुभव आधारित जान पड़ता है।

सुरपाल ने नवीन पेड़ों के लिए गर्तविधि दी हैं और स्थानान्तरित किए जाने वाले पौधों के लिए मन्त्र का प्रावधान भी किया। ऐसा लगता है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय पौधे प्रायः नाकारा हो जाते थे अतः इस प्रयोग में सफलता के लिए देवता से सहयोग मांगा जाता था (85-86)। उस काल में भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में पौधों को रोपणार्थ ले जाया जाता था जैसा कि अशोक के काल में भी होता था। रोपण के लिए कालानुसार पौधों का चयन उसका अपना अनुभव दर्शाता है। इसके बाद उसने पेड़ों को निम्न प्राकृतिक व्याधियों से बचाने के उपाय दिए हैं- नमी, झंझावात, धूप, धुंआ, आग और कीट।

वृक्षायुर्वेद में विभिन्न पेड़ों, शाकों-सब्जियों को उगाने के लिए उपयुक्त मासों पर विमर्श किया गया है जो अनुभवाधारित है। इसमें ज्येष्ठ को नहीं गिना गया है। सुरपाल की यह सूची प्रासंगिक है-

मास नाम	उगाने योग्य वृक्ष
1. श्रावण-	खिरनी, आम्र, दाड़िम एवं बकुल
2. भाद्रपद या मध्य वर्षाकाल-	राजकोश, आम्र, लकुच
3. आश्विन-	गोल बैंगन आदि
4. कार्तिक-	फणिज्य, मरुवाक, शतपत्रिका, धान्य, मूलादि
5. फाल्गुन-	पटोल आदि
6. चैत्र-	कार्कारु या करेला
7. वैशाख-	कदली आदि का शुक्रवार को रोपण
8. आषाढ़-	किसी भी पौधे का रोपण
9. पौष, माघ, मार्गशीर्ष-	अधिक सर्दी से रोपण अनुचित।

ओषधीय पादप के रूप में भिल्लोट या भिलावाँ की गणना प्राचीन काल से ही की जाती रही है, इसे दुर्ग संग्रहणीय ओषध भी माना गया है और गवायुर्वेद, हयायुर्वेद,

अश्वायुर्वेद में भी इसे महत्व दिया गया है। इसकी निरापद पैदावार के लिए किसी भी वृक्ष के चारों ओर उगाया जाना चाहिए- सर्व्ववृक्ष निवेशानां सर्व दिक्षुधिरोपयेत्। भिल्लोटं यत्नत: प्राज्ञ: पादपाऽरोग्य हेतवे (91) ॥ ओषधीय गुणों से युक्त पेड़ों में फलिनी, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और निम्ब या नीम की गणना की भी गई है। इन्हें 'पञ्चमङ्गलवृक्ष' भी कहा गया है और निर्देश दिया गया है कि इनको सबसे पहले लगाने से कई आपदाओं की आशंकाओं का उन्मूलन हो जाता है (92)।

सुरपाल ने वृक्षारोपण करने के आठ प्रकार बताए हैं। इसे लगाए गए पौधे सुन्दर, छंदबद्ध दिखाई देते हैं और उपवन या वाटिका की संरचना विधिवत् दिखाई देती है। वस्तुत: पौधरोपण भी एक कला है- मण्डप नन्द्यावर्त्त स्वस्तिक चतुरस्त्र सर्व्वतोभद्रै:। वीथी निकुञ्ज पुञ्जक विन्यासै: पादपा रोप्या: (94)। पौधरोपण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. मण्डपवत्- पौधों को वितानवत् या लतागृह की आवश्यकतानुसार लगाना
2. नन्द्यावर्त- वृक्षों को पश्चिमाभिमुख या नदी की तरह से लगाना
3. स्वास्तिकाकार- अष्टास्त्र अथवा स्वास्तिक के आकार में रोपण
4. चतुरस्त्र- चौकोर रचना के रूप में लगाना
5. सर्वतोभद्र- लम्ब चौरस अथवा सभी दिशाओं में विस्तार लिए
6. वीथी- गली की आवश्यकता के अनुसार या गली की भांति रोपित करना
7. निकुञ्ज- पर्णकुटि के रूप में पौधों को लगाना
8. पुञ्जक- पौधों का समूहबद्ध आरोपण।

वस्तुत: यह वास्तु विचार से प्रेरित जान पड़ता है। मयमतम्, कामिकागम, मानसार, दीपार्णव, समराङ्गणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा आदि वास्तुग्रंथों में स्वास्तिकार, नन्द्यावर्त, चतुरस्त्र, सर्वतोभद्रादि संज्ञाएं नगर और हर्म्यादि के नियोजन के लिए निर्धारित की गई है।

सुरपाल ने भूमि की प्रकृति के अनुसार पेड़-पौधों को पानी दिए जाने का निर्देश दिया है (109-110)। उसने अधिक जल वाले प्रदेश, दलीदली भूमि वाले क्षेत्र और साधारण प्रदेशों की तासीर पर विचार किया और जो निर्देश दिए वे इस प्रकार है-

1. जाङ्गलप्रदेश या जहाँ सूखा अधिक रहता हो, वहाँ पर रोपित नवीन पेड़-पौधों को नित्य सुबह और सन्ध्या को नियमित रूप से एक पखवाड़े तब तक जल दें और भूमि को पूरी तरह तृप्त करें।

2. अनूपप्रदेश या जहाँ पर भूमि दलदली रहती है वहाँ पाँच दिन में एक बार अवश्य पानी दें।

3. साधारण क्षेत्र में दस दिन तक प्रात: व संध्या को सीमित जल दिया जाना उचित है।

इसके बाद ग्रीष्मकाल, शीतकाल, वर्षाकाल और वसंतकादि में वृक्षों के लिए जल की आवश्यकता व सेचन प्रकार को परंपरानुसार ही बताया गया है। पौधों को सदा पुष्पित-फलित रखने के लिए सुरपाल ने विभिन्न प्रकार की धूपों का निर्देश देते हुए, धूप सामग्री को भी बताया है। इस सामग्री में हल्दीचूर्ण, विडङ्ग, शशक-मांस, अर्जुन फूल, सफेद सरसो के बीज, केलों के पत्ते, शफरी प्रजाति की मछली, घृत, वायविडङ्ग, छाछ, शहद, त्रिफला, घी आदि मुख्य है। इसके लिए ओषधीय जल भी एक उपाय है। इसमें जैविक विधियाँ भी शामिल हैं। खाद के नाना प्रकारों का वर्णन उस काल के प्रायोगिक निष्कर्ष को प्रतिपादित करता है।

फलदार पेड़ों को कुदृष्टि से बचाने के लिए टोने-टोटके पर आज भी विचार किया जाता है और उस काल में भी होता था। आज भी दाड़िम, आम, जामुन, सेव, बदाम आदि पर फूलों के आते ही रखवाले उन पर मटका, जानवरों का सींग लटका देते हैं। पशु-पक्षियों से बचाने के लिए बीजूका, ओजखा आदि भी खेत या बाग में लगाते हैं। सुरपाल ने भी कहा है कि जब दाड़िम का पेड़ फलों से लद जाए तो उस पर खोपड़ी बांध देनी चाहिए। इसी प्रकार आम पर जब मञ्जरियां और अमियां भरपूर आने लगे तो एक मटका फोड़कर उसका मुंह या ठीकरा बांध दिया जाना चाहिए- -दाडिमी फलभाराढ्यश्चा खर्प्परमण्डिता। तथाम्राललरू: कुम्भमुखालङ्कृतस्तक: (१३२)।।

इसी प्रकार सुरपाल ने फलों को बड़ा बनाने, तंदुरुस्त, अमृततुल्य, मीठा बनाने की विधियाँ भी दी है। ऐसे ही प्रयोग सोमेश्वर ने भी 'मानसोल्लास' में दिए हैं कि यदि मुर्गे की बीट व घोड़े के मांस की मज्जा को खाद रूप में द्राक्षा लता को दिया जाए, सारंग, गज, मार्जार व कोल की मज्जा को दूध में मिलाकर दाड़िम को दिया जाए तो फल स्वादपूर्ण व मीठे होते हैं (5, 1, 41-45)। ऐसे ही प्रयोगों को सुरपाल ने दिया है। कतिपय प्रयोग ज्ञातव्य है-

1. मातुलिङ्ग के फलों के आकार में वृद्धि व मिठास के लिए- दूध मिश्रित गंदा जल, मांस, मछली, गोमय, शाली और तिल की खली का प्रयोग करें। इसके लिए सियार का मांस भी दिया जा सकता है।

2. नारङ्गी के पेड़ से श्रेष्ठ फल लेने के लिए- मांस, गुड़ व दूध मिश्रित पानी से

सेचन करें। इसके लिए विडङ्ग, उड़द, तिल, सरसों, बिल्व, हल्दी और शशक मांस को जल में मिश्रित कर दिया जाए या लेपन व धूपन भी किया जा सकता है।

3. मधुक से कपूर जैसे सुगंधित पुष्प लेने के लिए-कलया दाल, अङ्कोल की छाल के चूर्ण व मांस से आधूपित किया जाए। जालिनी या राजाकोश के पत्तों व जड़ों का खाद भी उपयोगी है।

पौधे किन-किन द्रव्यों, उपचार से संतुष्ट होते हैं। यह भी स्पष्ट किया गया है-

1. सौवीर- दही, कोल चर्बी, तिल व देशी सुरा

2. खिरनी- कुणप जल

3. श्याम, कदम्ब, करिकेसर- उक्त प्रयोग वाञ्छित

4. पुष्पीय पौधे- जन्तुखस और मुस्त पल्लवों के क्वाथ में सुरा

5. केतकी- इलायची आदि गंधवाले द्रव्य व मांस का क्वाथ, मल-जल

इसी प्रकार नाना वृक्षाकांक्षाओं या दोहद को भी सुरपाल ने स्पष्ट किया है। यह पूर्व शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार है तथा आज परीक्षणीय है।

पेड़ों की रक्षा के लिए जो विधियां उस काल तक प्रयोग की जाती थी, वे उनकी प्रकृति के अनुसार उत्तम, मध्यम व अधम या निंदित- इन तीन कोटियों की थीं। इनका प्रयोग कर जिस किसी तरह पेड़-पौधों को बचाना कर्त्तव्य कहा गया है। तरुरक्षा के उपायों में कोहरा या पाला से पेड़ों को बचाने, ओलावृष्टि से प्रभावित वृक्षों के उपचार, कीट-पतङ्ग, मूषकादि से फसल को बचाने के लिए पारंपरिक उपाय दिए गए हैं। कोहरे की स्थिति में पेड़ को कपड़ा ओढ़ाएं व वन या खेत में धुआं करें जैसी आज भी परंपरा है। ओलों से यदि फसल खराब हो गई हो तो भाप किए चावलों को दही में मिलाकर छांटा जाना चाहिए।

चींटी, टिड्डीदल, चूहा आदि प्राकृतिक आपदाएं हैं। इनसे निजात पाने के लिए मन्त्र प्रयोग की सलाह दी गई है और कहा गया है कि केले के पत्ते पर उक्त मन्त्र को लिखकर खेत के बीच तिकोना गड्ढा खोदकर उसमें गाड़ दें।

त्रिदोष सिद्धांत-

सुरपाल ने आयुर्वेद के मतानुसार ही वृक्षों में दो प्रकार की व्याधियाँ कही है। पहली वे जो बाहर से दिखाई देती है, जैसे घाव, व्रण, कीट-कृमियों का लगना आदि और दूसरी वे जो आन्तरिक होती है और एकाएक दिखाई नहीं देती। ये पोषण, रस व

रसावयवों को प्रभावित करती है। आयुर्वेद के 'त्रिदोष' सिद्धान्तानुसार ही वृक्षों में होने वाले रोगों के तीन सिद्धांत दिए गए हैं। 'गरुडपुराण' (अ. 146) सहित 'अष्टाङ्गहृदय' (2, 19-23) आदि में त्रिदोषों के विषय में कहा गया है कि त्रिदोष के प्रकुपित होने पर दोष रोगों के अधिष्ठानों में जाने वाली रस वाहिनियों के द्वारा शरीर में पहुँचकर अनेकानेक विकारों को उत्पन्न करने लगते हैं।

त्रिदोष के आयुर्वेदिक सिद्धांत व सुरपाल के मतों की तुलना इस प्रकार की जा सकती है-

1. वातजन्य दोष- गरुडपुराणकार के मतानुसार तिक्त, उष्ण, कटु, कषाय, अम्ल व रुक्ष खाद्यान्न का असंगत सेवन, दौड़ना, जोर से संभाषण, रात्रि जागरण, कार्यों में अति अनुरक्ति, भय, शोक, चिंता, व्यायाम एवं रति से शरीर में विद्यमान वायु प्रकुपित हो जाती है। यह भी विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु के दिन व रात में भोजन के उपरांत पाक के अन्त में होता है (अ. 146)। सुरपाल ने द्रुमों में वातव्याधि के भी कुछ ये ही हेतु बताए हैं- वात जन्य रोग तब होते हैं जबकि भूमि में अत्यधिक मात्रा में रूक्ष, कषायादि तत्त्वों को प्रदान किया जाता है (167)। वृक्षों में वातप्रकोप के निम्न लक्षण बताए गए हैं— तने का कृशकाय होना, पत्ती व तने पर व्रण, फलों का कठोरपन एवं कम रसीला होना एवं मीठास में कमी।

2. पित्तजन्य दोष- इन दोषों के कारणों के विषय में गरुडपुराण में स्पष्ट किया गया है कि कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण व क्रोध एवं दाह को बढ़ाने वाले आहार के सेवन से पित्त प्रकुपित होता है। पित्त का प्रकोप शरद के मध्याह्न, अर्द्ध रात्रि व अन्य दाहोत्पादक क्षणों में होता है (अ. वही)। इसके विपरीत सुरपाल ने कहा है कि पित्तज दोष ग्रीष्मकाल या मेघागमन काल में होते हैं। इसके कारण हैं— पेड़ों को खनिज, कटु, अम्लीय एवं लवणीय, तीक्ष्ण द्रव्यों से सींचना। यह प्रकोप होने पर पत्तियां अकाल ही पीली दिखाई देती है, फल असमय ही गिरते हैं, पेड़ सूखने लग जाता है, पत्र, पुष्प व फल म्लान पड़ जाते हैं अथवा पीले पड़ नष्ट होते जाते हैं (171-72)।

3. कफजन्य दोष- गरुड़पुराणकार ने कफ प्रकोप के निदान के विषय में कहा है कि मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरु, अभिष्यन्दी व शीतल भोजन के प्रयोग से, बैठे रहने, निद्रा से, अति सुख व भोग, अजीर्ण, दिन में निद्रा, अति कठोर पदार्थों के प्रयोग, वमन आदि न करने, भोजन के परिपाक से प्रारंभिक काल में, दिन के प्रथम भाग एवं रात के पहले भाग में कफ कुपित होता है और दो-दो दोषों के प्रकोपक आहार-विहार सेवन से दो-दो दोष प्रकुपित होते हैं (अ. वही एवं अष्टाङ्ग. 2, 17-18)। वृक्षायुर्वेद में भी क़फ के कारण व लक्षण इसी प्रकार बताए गए हैं। सुरपाल का मत है कि कफ जन्य

व्याधियां सर्दी या वसन्त ऋतु में होती है। उक्त अवधि में यदि पेड़ों को मीठा, तैलीय, अम्लीय एवं अधिक शीतलता देने वाले द्रव्यों से युक्त जल या आहार अति मात्रा में दिया जाए तो कफ प्रकुपित होता है। कफजन्य व्याधियों के लक्षणों में मुख्य हैं- फल धारण करने में देरी, पाण्डुरोग या पीलापन, पत्तियों का मुड़ना, फलों की वृद्धि न होना, असमय फलना व फलों की नीरसता (169-70)।

वृक्षों की अन्य व्याधियों के लिए कृमि लगना, तापघात, अंधड़, आगजनी, मिट्टी की निःसारता या उर्वराशक्ति खो देना, कुठारादि का वार, कफ जन्य स्राव, अधिक सिञ्चाई, दूषित मिट्टी में रोपण, दूषित बीज, अनुचित उपचार, दीमक या चींटियों का लगना आदि कारण गिनाए गए हैं।

वात व्याधि के उपचार के लिए वृक्षों को मांस, वसा व घी के साथ ही कुणपजल, अरिष्ठ, गोशृङ्ग, अश्वकेश, शण या सन, शिशुमारजीव का तेल व कोल के मेद की धूनी का प्रयोग उत्तम बताया गया है जबकि कफ जन्य रोगों के लिए पञ्चमूल क्वाथ का प्रयोग करना हितकारी माना है। गरुडपुराण में बिल्व, शोणा, गम्भीरी, पाटला एवं अग्रिमान्द्य- इन पाँच वृक्षों के मूल संग्रह को पञ्चमूल कहा है। ये पञ्चमूल मन्दाग्नि को तीव्र करने वाले, कफ और वात के दोष का विनाश करने वाले कहे गए हैं (अ. 168)। क्वाथ के लिए पर्याप्त पानी लेकर उसमें मूल को डालें और आग पर गर्म करें। जब वह चतुर्थांश रह जाए तो उतार कर ठण्डा करने के बाद प्रयोग करें।

इसी प्रकार कफ कुपित होने से होने वाले रोगों से छुटकारे के लिए सरसो के कल्क का प्रयोग आवश्यक कहा गया है- सितसर्षप कल्कं च मूले दत्वा निषेचयेत् (अ. 168)। आयुर्वेद में कहा गया है कि कल्क तैयार करने के लिए तैयार क्वाथ में समान मात्रा में स्नेहिल द्रव्य डालें। यह दूध से भी तैयार किया जा सकता है, उसमें दूध की मात्रा समान हो (अ. 168)। कल्क के लिए स्नेह की मात्रा से ओषधि की मात्रा चतुर्थांश ही होती है। इसके मृदु, मध्यम एवं खर- ये तीन प्रकार बताए गए हैं- तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं मृदुः। मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः। वृष्णमवसन्नमीषद्विशदं चिक्कणं च पत्र भेषजं स खरः॥ स्नेहपाकोऽथ कल्के स्यान्मृदुरङ्गलिलेपिनि। न गृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्यमाणः खर स्मृतः॥

अर्थात् जब स्नेहकार्त में प्रयुक्त ओषधि पकाते हुए यह लगे कि वह पक गई है या ओषधि कलछी से लगने लगी हो तो उसे मृदु-पाक कहते हैं। जब वह कल्क मोम के समान कड़ाह में फैल जाए व कलछी से चिपके नहीं, तो मध्यम-पाक कहा जाता है। जब कल्क कठिन तथा कुछ चिकना हो तो उसे खर-पाक कहा जाता है। यह भी कहा गया है कि जब कल्क अँगुली पर चिपके और उसमें नरमी हो तो वह मृदु-पाक है, जो कल्क

अँगुली पर चिपके और नरम हो, वह मध्यम तथा जो कल्क पककर कठिन हो जाता है, उसको खर-पाक कहा जाता है।

इस प्रकार पित्त के कुपित होने पर शीतल व मधुर द्रव्यों के साथ ही दूध, शहद, मुलेठी व मधुक के क्वाथ का प्रयोग करने को कहा गया है। चूंकि पित्त दोष में आयुर्वेद ने दाह, तल में जलन, पसीना, क्रोध, कटु, अम्ल, शव के समान दुर्गंध, स्वेदराहित्य, मूर्च्छा, अति तृष्णा, भ्रम, पीलापन आदि लक्षण माने हैं (अ. 168) अतः इनके लिए शीलत व मधुर द्रव्य उत्तम आश्रय होते हैं।

गरुडपुराण में मधुर द्रव्यों में साठी चावल, गेहूँ, दूध, घृत, रस, मधु, सिंघाड़े की गूदी, जौ, कशेरु, फूटने वाली ककड़ी, गोखरू, गंभारी, कमलगट्टा, द्राक्षाफल, खर्जूर, बला, नारियल, इक्षु, सतावर, विदारीकन्द, चिरौंजी, मुलेठी, तालफल और कुम्हड़ा को मधुर द्रव्य में परिगणित किया गया है (अ. 173)।

त्रिफला को भी इस दृष्टि से अतीव उपयोगी कहा गया है। त्रिफला में आँवला, हर्रे व बहेड़ा होते हैं। आँवला बलकारी, मधुर, रोचक और अम्लरस से युक्त होता है। हर्रे या हरीतकी भोजन को भली प्रकार से पचाने वाली, पुण्यदायिनी, अमृत के समान व कफ व वातादि दोष को दूर करने में पूर्ण समर्थ व विरेचक है। बहेड़ा में भी उक्त सभी गुण हैं। त्रिफला में तीनों ही दोषों को हरने की क्षमता होती है (अ. 168)। सुरपाल द्वारा दिया गया ओषधि निर्देश निश्चय ही आयुर्वेद की कसौटी पर कसा गया है।

कृमियों के उपचार के लिए ठण्डे पानी से सिञ्चाई और दूध, कुणप, भिल्लोट, वसा, गोमय के जल, सफेद सरसो, वचा, कुष्ठ, अतिविष, सफेद सरसो, रामठ (?), विडङ्ग, वचा, उंषणा, गोमांस युक्त जल, भैंसे का विषाण, कपोत मांस और भिल्लात चूर्ण का धुआँ, विडङ्ग का लेप, घी सहित क्षारीय जल से सात दिनों तक सिञ्चाई तथा गोमांस, सरसो, तिल आदि का प्रयोग बताया गया है।

अन्य प्रयोगों में व्रण या घाव के उपचार के लिए सुझाए गए उपाय भी आयुर्वेदिक मान्यताओं पर ही आधारित हैं। गरुडपुराणादि में मधु के साथ शरपुंखा या शरफोंका का लेप, नीम की पत्तियों का लेप, त्रिफला, खदिर, दारुहल्दी व वटवृक्ष की छाल या फल के योग से बना लेप, यष्टिमधु और घी को गरम कर मधु के साथ तैयार किया गया लेप, विडंग, एडगज, वच, कुटकी, दारुहल्दी, समुद्रफेन व सरसों को गोमूत्र व अम्ल में पीस कर तैयार किया गया लेप व्रणशोधक कहा गया है। मवाद युक्त फोड़ा अकेले घी के प्रयोग से ठीक हो सकता है। अपामार्ग की जड़ को हाथों में मल कर लेप करने से रक्तस्राव रुक जाता है। इसी प्रकार बालमूल या मोथा की जड़ व मेढ़ासिंगी की जड़ को

जल में घिसकर लेप करने से पुराना घाव भी सूख जाता है।

इन्हीं प्रयोगों के आधार पर सुरपाल का कथन है कि वृक्षों पर यदि जन्तुओं से व्रण या घाव बना दिए हों तो वायविडङ्ग, तिल, गोमूत्र, घी और सिद्धार्थ या सरसो मिश्रित घोल दें और उपर से दूध का सेचन करें। वट, उदुम्बर की छाल, गोमय, शहद एवं घी के मिश्रण का लेप करने से भी वृक्षों के घाव दूर हो जाते हैं।

आढकप्रस्थादि माप-

ओषधीय प्रयोग में मात्रा-मान ज्ञातव्य है। सुरपाल ने तत्कालीन समाज में स्वीकार्य मात्राओं में आढक, प्रस्थ, द्रोण और तुला के आधार पर ओषधियाँ लेने का निर्देश दिया है (216)। आयुर्वेदिक ग्रंथों में भी यही मत मिलता है। गरुडपुराण में कहा गया है कि स्नेह, क्वाथ व वटिका आदि में प्रयुक्त ओषधियों की उत्तम, मध्यम और अधम- ये तीन मात्राएँ मानी गई हैं जिनमें उत्तम मात्रा एक पल या आठ तोला (16 ग्राम), मध्यम मात्रा तीन अक्ष या छह तोला (72 ग्राम) व अधम मात्रा तीन अक्ष अर्थात चार तोला (48) ग्राम होती है (अ. 173)। इसी प्रकार पुराणकार ने पाक के लिए प्रस्थ व क्वाथ के लिए आढक मान से ओषधियाँ लेने का मत दिया है।

भास्कराचार्य (1051 ई.) ने 'लीलावती' में घनहस्तादि की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया है कि एक हाथ ऊँचे, एक हाथ लम्बे व एक हाथ चौड़े ($1 \times 1 \times 1 = 1^3$) बारह कोण वाले पात्र को घनहस्त कहा जाता है। इसका उपयोग धान्य के माप में किया जाता है। इसे मगध में खारी भी कहा जाता है। एक खारी के सोलहवें भाग (1/16) को एक द्रोण, द्रोण के चतुर्थांश (द्रोण / 4) को आढक, आढक के चतुर्थांश (आढक / 4) को प्रस्थ तथा प्रस्थ के चतुर्थांश (प्रस्थ / 4) को कुडव कहा जाता है (1, 1, 7-8)। गुप्तकाल या 488 ई. में भी यही परिमाण प्रचलित था।

इसी प्रकार तुला का तौल 100 पल के बराबर होता है। इसे आयमानी भी कहा जाता था। इसका परिमाण 10 = 1 पल, 100 पल = 1 तुला या आयमानी तथा 20 = तुला = 1 भार होता है। आयमानी तुला के अतिरिक्त तुला के तीन अन्य प्रकार भी हैं- व्यावहारिकी, भाजनी और अन्तःपुरभाजनी। इनमें आयमानी से व्यावहारिकी 5 पल कम, भाजनी इससे 5 पल कम और अन्तःपुरभाजनी इससे 5 पल कम होती है।

इस प्रकार व्यावहारिकी 95 पल की भाजनी 90 और अन्तःपुरभाजनी 85 पल की होती थी। व्यावहारिकी क्रय-विक्रय व्यवहार में, भाजनी भृत्यों को वितरण व अन्तःपुरभाजनी रानियों व कुमारों को द्रव्यादि तौलने में प्रयुक्त होती थी (अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : हिन्दूराजशास्त्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1949 पृष्ठ 389)।

द्रुमविचित्रीकरण-

वृक्षायुर्वेद के विचित्राध्याय में सुरपाल ने ऐसे कई प्रयोग दिए हैं जिनसे पेड़ों का विचित्रीकरण किया जा सकता है। पूर्वकाल में इस प्रकार के प्रयोग, इन्द्रजाल, मायादि प्रयोगों में भी किए जाते थे। रत्नावली (4), कालिकापुराण के उत्तर तन्त्र, मानसोल्लास की चतुर्थविंशति, दत्तात्रेयतन्त्र, इन्द्रजाल तन्त्र संग्रह आदि में इसके उदाहरण खोजे जा सकते हैं। चाणक्य ने तो अर्थशास्त्र में पूरा अध्याय लिखा है।

सुरपाल ने मुख्य से उन विधियों का वर्णन किया है जिनसे पेड़ वर्ष पर्यन्त फूल एवं फल दे सकते हैं, बिना मौसम के फल-पुष्प, गन्धोत्पत्ति, अनस्थी व गुठली रहित फलोत्पादन, रस परिवर्तन, पुष्पों का वर्ण परिवर्तन, पुष्प परिवर्तन, फल परिवर्तन, गन्ध परिवर्तन, गंध बंधन, वल्लरीप्रस्फुटन, वृक्षों का लता रूप में परिवर्तन, वामनाकार द्रुमोत्पादन, मिश्रित द्रुम, दीर्घकाल पर्यंत फलोत्पादन, फल न पके, फसल नष्टता, दीर्घायु, पुनर्नवीकरण, तत्काल फलोत्पत्ति, पुष्प-फलाकार वृद्धि, उत्पत्ति के साथ ही वृद्धि, अन्य जातियों या वियोनिज पौध तैयार करना संभव होता है।

यह सभी कुछ ओषध प्रयोग, कलम, कुणप जल, जीव-जन्तुओं के मांसादि का प्रयोग, आधूपन विधियों से ही संभव है जिनमें देश, काल व चातुर्य अपेक्षित होता है। सुरपाल सहित ये विधियाँ 'उपवनविनोद' में भी मिलती है। ये विधियाँ आगे के लगभग छह सौ वर्षों तक उद्यानपालकों में प्रचलित रहीं, चक्रपाणि मिश्र ने भी इनको संगृहीत किया है और कुछ नवीन विधियाँ भी दी हैं।

इसके बाद सुरपाल ने उपवन विधि को दिया है। यह विधि उपवनविनोद में अपेक्षाकृत विस्तृत है। राजाओं के लिए विशेष उपवनों का निर्माण होता रहा है। यह विषय वास्तुशास्त्र से सम्बद्ध है। कालिदास, मय, मान, बाण, धाराधिप भोज, सोमेश्वर, सूत्रधार मण्डन प्रभृति ग्रंथकारों ने उद्याननिर्माण का संकेत दिया अथवा विधियाँ लिखी हैं। कालिदास ने रघुवंश में जिस क्रीडापर्वत का उल्लेख किया है, वह सुरपाल के उपवन वर्णन का आधार जान पड़ता है। इसमें अनेक वापियाँ व दीर्घिकाएँ होती थीं, बकुल, शिरिष आदि माङ्गलिक वृक्ष वहाँ लगाए जाते थे। जलस्रोतों में हंसगण अपनी मधुर ध्वनि गुञ्जायमान करते थे। अनेक पक्षी व मयूर विचरण करते और वे मेघों को आया जानकर नृत्यातुर हो उठते थे— अंसलंविकुटजार्जुनस्रजस्तस्य नीपरजर्सागरागिण:। प्रावृषि प्रमदबार्हिणेष्वभूत कृत्रिमाद्रिषु विहारविभ्रम: (19, 37)॥ साञ्ची में ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी में बने तोरण पर इस प्रकार का अङ्कन मिला है। मेघदूत (2, 80), विष्णुस्मृति (5, 1, 100) सहित मानसोल्लास (5, 1, 100-5) में भी इस प्रकार की निर्मितियों का उल्लेख मिलता है। सुरपाल का विवरण भी पूर्ववर्ती मतों के अनुसरण में हैं किंतु सुरपाल

ने वराह की भाँति वहाँ पर वापी की अपेक्षा कूप खुदवाने का निर्देश दिया है। कूपों का उस काल में निर्माण अपरान्त व जाङ्गल प्रदेश में विशेष हुआ। पतंजलि (१४४-१४२ ई.पू.)ने कूपखनन का जिक्र किया है (महाभाष्य आ.१ पृष्ठ२४ तथा १,३,१२ पृष्ठ ५४ एवं १,१,२३ पृष्ठ २१२)।

कूपार्थ भूमि परीक्षा या दकार्गल-

कूप के जल को शुद्ध रखने के लिए सुरपाल ने जिस विधि को दिया है, वह वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता' से उद्धृत है। इसके अनुसार अञ्जन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला और कतक के फल के चूर्ण का मिश्रण जल में डालने से वह निर्मल, सुरस, सुगंधवाला और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है। इसके बाद जलशिराओं की पहचान के लिए उसने जिस दकार्गलविद्या को दिया, उसके सारे ही श्लोक वराहमिहिर के हैं। वराहमिहिर ने इनको मनुप्रोक्त संहिता से ग्रहण किए थे, जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि सारस्वत मुनि ने दकार्गल विद्या पर कोई ग्रंथ लिखा था, जो अब अनुपलब्ध है। चक्रपाणि ने सारस्वत को इस विद्या का प्रवर्तक कहा है- सारस्वतोक्ता विशदा किंपतोमपाथ योगान् लिखितान् विचार्य। उक्ता वराहेण च चान्ये देशे ब्रुवेऽहं खलु पार्वतीये (अ. 1)॥

सुरपाल ने वराहमिहिर कृत दकार्गल विद्या के उद्देश्य व निर्दिष्ट शिराओं के नामादि के प्रसङ्ग के प्रारंभिक चार श्लोकों को छोड़ दिया है। प्रारंभिक भूमिका में वराहमिहिर ने पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इन्द्रादि के नामानुसार भूमिगत जलशिराओं का विवरण दिया है। इनके मध्य में नवम महाशिरा है जबकि अन्य सैकड़ों शिराएं भी भूमि में प्रवहमान हैं जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं (53, 3-4)।

क्रम	दिशा	स्वामी	शिरासंज्ञा
1.	पूर्व	इन्द्र	ऐन्द्री
2.	अग्निकोण	अग्नि	आग्नेयी
3.	दक्षिण	यमराज	याम्या
4.	नैर्ऋत्यकोण	नैर्ऋत्य	नैर्ऋत्यी
5.	पश्चिम	वरुण	वारुणी
6.	वायव्यकोण	वायु	वायव्या
7.	उत्तर	चन्द्रमा	शशिनी
8.	ईशान	शङ्कर	शाङ्करी

वराह का निर्देश है कि ऊर्ध्वाधर या पाताल से ऊपर की ओर जाने वाली शिरा और पूर्वादि चार दिशाओं वाली शिराएं भी शुभद होती है किंतु आग्नेयादि चारों कोणों वाली शिराएं अशुभ होती है। यहीं से सुरपाल ने श्लोक उद्धृत करने आरंभ किए हैं और किसी वृक्ष, वृक्ष से किसी दिशा में कोई दूरी, वहाँ प्रवहमान शिरा का नाम, शिरा की गहराई (पुरुष मान या 120 अङ्गुल), वहाँ तक पहुँचने पर मिलने वाले विभिन्न द्रव्यों के चिह्न- मिट्टी, पत्थर के वर्ण, रूप, जीव, शिरा में प्राप्त जल का स्वाद, जलस्रोत की आयु आदि का वर्णन किया है।

उदाहरण के लिए वेदमजनूँ या वेंत और जामुन वृक्षों के आधार पर मिलने वाली शिराओं, वहाँ के लक्षणों को इस सूची से समझा जा सकता है-

क्रम	द्रुम	दिशा व दूरी	शिरा	चिह्नादि
1.	वेंत	पश्चिम में 3 हाथ	पश्चिमा	60 अङ्गुल नीचे पीताभ मेढ़क, नीचे पीत मिट्टी, फिर पुटकभेदक पाषण, तदनन्तर जल।
2.	जामुन	उत्तर में 3 हाथ	पूर्वा	120 अङ्गुल पर लौह गंधा मिट्टी, फिर सफेद मिट्टी एवं मेढ़क।
3.	जामुन	पूर्व में बाँबी से 3 हाथ दक्षिण	सुस्वादु जल	60 अङ्गुल पर मत्स्य, कपोतवर्ण पाषाण, काली मिट्टी।

इस प्रकार कूप के लिए प्रदेश परीक्षा के प्रसङ्ग में सुरपाल ने वृक्षीय ज्ञान को महत्व दिया है। वराह ने 125 श्लोकों में यह विवरण दिया है किंतु सुरपाल ने चयनित श्लोकों ही लिया है। उक्त श्लोक 'उपवनविनोद' में भी इसी क्रम से दिए गए हैं।

अन्नादि निष्पत्ति संकेत-

ग्रंथ के अन्त में भी सुरपाल ने वराहमिहिर के मत को ही उद्धृत किया है। अन्नादि निष्पत्ति को दर्शाने के लिए वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में 14 श्लोकों वाला 'कुसुमलताध्याय' लिखा है और कहा है कि पेड़ों में फल, फूलों की वृद्धि को देखकर द्रव्यों की सुलभता व धान्यों की निष्पत्ति जाननी चाहिए- फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्यं विज्ञेयम्। सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् (29, 1)॥

आज भी देहात में पेड़ों के अकाल फलते-फूलते देखकर वहाँ फसल, व्यापार, जनजीवन आदि पर पड़ने वाले प्रभावों का पूर्वानुमान लगाया जाता है। राजस्थान में यदि नीम खूब फलता है तो सुवृष्टि तथा सूखे का पेड़ खेजड़ी या शमी खूब पल्लवित होता है तो अकाल की आशंका स्वीकारी जाती है। कृषक जीवन में परंपरा से प्राप्त इस ज्ञान का बड़ा महत्व है। इस लौकिक ज्ञान ने फसलचक्र को भी प्रभावित किया है। पेड़ अपने स्थानानुसार ऋतु परिवर्तन को अनुभव करते हैं। इसीलिए कई बार ग्रीष्म में फलनीय पेड़ों पर सर्दी में भी फल आ जाते हैं, वैसे गर्ग मुनि ने इनको अद्भुत कहा है किंतु लोक जीवन इन संकेतों को अकाल, सुकाल से जोड़कर देखता है। राजस्थान, मालवादि प्रदेशों में इन संकेतों के आधार पर भावी परिणामों को कहने की युक्ति या समय-वाचन कहा जाता है। शार्ङ्गधर ने भी इसे उद्धृत किया है। वनमालाकार जीवनाथ झा ने वृष्टिज्ञान के संदर्भ में ऐसे लक्षणों को लिखा है। यथा- लता च गगनोन्मुखी कलितपुष्पगर्भा यदा। तदा भुवि समन्ततो ददति वारि धाराधरा: (2, 10)॥ और- कुन्द क्षीरनिभो राकाधीश्वरो दिवि दृश्यते। प्रसन्न शुभ्रकान्तिश्च वितनोति स मङ्गलम् (4, 1)॥

सुरपाल ने इस अध्याय से केवल पाँच श्लोकों को लिया है जो मुख्य रूप से धान्य, हाथी, घोड़ों, गोधन, भेड़-बकरी पर होने वाले प्रभावों को ही बताते हैं। मूलपाठ की पाद टिप्पणियों में वराहमिहिर के कुसुमलता संज्ञक इस सम्पूर्ण अध्याय को उद्धृत किया गया है।

निश्चय ही सुरपाल ने वृक्षों के वैभव को नाना रूप से परिभाषित करने का यत्न किया और उन पर स्व एवं पूर्व-पर अनुभव को ग्रंथित करने का उपक्रम किया। उसका विवरण वर्तमान में जबकि पर्यावरण, पारिस्थिकीय संतुलन के लिए वृक्षारोपण, वृक्ष संरक्षण पर विशेष चिंता व चिंतन किया जा रहा है, अति उपादेय व सर्वथा प्रासङ्गिक कहा जाना चाहिए।

प्रस्तुत पाठ व मातृकाएं-

भारत से यह ग्रंथ कब चला गया, ज्ञात नहीं किंतु, एक मात्र प्रति बोडलिएन लायब्रेरी, आक्सफॉर्ड यू.के. में मौजूद मिली। इसी पाण्डुलिपि का एशियन एग्री हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकंदराबाद के प्रो. वाईएल नेने ने संस्थान के पहले बुलेटिन के रूप में उपयोग किया और डॉ. नलिनी सांधले कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। एक लुप्तप्राय: पाण्डुलिपि के पुनरूद्धार की दिशा में यह स्तुत्य कदम था, कई वनस्पतिशास्त्रियों का ध्यान इस ओर गया, किंतु बहुसंख्य हिंदी जगत और बागवानी से जुड़ा मात्र साक्षर जगत इस महत्वपूर्ण कृति से वंचित ही रहा। उक्त प्रकाशन में मूल पाण्डुलिपि का छायाक्षरीय उपयोग किया गया, इसलिए प्राचीन लिखावट वाले अक्षर अपठनीय ही

अधिक रहे फिर संपादन का अभाव व श्लोकों पर शीर्षकों की कमी भी रही। इसमें वृक्षायुर्वेद की परंपरा पर भी विमर्श नहीं है।

उदयपुर के प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में वृक्षायुर्ज्ञानम् नामक कृति को देखा किंतु वह वृक्षायुर्वेद से भिन्न थी। यहीं पर दो-तीन प्रतिलिपियों में वृक्षायुर्वेद के कई श्लोकों को लिखा देखा तो मैं चौंक गया जो बाद में शार्ङ्गधर कृत उपवनविनोद के निकले हालांकि मैंने उनका संपादन और अनुवाद कर लिया था। बाद में इसी नाम से प्रकाशित पुस्तकें भी देखने में आई। यह दरअसल शार्ङ्गधरपद्धति से थी, डॉ. पीटर पीटर्सन को इसके प्रथम संपादन का श्रेय है।

प्रस्तुत पाठ तैयार करने के लिए निम्न मातृकाओं का उपयोग हुआ—

1. वृक्षायुर्वेद— एग्री हिस्ट्री बुलेटिन क्रम 1. में प्रकाशित पाठ। यह मातृका कुल तीस पृष्ठों की है। यह देवनागरी लिपि में है। लिपि 17वीं सदी की प्रतीत होती है। लघु आकार के पृष्ठों पर कहीं छह तो कहीं सात पङ्क्तियाँ हैं। इसमें प्रति पङ्क्ति 35 से लेकर 37 अक्षर हैं।

इसका आरंभ (प्रथम पङ्क्ति) श्रीगण (णे)शाय नमः॥ ॥ पुंसांसर्व्वसुखैकसाधन कंथाः सौंदर्य गर्वोद्धुरक्रीडालोलविला (द्वितीय पङ्क्ति) सिनीजनमनस्फीतप्रमोदवहाः। गुंजद्भविनिद्रपंकजभवस्फ्तरोल्लसद्दीधिकायु से हुआ है तथा पहले श्लोक का अङ्क नहीं दिया गया है। आगे भी दो श्लोकों के अङ्क नहीं है और आगे के अङ्क दे दिए गए हैं इससे लगता है कि यों इस मातृका में 323 श्लोक दिए गए हैं किन्तु संख्या 325 रही होगी।

समापन पुष्पिका में निम्न पङ्क्तियां हैं- इति धरणिरुहायुर्वेदमुद्यत्प्रतापप्रचरनरपति श्रीभीमपालांतरङ्गः। अकुरुत्सुरपालः कौतुकात्सिद्धयोगैर्जगदमलयशः श्रीवैद्यविद्यावरेण्यः॥ २५॥ इति वृक्षायुर्व(र्वे)दासंपूर्णः : ॥ ॥ मातृका के अन्त में लिपिकार की स्वीकारोक्ति है- कृपा रामकुअरजी कस्य पुस्तकमिदं॥ १॥ इससे यह भी ज्ञात होता है कि रामकुंअर नामक व्यक्ति का कोई बड़ा संग्रह रहा है जिसमें पहले ग्रंथ के रूप में वृक्षायुर्वेद संकलित है। लिपिकार का लघुनाम 'राम' का नाम इस मातृका में द्वितीय, तृतीय इत्यादि पृष्ठों पर दिया गया है।

2. शार्ङ्गधरपद्धति— उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में विद्यमान इस ग्रंथ की मातृका से उपवनविनोद का पाठ तैयार किया गया है जिसमें अधिकांश श्लोक सुरपाल कृत वृक्षायुर्वेद से साम्यता रखते हैं। इसका क्रमाङ्क 2548 है तथा इसका लिपिकाल विक्रम संवत् 1744 है। लिपिकर्ता पुरोहित अमर तथा कुछ नवीन पृष्ठों का पुनर्लेखन कोटेश्वर दशोरा ने विक्रम संवत् 1933 में किया। यह मातृका 25.5 गुणा 11 के आकार

की 405 पृष्ठों वाली है जिसमें प्रति पृष्ठ 11 पङ्क्तियाँ हैं और प्रति पङ्क्ति 28 अक्षर हैं किंतु यह अपूर्ण है।

3. शार्ङ्गधरपद्धति – यह मातृका भी उदयपुर के उक्त प्रतिष्ठान में विद्यमान है जिसमें कुल 557 पृष्ठ है, यह पूर्ण है और इसमें पृष्ठ 459-557 पृष्ठों को कोटेश्वर दशोरा ने नया लिखा है। 28.5 गुणा 11 आकार वाली इस मातृका में प्रति पृष्ठ सात पङ्क्तियाँ हैं और प्रति पङ्क्ति 32 अक्षर हैं। इसमें भी उपवनविनोद के पाठ में सुरपाल के अधिकांश श्लोक मिलते हैं। इसका लिपिकाल 18वीं सदी अनुमानित किया गया है।

4. शार्ङ्गधरपद्धति – उदयपुर के उक्त प्रतिष्ठान में मौजूद इस तीसरी मातृका का लिपिकाल विक्रम संवत् 1851 है और लिपिकार के रूप में शिवनाथ पुत्र गुरजी नाम मिलता है। कुल 310 पृष्ठों वाली इस मातृका का आकार 23 गुणा 10.5 है तथा प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पङ्क्तियाँ हैं और प्रत्येक पङ्क्ति में 51 अक्षर हैं। उपवनविनोद के श्लोक इसमें भी यथावत् हैं।

हालांकि इनमें से मुख्याधार वृक्षायुर्वेद की प्रथम मातृका ही रही किंतु श्लोकों में संशोधन-सुधार, पाठ संतुष्टि तथा अर्थ संगति के लिए अन्य मातृकाओं का भी पर्याप्त उपयोग हुआ। इसके साथ ही सुरपाल के मुख्य उपस्कारक ग्रंथों के रूप में पुराणों के श्लोक व वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता के कुसुमलताध्याय, वृक्षायुर्वेदाध्याय और दकार्गलाध्याय का भी पर्याप्त उपयोग हुआ। जहाँ कहीं पाठांतर था, वह साथ ही दे दिया गया है। दुरुहताओं से बचने के लिए शब्ददोष, पाठभेदादि को कोष्ठक में तथा पाद टिप्पणियों के रूप में दिया गया है।

अथ वृक्षायुर्वेदः।

श्रीगणेशाय नमः।

अथ मङ्गलाचरणम्-

पुंसांसर्व्वसुखैक साधन कंथा (:) सौन्दर्यगर्वोद्धुर-
क्रीडालोल विलासिनी जनमनः स्फीतप्रमोदवहाः।
गुञ्जद्भृङ्गविनिद्रपङ्कजभरस्फारोल्लसद्दीर्घिका-
युक्ताः सन्ति गृहेषु यस्य विपुलारामाः स पृथ्वीपतिः॥ १॥

सर्वप्रथम गणेशजी को नमस्कार। वही पृथ्वी का स्वामी कहलाने योग्य है कि जिसके राजगृह में विस्तृत, सुंदर वाटिकाएं विद्यमान हों जहां पर जन सामान्य को सभी प्रकार से प्रसन्नता की प्राप्ति होती हो और जहां पर अपरिमित आनंद व उल्लास-विलास की अनुभूति व अनुरञ्जन सुलभ होता हो। यही नहीं, वहाँ सुंदर जलराशि वाली दीर्घिकाएं-पुष्करणियाँ भी हों जिनकी जलराशि पर विकसित कमलपुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार करते हों।

नवं वयो हारि वपुर्व्व(व ?)राङ्गनाः
सखा कलावित्कलवल्लकीस्वनः।
धनं हि (? वनानि) सर्व्वं विफलं सुखैषिणो
विना विहारोपवनानि भूपतेः॥ २॥

कोई भी पृथ्वीपति अपनी युवावय, सुन्दरयष्टि, सौंदर्य की खान रमणियाँ, कुशल मित्र, राग-रंगादि से कितना ही समृद्ध हो किंतु ये सब सुख विफल हैं यदि उसके पास कोई योग्य उद्यान-विहार (जैसी संपदा) नहीं हो। इसीलिए उद्यान का जीवन में महत्व समझना चाहिए।

एवं स्वग्रंथकरणे निर्दोषतां प्रतिष्ठाय सकलमुनिनिबद्धशास्त्र-
संग्रहकरणहेतुं दर्शयितुमाह-

शास्त्राणि तावदव(वे ?)लोक्या मया मुनीना-
नामर्थः स एव गदितः परमात्मयुक्त्या (परमात्म ?)।
एवं (एनं ?) विलोक्य लिखित (निखिलं ?) च विचारयन्तः
संतः स्वभावसरला मुदमामुवन्तु (मुदमाप्नुवन्तु ?)॥ ३॥

अपने पूर्ववर्ती अनके मुनियों द्वारा विरचित शास्त्रों का भली-भाँति अवलोकन कर, उनके मत-सम्मत पर विचार कर, परमात्मा को प्रणाम करता हुआ मैं (रचनाकार सुरपाल) इस ग्रंथ का प्रणयन कर रहा हूँ। इसमें मेरे अपने अनुभव भी हैं। गुणग्राही, संत स्वभावी, सज्जन मेरे इस रचनात्मक कार्य को देखकर आनंदित होंगे।

अथादौ तरु महिमा-

बहुभिर्वत (बहुभिः ?) किंवेन (किं) जातै (पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः)।

वरमेकः पथि तरुर्यत्र विश्रमेते (विश्रम्यते ?) जनैः ॥ ४॥

अरण्य में कई पेड़ हैं तो क्या हुआ, कई पुत्र हो और धर्म व अर्थ की प्राप्ति के लिए साधना न करते हो तो क्या अर्थ है किंतु यदि एक अकेला वृक्ष भी यदि मार्ग में खड़ा है तो वह कई क्लांत पथिकों को छाया देता हुआ विश्राम का सुख देता है (और अपना जीवन सार्थक करता है)।

वृक्षारोपण को अग्निहोत्रकर्म से भी महत्वपूर्ण कहा गया है- न तत्करोत्यग्निहोत्रो न पुत्रा योषितोद्भवाः। यत्करोति घनच्छाया पादपाः पथि रोपिताः॥ बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् ७६, २१, वराहमिहिर ने राजपथ पर कूपयुक्त उद्यान को पुण्यप्रद कहा है- यो वाटिकां राजपथः समीपे सुष्ठां तथा कूपसमन्वितां च। स्वर्गे च वासं लभते मनुष्यश्चतुर्युगं सर्वसुखैरुपेतः॥ (बृहत्संहिता ५५, ६)

अन्यदप्याह-

वरं भूमिरुहाः पञ्च नतु कोष्ठरुहा दशः।

पत्रैः पुष्पैः फलैः स्तोयैः (? मूलैः) कुर्व्वन्ति पितृतर्प्पणं॥ ५ ॥

पाँच पेड़ों का रोपण दस भवन बनाने की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं क्योंकि वृक्ष के पत्र, पुष्प फल और मूल में पितरों का तर्पण होता है।

वराहपुराण में स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार सुपुत्र अपने कुल का उद्धार कर देता है तथा प्रयत्नपूर्वक नियम से किया गया अतिकृच्छ्र व्रत उद्धारक होता है, वैसे ही फलों व फूलों से सम्पन्न वृक्ष अपने स्वामी का नरक से उद्धार कर देते हैं। (अ. १७२, ४०)

अन्यदप्याह-

दशकूप समा वापी दशवापी समो ह्रदः।

दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥ ६ ॥

दस कूप एक वापिका के तुल्य होते हैं। दस वापियाँ एक ह्रद या झील के बराबर होती हैं। दस झीलें एक पुत्र के बराबर स्वीकारी जाती हैं और दस पुत्र एक वृक्ष के

समतुल्य स्वीकारने चाहिए। अर्थात् एक पेड़ का रोपण-पोषण दस पुत्रों के समतुल्य होता है।

मत्स्यपुराण का भी यही मत है- दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥ एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी॥(१५४, ५१२)

अन्यदप्याह-

क्रीडारामं तु यः कुर्यादुद्दामफलसंकुलम्(संयुतम्)।
देवकव्याप्सरो यक्ष (स गच्छेच्छंकरपुरं) वसेत्तत्र युगत्रयं॥ ७॥

क्रीड़ाराम या उद्यान को लगाने और वहाँ पर फलों वाले वृक्षों का संकुल तैयार करने वाला देव, अप्सरा व यक्षों के लोक को प्राप्त होता है तथा वहाँ पर तीन युग तक निवास करता है।

अन्यदप्याह-

एतत्सर्वं (सत्यं ?) परिज्ञाय वृक्षारोपम् समारभेत्।
धर्मा-र्थ-काम-मोक्षाणां द्रुमेभ्यः साधनं यतः॥ ८॥

वृक्षारोपण के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि पौधों को लगाना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है और यह पुरुषार्थ चतुष्टय ही जीवन का लक्ष्य है।

वराहपुराण में कहा गया है कि बाग-बगीचे लगाना परमधर्म है। इससे आश्चर्यमय महान् फल की प्राप्ति होती है। (अ. १७३)

तुलसी माहात्म्य-

यावद्दिनानि तुलसी रोपितापि (यद्)गृहे वसेत्।
तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे स महीयते॥ ९॥

वह व्यक्ति कई सहस्रवर्षों तक वैकुण्ठ में निवास करता है जो कि अपने निवास गृह में तुलसी के पौधे को उगाता है।

तुलसीद्रुम रोपण का यही माहात्म्य पद्म और गरुडपुराणादि में भी मिलता है वराहपुराण में गन्धपत्र शब्द आया है और वैशाख व कार्तिक मास में इससे विष्णुपूजा को सुफलदायक कहा गया है- भगवन्नाज्ञापय! इमं बहुतरं नित्यं वैशाखं चैव कार्तिकम्। गृहाण गन्धपत्राणि धर्ममेवं प्रवर्धय॥ नमो नारायणेत्युक्त्वा गन्धपत्रं प्रदापयेत्॥ (१२३, ३६-३७)

बिल्वप्रशंसा-

यस्तु संरोपयेद्बिल्वं शङ्कर प्रीतिकारकम् (प्रीतिकारत्क ?)।
तत्कुलेऽपि सदा (विला ?) लक्ष्मीः संतिष्टेत्पुत्रपौत्रिकी॥ १०॥

यदि कोई व्यक्ति अपने गृह में बिल्व का वृक्ष लगाता है तो वह शिव का सान्निध्य प्राप्त करता है और वैभव की अधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी वहाँ स्थायी रूप से निवास करती है। वहाँ पुत्र-पौत्रादि की निरन्तर अभिवृद्धि होती है।

ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त में लक्ष्मी से ही बिल्व की उत्पत्ति बताई गई है- वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः। ६ तथा वामनपुराण में बिल्व में लक्ष्मी का निवास कहा गया है- बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत्। १७, ८, भविष्यपुराण में कहा गया है कि देवासुर संग्राम में लक्ष्मी ने कुछ देर के लिए बिल्व के वृक्ष पर आश्रय लिया था। इसी कारण बिल्व को श्रीवृक्ष भी कहा गया है और उसकी पूजा के लिए यह मन्त्र दिया गया है- श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ। ममाभिलषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव॥ उत्तरपर्व ६०,६ आगे इसी पुराण में गोमय से बिल्व की उत्पत्ति बताई गई है और उसमे लक्ष्मी का निवास कहा गया है- गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः। तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः। बीजान्युत्पलपद्मानां पुनर्जातानि गोमयात्॥ गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका। गोमूत्राद् गुग्गुलुर्जातः सुगन्धिः प्रियदर्शनः। आहारसर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः॥ (उत्तरपर्व ६९, २०-२२)

अथाश्वत्थप्रशंसा-

एकमेव हि योऽश्वत्थं (योत्रच्छं ?) रोपयेद्विधिना नरः।
यत्र कुत्रापि वा स्थाने (छाणे ?) गच्छेत्स भवनं (छेदुवनं) हरेः॥ ११॥

जो कोई व्यक्ति विधिपूर्वक अश्वत्थ अथवा पीपल का पेड़ लगाता है, वह परलोक गमन पर श्रीहरि या विष्णु की सन्निधि प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए वृक्षों में अश्वत्थ को अपना स्वरूप बताया है-अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणा च नारदः। (१०,२६)

धात्रीप्रशंसा-

तेनेष्टा वहवो यज्ञास्तेन दत्ता वसुन्धराः।
स सदा ब्रह्मचारी स्याद्येन (स्याव्वेन ?) धात्री प्ररोपितः॥ १२॥

वह व्यक्ति जीवन में ब्रह्मचारी का व्रत और भूमिदान का फल प्राप्त करता है जो कि धात्री के वृक्ष का रोपण करता है।

वटप्रशंसा-

वटवृक्षद्वयं मर्त्यो रोपयेद्यो यथाविधि (: ?)।
शिवलोके गमेत्सोऽपि (वसेत्सोपि) सेवितस्त्वप्सरोगणैः॥ १३॥

जो कोई दो वट वृक्षों को यथाविधि लगाता है, वह अंतकाल में शिवलोक में निवास करता है और अप्सरा, उरादि गणों से सेवित होता है।

अथ निम्ब:

निम्ब (निव ?)त्रयं समारोप्य नरो धर्म्मविचक्षण:।

सूर्यलोकं समासाद्य वसेदब्दायुत त्रयम्॥ १४॥

जो धार्मिक और विचक्षण व्यक्ति नीम के तीन वृक्षों को लगाता है, वह अंत में सूर्यलोक को प्राप्त करता है और तीन देव संवत्सर पर्यंत वहीं पर निवास करता है।

प्लक्ष:

चतुर्णां प्लक्षवृक्षाणां रोपणान्नात्र संशय:।

राजसूयस्य यज्ञ (जज्ञ ?)स्य फलं प्राप्नोति मानव:॥ १५॥

चार प्लक्ष या पाकड़ (पारस पीपल) के पेड़ों को लगाने वाला व्यक्ति राजसूय यज्ञ का फल-पुण्य प्राप्त करता है।

अथाम्र:

पञ्चाम्रशाखिणाम् षण्णां य: कुर्यात्प्रतिरोपणं।*

गारुडं लोकमा (र्मो ?)साद्य मोदते देववत्सदा॥ १६॥

जो कोई पाँच या छह आम्र (तथा शिरीष या सरस) के वृक्षों को लगाता है, वह भूतोन्भविष्यते देवताओं के साथ प्रसन्न रहता है और गरुडलोक को प्राप्त करता है।

पलाशप्रशंसा-

पलाशशाखिन: सप्त रोपयेदेकमेव वा।

ब्रह्मलोकमवाप्नोति मोदते (पूज्यते ?) चामरै: सह (चामरोत्तम:) ॥ १७॥

जो पलाश या केसूला के सात पेड़ों को रोपता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और वहाँ देवताओं के साथ प्रसन्नता पाता है।

अथौदुम्बर:

उदुम्बरद्रुमानष्टौ रोपयेत्स्वयमेव य:।

प्रेरये (र्पलये ?)द्रोपणायापि चन्द्रलोके स मोदते॥ १८॥

---

*(*पाठान्तर- पञ्चाम्रन्रोपयेद्यतु मार्गेषूपवनेषु च।*
भूतान्भविष्यान्पुरुषांस्तारयेत्स चतुर्दश॥
शिरीषशाखिनाम् षण्णा य: कुर्यात्प्रतिरोपणम्।)

उदुम्बर या गूलर के आठ वृक्षों का रोपण करने वाला चंद्रलोक को प्राप्त करता है और वहाँ प्रसन्नता पाता है।

मधुकः

पार्वती तोषिता तेन स भवेच्च निरामयः।
पूजिता देवता(:) सर्वा (सर्व्वे ?) मधूको येन रोपितः ॥ १९ ॥

जो मधुक या महुआ के पेड़ों को लगाता है वह पार्वती को संतुष्ट करता है तथा नित्य निरामय हो जाता है। देवता भी उसका आदर करते हैं।

क्षिरीणीदाडिमीरम्भादीनां-

क्षीरिणी-दाडिमी-रम्भा-प्रियाल-पनसान्विलाश।*
तरुन्संरोप्य (नो) दुःखी जायते सप्तजन्मसु॥ २० ॥

खिरनी, दाड़िम, रम्भा या केला, (द्राक्षा), पुआल तथा पनस का रोपण करने वाले व्यक्ति को सात जंन्म पर्यंत दुःख का अनुभव नहीं होता है।

भविष्यपुराण में कदली का माहात्म्य उसके पूजा के मन्त्र में इस प्रकार बताया गया है- चित्या त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनि। शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥ (उत्तरपर्व १२,७)

जम्बूः

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि जंबूर्येन (जंवृयेन ?) प्ररोपितः।
गृहेपि स वसन्नित्यं यति (मंति ?) धर्म्मेण पूज्यते॥ २१ ॥

कोई व्यक्ति यदि अनजाने ही जामुन के वृक्ष का रोपण कर देता है तो वह एकान्तिक (यति) रूप में धर्म का लाभ प्राप्त करता है।

अन्यान्यद्रुमाः

अन्यान्सर्व्व (अन्यान्य, अन्यानपि ?) तरून्नोप्य फल-पुष्पोपयोगिनः।
रत्नधेनुसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ २२ ॥

सभी प्रकार के उपयोगी फलों और फूलों वाले पेड़ों के रोपण से व्यक्ति को रत्नधेनु अथवा आभूषणों से मण्डित सहस्त्र गायों के दान से जो फल-पुण्य मिलता है, वही फल सुलभ होता है।

(*पाठा.-क्षीरिका-कदली-द्राक्षा-प्रियाल-पनसान्वितान्)

वृक्षारोपणफलं-

अश्वत्थमेकं (अश्वस्पामेकं ?) पिचुमन्दमेकं
न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिनीकम् (चिञ्चिणीकं)।
कपित्थ-बिल्वा-मलक(ी)त्रयञ्च
पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् (पश्चेत्)॥ २३ ॥

इति तरु महिमा।

एक अश्वत्थ, एक नीम, एक न्यग्रोध या बरगद, दस चिञ्चिनीक या इमली के पेड़ लगाने से और कैथ, बिल्व व आँवला के तीन-तीन तथा पाँच पेड़ आम के लगाने से मनुष्य कभी भी नरक का मुँह नहीं देखता है।

यह श्लोक 'पञ्चाम्ररोपी नरकं न पश्येत्' इस अत्यल्प पाठांतर के साथ भविष्यपुराण के उत्तरपर्व में १२८, ११ है। वराहपुराण में एक पीपल अथवा नीम, एक बड़, दस फूल वाले वृक्ष, दो अनार, दो नारङ्गी और पाँच आम्र के वृक्षों के रोपण का निर्देश है- अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः। द्वे-द्वे तथा दाडिममातुलुङ्गे पञ्चाम्ररोपी नरकं न याति॥ १७२, ३९ यही श्लोक स्कन्दपुराण चातुर्मास माहात्म्य २०, ४९ तथा बृहत्पाराशरस्मृति १०, ३७९ में भी मिलता है।

अथ निवासासन्नतरुशुभाशुभलक्षणानि-

गृहस्य पूर्वदिग्भागे न्यग्रोधः सर्व्वकामिकः।
उदुम्बर (त्रदंवर)स्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः॥ २४॥

(अब आवासगृह के समीप लगाए जाने वाले द्रुमों पर विचार किया जा रहा है कि) अपने गृह पूर्व में न्यग्रोध का वृक्ष लगाने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी प्रकार दक्षिण में उदुम्बर और पश्चिम में पीपल का पेड़ शुभकारक होता है।

बृहत्संहिता में वराहमिहिर का मत है- याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते। उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः॥ (५२, ८५)

दिग्विभागेन वृक्षारोपणप्रकारः

प्लक्षोत्तरतो वन्यो (धन्यो ?) विपरीतांस्तु वर्ज्जयेत्॥ २५॥

प्लक्ष का वृक्ष गृह के उत्तर में लगाया जाना चाहिए। इसके विपरीत इन वृक्षों को अन्य दिशाओं में नहीं लगाना चाहिए।

यहाँ महर्षि गर्ग का मत विचारणीय है- वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा। न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्॥ अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्।

न्यग्रोधे राजतः पीडा नेत्रामयमुदुम्बरे ॥ वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद्दक्षिणे चाप्युदुम्बरम् । अश्वत्थः पश्चिमे भागे प्लक्षस्तूत्तरतो भवेत् ॥ (सविवृत्तिबृहत्संहिता ५२, ८३)

अन्यदपि-

वर्ज्जयेत्पूव्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतो गृहात् (गृहे ?) ।

पश्चिमे चैव न्य(ो ?)ग्रोधं तथोदुम्बरमुत्तरे ॥ २६ ॥

अश्वत्थ के वृक्ष को गृह के पूर्व में नहीं लगाएं। प्लक्ष या पाकड़ को दक्षिण, न्यग्रोध या वट को पश्चिम एवं उदुम्बर को भवन के उत्तर में रोपना निषिद्ध है।

राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् में सूत्रधार मण्डन का मत है- दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि विटपो नोच्छिद्यते शक्तितः स्तद्विल्वीं च शमीमशोकबकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ । द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं सौम्यादेः शुभदौ कपीतनवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ॥ १, ३०, मतांतर यह भी है- प्लक्षोत्तरे प्रशस्त वटः पूर्वे च शोभनः । उदुम्बरस्तथा याम्ये पिप्पलो वारुणे तथा ॥

तथा चोक्तम्-

देव-दानव-गंधर्व्वाः पिशाचो(किन्नरो)-रग-रांक्षसाः ।

पशु-पक्षि-मनुष्याश्च(श्च ?) संश्रयन्ति सदा तरून् ॥ २७ ॥

वृक्ष सदा से ही देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच (किन्नर), उरग, राक्षस, पशु-पक्षी और मानव समुदाय के आश्रय के केंद्र रहे हैं।

बृहद्वास्तुमालाकार का मत है— अश्वत्थं च कदम्बं च कदली बीजपूरकम् । गृहे यस्य प्ररोहन्ति स गृही न प्ररोहति ॥ सर्वत्र पनसः शस्तो दक्षिणे सकलाः खलाः । वृक्षानारोपयेदेवं स सदा सुखभाग्भवेत् ॥ (वा.रो.वि. २१-२२)

गृहसमीपे त्याज्यवृक्षाः

सर्व्वेषां (? सर्व्वासां) वृक्षजातीनां छाया वर्ज्या (वर्ज्या ?) गृहे सदा ।

अपि सौवर्णिकं वृक्षं गृहद्वारे न रोपयेत् ॥ २८ ॥

अपने आवास पर किसी भी वृक्ष की छाया नहीं पड़नी चाहिए। अपने भवन के द्वार के आगे स्वर्ण आभा वाले या पीले फूलों वाले वृक्षों का रोपण निषिद्ध होता है।

मण्डन भी यही मत है- यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजाच्छाया न शस्ता गृहे । राजवल्लभ. १, २८ और- प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्य वर्ज्याः कलधौतपुष्पाः ॥ (१, २९)

बदरीकदली चेव दाडिमी बी(नी ?)जपूरकम्।

प्ररोहति गृहे यस्य तद्गृहं न प्ररोहति॥ २९॥

अपने गृह परिसर में बेर, केला, दाड़िम, बीजपूरक या बिजोरा निंबू आदि का कभी रोपण नहीं करना चाहिए।

राजवल्लभ. का मत है– वृक्षाः क्षीरसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः। (१, २८)

एरण्डो (पलाशाः ?) काञ्चनारश्चत्था श्लेषमांतकार्जुनाः।

करञ्जश्चेत्यमी वृक्षा(: ?) न रोप्याः (राप्याः ?) सुखिनो गृहे॥ ३०॥

व्यक्ति को अपने आवासीय परिसर में एरण्ड (पलाश), कचनार, अश्वत्थ, श्लेष्मान्तक या लिसोड़ा, अर्जुन, करञ्ज आदि के पेड़ों को नहीं लगाना चाहिए। ये सुखद नहीं होते।

अधुनाऽरिष्टवृक्षद्वारेण गृहाणां पथिकान् वृक्षानाह–

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः

क्षी(की ?)रिणोऽर्थनाशाय।

फलिनः (कविनः ?) प्रजा (प्रज्ञा ?)

क्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम् (वर्जयेत्तेषाम् ?)॥ ३१॥

गृह निर्माणादि के निमित्त काँटों वाले और दूध वाले वृक्षों का काष्ठ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। काँटेदार वृक्षों से अर्थनाश होता है और फलवाले वृक्षों के काष्ठ के प्रयोग से प्रजाक्षय होता है।

यह श्लोक बृहत्संहिता ५२, ८६ है। राजवल्लभ. में भी कहा गया है– सदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्। १, २९ बृहत्संहिता में कहा गया है– छिन्द्याद्यदि न तरूँस्तान् तदन्तरे पूजितान् वपेदन्यान्। पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान् शमीशालौ॥ (५२, ८७)

अन्यद् गृहे शुभफलं सन्निवेशवशेनाह–

नीलीं हरिद्रां च नरः सदोप्त्वा (सदोप्रा ?)

पुत्रर्धनैश्च (पुत्रैधनिश्च ?) क्षयमभ्युपेयात्।

एतास्तु सर्व्वाः स्व(व ?)यमेव जाताश्छिन्द्या-

दृषीणां वचनाद्विधिज्ञः॥ ३२॥

नीली व हरिद्रा के द्रुमों के गृह में रोपण से पुत्र, धनादि का क्षय होता है। यदि ये स्वयंमेव भी लग जाते हों तो भी हानिकारक होते हैं, ऐसा महापुरुषों का मत है।

सविवृत्तिबृहत्संहिता में चैत्यवृक्ष का परिणाम बृहस्पति एवं पुराण मत से दिया गया है— चैत्यवृक्षेषु भूतेभ्यः कृच्छावासः पुरा भयम्। अरतिस्त्वभिवर्धेत निर्विष्टैः कण्टकिद्रुमैः॥ मन्दरस्य गिरः श‍ृङ्गे महावृक्षः स केतुराट्। आलम्बशाखाशिखरः कदम्बश्चैत्यपादपः॥ (५२, ८८)

अथ वाटिकाविधौ-

न कुर्युर्याम्यनैर्ऋत्या(मा ?)ग्नेयेष्वपि (येष्ठवपि हि) वाटिकाम्।

अन्यथा कलहोद्वेगौ कष्टं वा ल(भ)ते कृत (भृशम् ?)॥ ३३॥

आवास के दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम या नैर्ऋत्यकोण एवं ईशान कोण में वाटिका नहीं बनानी चाहिए। इससे कलह, उद्वेग तथा कष्ट होता है।

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् में कहा गया है— आग्नेय्यां दक्षिणे वापि नैर्ऋत्ये वायुकोणके॥ धनपुत्रादिहानिश्च परलोकेऽपकीर्तिषु। हठान्मोहात्प्रमादाद्वा यदि कुर्याद्विशेषतः॥ तदा मृत्युमवाप्नोति नात्र सन्देहकारणात्। जातिभ्रष्टो दुराचारो विविधात्पुण्यकर्मणः॥ ७६, ४-६, बृहद्वास्तुमालाकार का कथन है- याम्यानैर्ऋत्ययोर्मध्ये तथा जम्बुकदम्बकौ। पनसश्च तथाम्रश्च प्रशस्तौ शम्भुपूर्वयोः॥ वाटिकायाः वहिः पूर्वे रोपयेद्वंशवृक्षकम्। उत्तरे च शमी वाह्ये पश्चिमे खदिरो वहिः॥ दक्षिणे वकुलो वाह्येऽरिष्टनाशाय केवलम्। आम्राणां वाटिका चैव द्वितीयाश्वत्थवाटिका॥ तृतीया वटवृक्षाणां चतुर्थी प्लक्षवाटिका। पञ्चमी निम्बवृक्षाणां षष्ठि जम्बुकवाटिका॥ चिञ्चिणीवृक्षसंभूता सप्तमी परिकीर्तिता। एतासां वाटिकानाञ्च प्रशस्ता चाम्रवाटिका॥ फलदा पुण्यदा चैव पापं संहरते ध्रुवम्। यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि रोपितः॥ न तत्करोत्यग्निहोत्रं न पुत्रा योषितोद्भवाः अतः सर्वगुणोपेतान् वृक्षानारोपयेत् सुधीः॥ (वा.रो.वि. २६-३२)

वाटिकादिरोपणमाहात्म्यम्-

तस्माद्राज्ञां हि शुभदं पुत्रसंतति (? संनिधि)वर्धनम्।

पश्चिमोत्तर पूर्व्वेषु भवेदुपवनं हितम् (कृतम् ?)॥ ३४॥

इति शुभाशुभ लक्षणानि।

गृह के पश्चिम, उत्तर तथा पूर्व में वाटिका लगाना श्रेष्ठ होता है। यह राजाओं के लिए भी सुखद है, इससे पुत्र, संपति की वृद्धि होती है।

बृहद्वास्तुमाला में माहात्म्य इस प्रकार है— वाटिका वा तडागो वा कूपो वा यदि निर्मितः। गृहात्पूर्वे कुवेर्यां च वारुणे शम्भुकोणके॥ सदा गायत्री भविता सदा दानं प्रयच्छति। सर्वदा सिद्धिमाप्नोति कर्ता चेष्टफलं लभेत्॥ (वाटिकादिरोपणविचार १५-१६ पृष्ठ ११५ तथा बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् ७६, १-२)

अथ भूमिनिरूपणम्-

जाङ्गलांऽनूपसामान्यस्वभावापि च मेदिनी।
भेदैः साभिद्यते य षड्भिर्वर्णतो (पद्भिर्वर्णतो ?) रसतस्तथा। ३५॥

(अब वृक्षारोपण योग्य भूमि के भेदों पर विचार किया जा रहा है) भूमि के तीन प्रकार हैं— जाङ्गल, आनूप और सामान्य। वर्ण तथा रस के आधार पर इसके छह भेद हो सकते हैं।

वर्णानुसारेमेदिनीं-

असितविपाण्डु(श्वेत ?)श्यामललोहितसितपीततोचि(वि)षः क्रमशः।
मधुरोम्ललवणतिक्तक(क)टुककषाया भुवो रसतः॥ ३६॥

रंग अथवा वर्णानुसार भूमि क्रमशः १. काली, २. पाण्डु, ३. श्यामला, ४. लोहित, ५. श्वेत एवं ६. पीली होती है। इसी प्रकार स्वाद के अनुसार भी इसके निम्न छह भेद होते हैं- १. मधुर, २. अम्लीय, ३. लवणीय, ४. तिक्त, ५. कटु तथा ६. कषाय।

मयमतम् में गृहयोग्य भूमि की परीक्षा भी इसी प्रकार बताई गई है- वर्णगन्धरसाकारदिक्शब्दस्पर्शनैरपि। परीक्ष्यैवं यथायोग्यं गृहीतावधिनिश्चिता॥ या सा भूमिरिति ख्याता वर्णानां च विशेषतः। द्विविधं तत् समुद्दिष्टं गौणमङ्गीत्यनुक्रमात्॥ (२, ४-५)

दुष्टभूमिः

विष-पाषाण-वल्मीक-बिल-दुष्टा तथोषरा।
दूरोदका शर्करिला तरुभ्यो न हिता मही॥ ३७॥

विषैले तत्त्वों से युक्त भूमि, पथरीली, दीमक वाली, छिद्रवाली, दुष्टभूमि, उसर, दर्दुरा तथा रेतीली भूमि वृक्षारोपण के लिए प्रशस्त नहीं मानी जाती है।

मय का कहना है— श्वेतासृक्पीतकृष्णा हयगजनिनदा षड्रसा चैकवर्णा। गोधान्याम्भोजगन्धोपलतुषरहिता वाक्यप्रतीच्युन्नता या। पूर्वोदग्वारिसारा वरसुरभिसमा शूलहीनास्थिवर्ज्या सा भूमिः सर्वयोग्या कणदररहिता सम्मताद्यैर्मुनीन्द्रैः॥ (३, २०)

प्रशस्तभूमिः

इन्द्रनील-शुकपक्षकोमला
शङ्खकुन्दकुमुदेन्दु सन्निभा।
तप्तकाञ्चनविकासि(शि ?)चम्प(य ?)क-
स्पर्द्धिनी वसुमती प्रशस्यते॥ ३८॥

इन्द्रनील के समान, सुआ के पंखों जैसी कोमल, कौञ्च की भाँति सफेद, कुन्द,

कुमुद जैसी आभावाली अथवा चंद्रमा जैसी आभायुक्त, पीली या तप्त स्वर्ण जैसी सुर्ख व चम्पक जैसी मिट्टी वृक्षा रोपण के लिए प्रशस्त होती है।

मय ने वृक्षों के आधार पर आवासीय भूमि के लक्षण इस प्रकार दिए हैं- प्राङ्गनिम्नं तत् प्रविस्तीर्णमश्वत्थद्रमसंयुतम्। प्रशस्तं भूभृतां वस्तु सर्वसंपत्करं सदा॥ षडंशेनाधिकायामं पीतमम्लरसान्वितम्। प्लक्षद्रुमयुतं पूर्वावनतं शुभदं विशाम्॥ चतुरंशाधिकायामं वस्तु प्राक्प्रवणान्वितम्। कृष्णं तत् कटुकरसं न्यग्रोधद्रुमसंयुतम्॥ (२, १२-१४)

अन्यदप्याह-

समा समासन्नजला हरित्तरुतृणाङ्कुरा।
तस्यां सर्व्वे यथास्थानं प्ररोहंति महीरुहाः॥ ३९॥

समतल, जलवाली, हरियाली से आच्छादित रहने वाली और तरु व तृणादि से युक्त भूमि सभी दृष्टियों से वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त होती है।

अन्यदप्याह-

न जाङ्गला न चानूपा (वानूपा ?) भूमिः साधारणा शुभा।
तस्यां सर्व्वेपि तरवः प्ररोहन्ति न संशयः (सशयः ?)॥ ४०॥

न जाङ्गल, न ही अनूप भूमि वृक्षारोपण के लिए उचित है बल्कि साधारण भूमि सभी प्रकार के पेड़ों, सस्य के लिए उचित कही जाती है। इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिए।

अथानूपायोग्यद्रुमाः

पनस-लकुच-ताली-वंश-जम्बीर-जम्बू-
तिलक-वट-कदम्बाम्रात-खर्जूर-पूगाः (पूराः ?)।
कदलि-तिनिश-मृद्वी-केतकी-नालिकेनी (नालिकेर ?)
प्रभृतय इति चान्ये प्रायशोनूपजाः स्युः॥ ४१॥

अब अनूप प्रदेश में किस प्रकार के पेड़ों को लगाया जाना चाहिए, बताया जा रहा है- पनस, लकुच, ताल, बाँस, जम्बीर, जामुन, तिलक, वट, कदम्ब, आम्र, खर्जूर, कदली, पुग, तिनिश, मृद्वी, केतकी, नारियल आदि वृक्ष अनूप भूमि के योग्य है।

जाङ्गलायोग्यद्रुमाः

शोभाञ्जन (सोभाञ्जन ?) श्रीफलसप्तपर्णाः
शेफालिका (सेफालिका ?) शमीकरीराः।

कर्कंधुकाकेसरनिम्बशोका वृद्धिं

लभन्ते भुवि जाङ्गलायाम्॥ ४२॥

शोभाञ्जन, श्रीफल, सप्तपर्णा, शेफालिका, शमी या खेजड़ी, करीर, कर्कन्दु, केसर, नीम व अशोक आदि के पेड़ जाङ्गलभूमि में शीघ्र वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

साधारणभूमियोग्यद्रुमाः

बीजपूरक-पुंनाग-चम्पका-म्रातिमुक्तकाः।

प्रियङ्गु-दाडिमाद्याश्च साधारणसमुद्भवाः॥ ४३॥

बीजपूर, पुन्नाग, चम्पा, आम, अतिमुक्तक, प्रियङ्गु, दाड़िम आदि वृक्ष साधारण भूमि पर शीघ्र उत्पन्न होकर पनप जाते हैं।

अन्यदप्याह-

निधिदेवमहीपानां प्रभावाच्चातियत्नतः।

असात्म्यभूमिसम्पन्ना अपि सिध्यन्ति पादपाः॥ ४४॥

इति भूमिनिरूपणम्।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अर्थ व्यय का सामर्थ्य, नियति और नृपैच्छा या लगाने वाले की इच्छा बलवान हो तो किसी भी प्रजाति के पेड़ को कहीं पर भी विशेष, आवश्यक सुविधा प्रदान कर पनपाया जा सकता है।

अथ पादपविवक्षा-

वनस्पतिद्रुमलतागुल्माः पादपजातयः।

बीजात्काण्डात्तथा कन्दात्तद्भपनं(ज्जन्म ?) त्रिविधं मतं (विदुः ?)॥ ४५॥

अब पादपों के विस्तार पर विचार किया जा रहा है। वनस्पति, द्रुम, लता तथा गुल्म- ये पेड़ों के चार प्रकार हैं। बीज, काण्ड, दण्डी या डण्ठल, कन्द का प्रयोगकर उनको उगाया जा सकता है। इनके रोपण के तीन प्रकार कहे गए हैं।

पादपभेदाः

ते वनस्पतयः प्रोक्ता विना पुष्पैः फलन्ति ये।

द्रुमाश्च (द्रुमाश्व ?) ते निगदिताः *सह पुष्पैः फलन्ति ये॥ ४६॥

जो बिना फूल के फल धारण और प्रदान करते हैं, वे पादप 'वनस्पति' कहे जाते हैं और जो फूलों . ल देते हैं वे पादप 'द्रुम' नाम से जाने गए हैं।

---

*(*पाठोतर-पुष्पैः सहफलन्ति ये)*

अन्यदप्याह-

प्रसरन्ति प्रता(घ ?)नैर्यास्ता लता: परिकीर्तिता: ।
बहुस्तम्वा विटपिनो (पिविटपीस्ते ?) ये ते गुल्मा: प्रकीर्तिता: ॥ ४७ ॥

जो किसी प्रतान या सहारे के फैलते या प्रसारित होते हैं, उनका नामाभिधान 'लता' है। जो लघु किंतु जिनमें बहुशाखाएं होती है, उनको 'गुल्म' नाम से जाना जाता है। गुल्म को झाड़ी भी कहते हैं।

बीजकाण्डोद्भवादीनां-

जम्बू-चम्पक-पुंनाग-ना(ता ?)गकेस(श ?)र-चिञ्चिणी ।
कपित्थ-वदरी-विल्व-कुम्भ(ा ?)कारी-प्रियङ्गवः ॥ ४८ ॥
पनसा-म्रमधूकाद्या करमर्द्दाश्च(घ ?) बीजजा ।
ताम्बूली सिन्दुवारश्च तगराद्यास्तु (तगरौद्याश्च ?) काण्डजा: ॥ ४९ ॥

जामुन, चम्पक, पुन्नाग, नागकेसर, चिञ्चिणी, कपित्थ, बेर, बिल्व, कुंभकारी, प्रियङ्गु, पनस, मधुक, करमदा जैसे द्रुम बीज से उत्पन्न होने वाले हैं अत: इनको बीजोद्भवा कहा जाता है। ताम्बूल, सिंधुवार, तगर आदि काण्डजा या काण्ड को रोपित करने से उगने वाले होते हैं।

अन्यादप्याह-

पाटला-दाडिमी-प्लक्ष-करवीर-वटादय: ।
मल्लिकोदुम्बर: कुन्दो बीजकाण्डोद्भवा मता:(मभा: ?)॥ ५० ॥

पाटल, दाड़िम, प्लक्ष, करवीर या कनेर, वट, मल्लिका, उदुम्बर या गूलर, कुन्द आदि बीज के साथ-साथ काण्डजा या काण्ड से भी उत्पन्न हो जाने वाले माने गए हैं।

अन्यदप्याह-

कुङ्कुमा(? ककुभा)र्द्ररसोनालुकन्दा: कन्दसमुद्भवा: ।
एला(पला ?) पद्मोत्पलादीनि बीजकन्दोद्भवानि तु ॥ ५१ ॥

ककुभ, आर्द्रा, रसोना, आलुंकन्द आदि कन्दजा अथवा कन्द रोपित करने से पैदा होने वाले हैं। इलायची, पद्म, उत्पल आदि को बीज के साथ-साथ कन्द से भी उगाया जा सकता है।

अथ बीजोप्तिविधि: *-

**शार्ङ्गधर ने इसके बाद यह श्लोक दिया है- सम्यक्कृष्टे समे क्षेत्रे माषानुप्त्वा*

तिलांस्तथा। सुनिष्पन्नानपनयेत्तत्र बीजाप्ति रिष्यते॥ उपवनविनोद ५०, इसके अनुसार भूमि को समतल कर उन्नित रूप से तैयार करें तथा उसमें उड़द या तिल की बुवाई करें। जब वे उचित पक जाएं तो वहीं पर उन्हें हाँककर वृक्ष के बीज की बुवाई करना चाहिए।)

य(अ ?)थर्त्तुपक्वात्(यथात्तुपक्रात्?) फलतोविशोषिता-

द्वि (न्वि ?)कृष्यबीजं पयसा निषिच्यचा।

विशोषितं पञ्चदिनानि सर्प्पिषां

विडङ्गमिश्रेण च धूपयेत्ततः॥५२॥

फल जब प्राकृतिक रूप से पूर्णावधि लेकर पकने के बाद सूख जाए, तब उनसे बीज को प्राप्त करना चाहिए। इन पर दूध का छिड़काव कर पाँच दिन तक सूखने के लिए रख दें। इसके बाद बीज को सरसो मिश्रित विडङ्ग की धूप देनी चाहिए।

क्षीरनिषिक्तं बीजं बृहतीतिलभस्मसर्पिषां लिप्तम्।

गोमयमृदितमथोप्तं सद्यो जायेत धूपितं वसया॥५३॥

बीजोप्ति के लिए चाहिए कि बीजों पर दूध के छींटे देवें। फिर, बृहती, तिल, भस्म और सरसो से लिप्त करें। बीज को गोमय, मिट्टी में मलें और फिर कुछ काल के लिए वसा की धूप दें।

पयसि निषिक्तं बीजं गोमयपरिमर्द्दितं विशोष्य ततः।

माक्षिकं विडङ्गचूर्णैर्बहुशो मृदितं प्रजायते नूनं॥५४॥*

इसी प्रकार बीज पर दूध के छींटे देवें और गाय के गोबर में मल दें और शहद व विडङ्ग चूर्ण से उपचारित करें। इस प्रकार से उपचारित किया गया बीज अच्छी प्रकार से उगता है।

सोमेश्वर ने मानसोल्लास में बीजोपचार की प्रथम विधि इसी प्रकार बताई है- स्वभावपक्वफलितं निर्दोषं शुकमानयेत्। फलबीजं समालिप्तं गोमये दिनपञ्चकम्॥ विडङ्गघृतधूपेन धूपितं कारयेन्भवां। सवेषामेव वृक्षाणामेव बीजविधिः स्मृतः॥ (५,१,७ एवं ९)

अन्यदपि-

क्षीरेण भावितमनातपसाधुम्युष्क

सर्प्प-विमिश्रवृहलीतिनाभूत्या।

**शार्ङ्गधर ने इसके बाद यह श्लोक दिया है- जम्बूपनसचूतानां सरलं लकुचस्य च। क्षीरसिक्तं वपेद्बीजं घृतगोविड्वडङ्गवत्॥ (उपवनविनोद ५४)*

आलालितं प्रवरमे तदपि ब्रुवन्ति बीजं

विशुद्ध मतयो वपनाय (पवनाय ?) धीराः ॥ ५५ ॥

एक अन्य विधि के अनुसार बीज को दूध में भिगो लेवें और छाया में भली प्रकार सूख जाने दें। इस पर बृहती, तिल और नाल या कमलदण्ड का चूण्ड भुरकाकर यदि उगाएँ तो वह अच्छा परिणाम देता है, ऐसा धीरजनों ने कहा है।

माकन्द-जम्बु-पनसोद्भवमार्द्र मेव

सर्वोत्तमं सकल पूर्व विधानयुक्तं।

शुष्कं च पूर्व परिकर्म्मयुतं वरेण्यं स्या (त्)

क्षीरिकाबकुलयोहुरकूर्च्चिताग्रम् ॥ ५६ ॥

मकन्द, जामुन और पनस के बीज उपर्युक्त विधि से उपचारोपरान्त विशेष गुणयुक्त हो जाते हैं। खिरनी, बकुल के बीज भी अच्छे हो जाते हैं यदि उन्हें उक्त चरणों में उपचारित कर भली-भाँति सूखा लिया जाए और उनके शीर्ष को काटा या मोड़ दिया जाए।

सोमेश्वर ने दूसरी विधि में बीजों को दस दिनपर्यंत दूध में रखकर सुखाने एवं उनमें व्याघ्री, यव व गेहूँ की भस्म मिलाकर गोबर से सानने का निर्देश दिया है। क्षीरिका के बीज इस विधि से विशेष रूप से उपचारित किए जा सकते हैं- गोक्षीरभावितं बीजं दशरात्रं निरंतरम्। छायाशुष्कं च मिलितम् च व्याघ्रीसङ्कुलभस्मना॥ यवगोधूममिलितं गोमयेन प्रलेपितम्। स्थापत्येक्षीरवृक्षाणां द्विविधं बीजस्मृती॥ (वही ५, १, ९-१०)

अन्यदपि-

ऐर्व्वारु संभवमल्प गुडान्विताम्बु

सिक्तं त्र्यहं प्रवुरपत्रपुटी निबद्धं।

संस्थंतलेस तत् वह्नि निवेश

भूमेस्तमोद्गतं वपन योग्य दशामुपैति॥ ५७॥

उर्वारु या कुष्माण्ड के बीज बुवाई के लिए उपयुक्त हो जाते हैं जब पत्र पात्र में बाँधकर पर्याप्त गुड़ मिश्रित पानी का छिड़काव किया जाए तथा तीन दिन के लिए आग के द्वारा गर्मी पहुंचाकर उनको बाहर निकाल लिया जाए। इसी दशा में ये बीज उचित परिणाम देने वाले होते हैं।

उपचारफलं-

एवं विधेन विधिनापरि संस्थितानि बीजानि
सन्ति सकलान्यपि शोभना।
नितज्ज्ञाश्च नूनमचिरात्तरवो वहन्ति
पुष्पं फलं प्रचुरमुत्तमयमक्षवाद्या (यन्लमपक्षबाद्या ?) ॥ ५८ ॥

वे बीज जो इस प्रकार उपचारित और संरक्षित किए जाते हैं, वे बुवाई के लिए सर्वथा योग्य हो जाते हैं। ऐसे बीजों से उगाए गए वृक्ष सर्वदा, निर्बाध रूप से उत्तम गुणवत्ता वाले प्रचुर फूल एवं फल से लकदक रहते हैं।

बीजवपनकृत्यादीनां-

शुचिः स्नातो विभ्रद्वसनममलं पूजितेसुरो
गुरुं नत्वा दत्वा (हस्ता ?) वसु वसुमतीं वा गुणवते (वाणमुणयेत्)।
स्वयं बीजान्यादौ वपति कतिचिद्वास्तुपुरुषं
मनस्यन्त: (नमस्यन्त ?) कृत्वा तदनु परितोन्यः परिजनः ॥ ५९ ॥

वृक्षारोपण करने के इच्छुक जन को सर्वप्रथम स्नानादि से पवित्र होकर विमल वस्त्रों को धारण करना चाहिए। देवता की पूजा के साथ ही गुरु को नमस्कार करना चाहिए। अपने निर्देशकों को ससम्मान सम्पत्ति, भूमि आदि भेंट करनी चाहिए और भूमिदेवी (वास्तुपुरुष ?) को अभिवादन करने के बाद ही कुछ बीजों की स्वयं बुवाई करनी चाहिए तदोपरान्त परिजनों और अन्य जनों को बुवाई के कार्य में जुटना चाहिए।

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् में लतागुल्मादिरोपण के लिए निम्न मंत्र दिया गया है— ॐ वसुधेति च सीतेति पुण्यदेति धरेति च। नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोयं बर्द्धतामिति॥ (७६, ३२)

अन्यकृत्यादीनां-

बीजधानीं तृणास्तीर्णां (तृणास्तीणा ?) कृत्वां सिञ्च (सिचे ?)त्पयोम्बुना।
जाताङ्कुराश्च सलिलैर्न्निस्तृणां शोषमानये(त्) ॥ ६० ॥

बीजों को भूमि में डालने के बाद उस पर तृण-घास को बिखेर देना चाहिए। फिर दूधयुक्त पानी का छिड़काव करना चाहिए। जब वे अङ्कुरित होने को हों, तब पानी से सिंचाई आरंभ करनी चाहिए। इस दौरान घास की परत को हटाकर मृदा को सूखने देना चाहिए।

अथ रोपणविधानम्*-

---

*शार्ङ्गधर ने इसके बाद निम्न श्लोक विशेष दिए हैं- अथयाविहितानां यन्मनोज्ञतासंपदै न स्तः। कथयाम्यतस्तरूणां रोपविधानं यथोद्दिष्टम्। (उपवन. ५७ इत्यादौ...)

शुभतिथ्यादीनां-

शुक्लप्रतिपदापूर्णी पञ्चमी च तृ(नृ ?)योदशी।
तिथयो गुरुशुक्रेन्दूसौम्यानां वासराः स्मृता॥ ६१॥ 61

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि, पूर्णिमा, पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथियाँ और गुरुवार, बुध, शुक्र और सोमवार के दिवस वृक्षारोपण की दृष्टि से प्रशस्त कहे गए हैं।

अन्य योग हैं- गुरौ केंद्रे शुभे शुक्रे विधौ वारिणि वोदये। शुभयुक्तेक्षिते वन्धौ सद्वारे वा शुभोदये॥ वृहस्पति का मत है- सोमवारयुते मूले चापलग्ने मतान् द्रुमान्। स्थापयेज्जीव लग्ने च रेवत्यां गुरुवासरे॥ बृहद्वास्तुमालाप्रयोग पृष्ठ १२०, बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् में विभिन्न वृक्षों के रोपण के लिए पृथक्-पृथक् मुहूर्त दिए गए हैं। केला, सुपारी, नारियल, ताड़, गन्ना के वृक्ष और पौधे लगाने का मुहूर्त है— पुनर्वस्वोश्चतुर्थांशे जीवचन्द्रो यदोदितौ। तदावमोचनं कार्यं कदलीक्रमुकान् तथा। चित्रा तृतीयपादस्थे बुधलग्ने निवापयेत्। पूगाः पुनश्च तल्लग्ने स्थापिताः स्युर्महाफलम्॥ वृश्चिकांत्यांशगे चन्द्रे विलग्ने क्रमुकान् क्षिपेत्। महाधनैर्महाभोगैरेधते क्षेपकः श्रिया॥ घटस्थं पञ्चमे षष्ठे सिते लग्ने नियोजयेत्। बीजानि नालिकेराणां बहुसंख्याफलाय च॥ शुक्रे मीनान्त्यगे लग्ने चिरकालफलाय च। क्रमुका-न्नारिकेलांश्च तालवृक्षान् विनिक्षिपेत्॥ अश्विन्यां लग्नगे चन्द्रे कृत्वा खातं कृषिः क्रमात्। नालिकेरांस्तथेक्षूंश्च निदध्यात्पतिवृद्धये॥ (पृष्ठ ४६१)

नक्षत्रलग्नञ्च-

विशाखावारुणं मूलमृगचित्रोत्तरात्रयं।
प्राजापत्यानुराधा च तथाज्येष्ठा च कृत्तिकाः।
नक्षत्राणि प्रशस्तानि स्थिरं लग्नं च शोभनं॥ ६२॥

इति बीजोप्तिविधिः।

विशाखा, मघा, मूल, चित्रा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ व उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा और कृतिका वृक्षारोपण के लिए शुभनक्षत्र माने गए हैं। इसके लिए स्थिर लग्न शुभ होता है।

वराहमिहिर का निर्देश है— ध्रुवमृदुमूलविशाखागुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी-हस्तम्। उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि॥ बृहत्संहिता ५४, ३१, शक्तियामलोक्त वृक्षचक्र इस प्रकार है- सूर्यभाद्दिनभं यावद् वृक्षचक्रं विधीयते। त्रयं मूले भवेद्रोगस्त्वचि त्रीणि धनागमः॥ वेदश्शाखासु नाशः स्यात् पत्रे युग्मं दरिद्रता। शीर्षे त्रीणि शुभं प्रोक्तं पूर्व एकन्तु मृत्युदम्॥ सुतनाशं पञ्च याम्ये पश्चिमे द्वे धनप्रदे। स्याद्वेद उत्तरे लाभ इत्युक्तं शक्तियामले॥ इसका प्रकारान्तरण यह भी है कि सूर्य के नक्षत्र से चन्द्रमा के नक्षत्र तक गिनकर उसमें

तिथि और वार की संख्या जोड़कर ९ का भाग दें, शेष अङ्क के अनुरूप वृक्षारोपण का फल इस प्रकार होता है कि १, ३ व ५ में वृक्ष फलता है, २ व ४ में निष्फल, ६ व ८ में लाभ तथा ७ व ९ में मृत्युकारक होता है।)

शक्तियामलोक्त वृक्षचक्र —

नक्षत्र	३	३	४	२	३	१	५	२	४
स्थान	मूल	त्वचा	शाखा	पत्र	शीर्ष	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
फल	रोग	धन	नाश	दरिद्रता	शुभ	मृत्यु	पुत्रनाश	धनद	लाभ

अथ रोपणविधि-

उप्तं (त्रसं ?) पुष्पचयां कीर्णतिलप्राखाद्य वाहिते।
भू प्रदेशे समे रम्ये वृक्षाना रोपयेद्वपेत्॥ ६३॥

अब रोपण विधि दी जा रही है। पौधरोपण तब सुन्दर दिखाई देगा जबकि भूमि समतल होगी और उस पर पहले तिल या काले माष अथवा उड़द की खेती की गई होगी तथा जिसके पुष्पादि वहीं पर बिखेर कर ढेर हो गए होंगे। अर्थात् कहीं भी पौध रोपण से पहले वहाँ तिल अथवा उड़द की खेती की जाए और समभूमि को उर्वरा बनाया जाए।

लता, गुल्म, वृक्षादिरोपण का मन्त्र बृहद्वास्तुमालाप्रयोग में इस प्रकार दिया गया है- ॐ वसुधेती च सीतेति पुण्यदेति धरेति च। नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोयं बर्द्धतामिति॥ (पृष्ठ १२०)

द्रुमरोपणेमध्यान्तरविचारः

भवेति चतुर्दशषोडशविंशति हस्तैस्तदन्तरा दोलानि।
क्रमशो निन्दित मध्यमवरमिति तरु संपद(ो) नियतम्॥ ६४॥

रोपण के समय दो पेड़ों के मध्य अंतराल १४, १६ तथा २० हाथ का कहा गया है। यह अंतराल क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम संज्ञक है।

वराहमिहिर का मत है— उत्तमं विंशतिर्हस्तं मध्यमं षोडशान्तरम्। स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम्॥ बृहत्संहिता ५५, १२, उत्पल ने काश्यप का मत देते हुए द्वादश हाथ के अन्तराल को अधम बताया है- अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतं। मध्यमं षोडश ज्ञेयमधमं द्वादश स्मृतम्॥ सविवृति बृहत्संहितायाम् पृष्ठ ६५९, काश्यप की भांति ही विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार का भी यही मत है— उत्तमं विंशतिर्हस्तं मध्यमं षोडशांतरम्॥ स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम्। अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम्॥ २,

३०, १५-१६, सोमेश्वर का मानसोल्लास में कथन है- षोडशैकादशाष्टौ वास्तथा हस्ताश्चतुर्दश। कर्तव्यं रोप्यामाणानामन्तरालं महीरुहम्॥ ५, १, १७, शार्ङ्गधर का मत है- दशविंशतिषोडशभिस्तु करैरधोत्तरमध्यकृतान्तरकान्। द्विचतुस्त्रिभिरन्तरितान्क्रमशस्तृण पादपगुल्मभृतश्च वपेत्॥ (उपवनविनोद ६५)

अन्यदप्याह-

पञ्चचतुष्टयहस्तं प्रमितं स्याद्गुल्मिनोंतरालम् च।
त्रिद्विचतुहस्तैस्त (द्व?)त्पूगादीनां प्रयत्नेन॥ ६५॥

दो झाड़ियों के बीच चार या पाँच हाथ का अन्तराल रखना चाहिए। पुग आदि को प्रयत्नपूर्वक दो या तीन प्रबाहु दूरी पर रोपित किया जाना चाहिए।

विशेषमाह-

अतोदूरे निलाह्लीति रसं पत्ति (पक्षि?)स्त्वदूरतः।
तस्मान्नात्रान्यथा कार्यं तरु सम्पत्ति(क्षि?)मिच्छता॥ ६६॥

यदि पेड़ों का रोपण अधिक दूर-दूर किया जाए तो तेज हवाएं और आँधी-झंझावात आदि नुकसानदायक सिद्ध हो सकते हैं। इसी प्रकार यदि पेड़ों को अधिक पास-पास भी लगाया जाए तो वे फलित नहीं होते। इसलिए पेड़ों को निर्धारित दूरी पर ही लगाएं ताकि वे फलवान होते रहें।

वराह का मत है कि अधिक समीप व परस्पर स्पर्श करने वाले व दो वृक्षों की जड़ें इकट्ठी होती हों तो वे पीड़ित होते हैं और उचित रूप से फलीभूत नहीं होते- अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम्। मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः॥ ५४, १३, इसी प्रकार शार्ङ्गधर का मत है- सान्द्ररोपणमवृद्धिकारणं वातभीतिरतिदूररोपणात्। भिन्नवर्गरचनावल्पपीडना नैव युक्तिरियमेव शस्यते॥ कुसुमं फलमप्युपभोगसहं फलिनो हि न यस्य दलन्ति शिखाः। कुसुमेन विनैव फलन्ति च ये न भवन्ति शुभास्त इहापनसाः॥ उपवनविनोद ६६-६७)

अथ गर्तविधिः

गर्त्ते चिर कृते शुष्के सर्व्वतोहस्त सम्मिते।
सम्यग्दग्धे तु सम्पूर्ण गोकीकस करीषकैः॥ ६७॥ 67

पौधों को रोपने से पहले गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढों की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई एक हाथ मान से रखनी चाहिए। गड्ढे के सूख जाने पर गाय के गोबर की खाद, राख, अस्थि आदि से पूरित करना चाहिए।

वराहमिहिर ने भी खड्ड तैयार करने के लिए मानादि इसी प्रकार दिए हैं- हस्तायतं तद्द्विगुणं गंभीरं खात्वावटं प्रोक्ताजलवपूर्णम्। ५४, २४, शार्ङ्गधर का मत है- हस्तप्रमाणान्पयसा सुसिक्तान्संक्रामयेन्मूलवतः समृत्कान्। सर्पिर्मधूशीरविडङ्गालिप्तान्बिले निदध्याच्च करीषयुक्ते॥ अवालुकाश्लक्ष्णमृदा पूरिते गर्तशोधनम्। कोदण्डार्धमिते खाते जलसिक्ते वपेत्तरुम्। कदलीक्षीरिणौ रोप्यौ मूले दत्त्वा तु गोमयम्॥ रम्भायाः सुपरिणतैः फलैर्विलिप्तां संशुष्कां भुवि निहितां पलालरज्जुम्। शुद्धायामुपरि तृणेन गाढगुप्तामासिञ्चेदबहु जलैर्बहून्यहानि॥ सा रज्जुस्तदनु तमालनीलभासो बिभ्राणानरुणरुचोङ्कुरान्प्रसूते। भूयस्तानुपचितपत्रकाण्डमूलानारोप्य प्रथितविधानतो निषिञ्चेत्॥ आषाढे श्रावणे मासि बीजावनरोपणे। ग्रीष्मादन्यत्र वल्लीनां केचिदिच्छन्ति रोपणम्॥ (उपवनविनोद ५९-६३)

तत्र स्वभाव संशीते भस्मन्यपहते सति।

सिक्ते कुणपतोयेन सार मृत्य हि पूरिते॥ ६८॥ 68

गड्ढे में भस्मी डालकर उसे पुनः स्वभावस्थ करें अथवा भर दें तथा वहाँ पर कुणपजल का छिड़काव करें। उसे गुणवत्ता युक्त मिट्टी से भरना चाहिए।

माकन्दादीनां वपनम्-

माकन्द-दाडिमादीनां कूष्माण्डा-लांबुकस्य च।

वपनं कीर्त्तितं श्रेष्ठं रोपणं च विशेषत॥ ६९॥ 69

आम्र, दाड़िमादि, कूष्माण्ड तथा लौकी या तुम्बा के बीजों की बुवाई श्रेष्ठ है किंतु इनकी पौध का रोपण भी किया जा सकता है।

अन्यदप्याह-

उप्तिस्त्रपुस बीजानां स्थानके स्थानके (स्थाके ?) शुभे।

क्षेत्रे सुसारके सर्व्वशाकाना मिति वाहिते॥ ७०॥ 70

उर्वरा भूमि पर जिसका अतिशय उपयोग होता है, त्रपुष या खीराककड़ी के बीज और अन्य शाक को आन्तरायिक रूप से उगाया जा सकता है।

उप्तिर्मरुवकश्चात्र तथा दमनकस्य च।

कल्पिताल्पककेदारे कीर्त्तिताकुङ्कुमस्य च॥ ७१॥ 71

उक्त भूमि पर केसर, मरुवाक या मुरवा तथा दमनक को अत्यन्त सावधानी पूर्वक उगाया जा सकता है।

अन्यदप्याह-

एकैकं स्थूलबीजाने लघु बीजान्यनेकशः (शा ?)।

ह(अ ?)स्ताग्रेणैवनारङ्ग बीजं वक्रेणनिर्व्वपेत्॥ ७२॥

जो बीज अपेक्षाकृत बड़े होते हैं वे एकाकी रूप से भी बोये जा सकते हैं किंतु लघु बीजों को गुणात्मक रूप से अधिक बिखेरा जा सकता है। नारङ्ग के बीज हाथ में लेने पर तिर्यक् स्थिति लिए रहते हैं अर्थात् बड़े बीजों को एक-एक, छोटे बीजों को एक साथ उछालकर तथा नारङ्ग जैसे बीजों को वक्र रूप में या खड़े बोना चाहिए।

मृ(म्रि ?)न्मिश्रतं चारुफणिष्युकादि
बीजं वपेद्गोमय मिश्रतेन ततो जलेनो।
परिदक्षपाणिना(नी ?) त शनैः शनैः
(तस्च्छेणै ?)रंतरिजं निषिञ्चेत्॥ ७३॥

मरुवा के बीजों को बुवाई से पूर्व मिट्टी के साथ मिलाएँ फिर गाय के गोबर व पानी का घोल तैयार कर उसके साथ ही उनकी बुवाई और शनै-शनै सिंचाई करें।

काण्डरोप्यवृक्षविधानमाह-

सहज परिपक्व कदलीफललिप्तास्तरणिकिरण परिशुष्काः।
षष्टिकपलालरज्जुर्निहितागर्त्ते(र्त्ता ?) तदतरिता॥ ७४॥
स्तोक जलैः परिसिक्ता निरन्तरं शुचिरदिवसेषु।
सूतेतमाल नीलप्रतिमां कुरु सञ्चयं नियतम्॥ ७५॥

कदली-फल के गुदा का लेप किया हुआ, सहज रूप से पका हुआ और सूर्य के प्रकाश में सुखाया हुआ कोई वृंत या डंडी को षष्ठि या साठ दिनों में पकने वाली चावल की एक प्रजाति के भूसे की बनी रस्सी से बांधकर खड्ढे में बोया जाए। इसके बाद गर्मी की स्थिति में लगातार बूंद-बूंद पानी दिया जाए। इससे उसका सफल अङ्कुरण होता है तथा यह तमाल की भाँति नीला होता है।

अन्योत्खातप्रतिरोपणविधः

अष्टादशाङ्गुलम कोमल-कर्कशं च संरोपयेद्विपुलगोमय संस्कृतांर्द्ध।
काण्डं त्रिभागमथतंत्परिपूर्यगर्त्तेसिञ्चेज्जलैर्मसृणसैकल मृत्ति(प्ति ?)काभिः॥ ७६॥

यदि काण्ड या वृंत की रोपाई करनी हो तो वह अठारह अङ्गुल का हो, वह न तो अधिक कठोर हो और न ही अधिक कोमल। उसे बुवाई के योग्य तैयार करें तथा आधा हिस्से पर गाय के पर्याप्त गोबर का लेप करें। गड्ढे में तीन-चौथाई भाग तक इसे गाड़ कर बारीक रेत, मृत्तिका मिश्रित जल के साथ इसकी सिंचाई करनी चाहिए।

वराहमिहिर का मत है प्रतिरोपित किए जाने वाले पौधों की जड़ से शाखा तक

घी, खश, तिल-मधु, गोमय, दूध व वायविडङ्ग को मिलाकर बनाए गए लेप को लगाना चाहिए- घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः। आमूलस्कन्धलिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम्॥ ५३, ७, इसी मत पर उत्पल ने यह उक्ति भी दी है- घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतिलगोमयैः। विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम्॥ (पृष्ठ ६५८)

अन्यदप्याह-

अर्ध(ध ?)पचाधोभागं कुर्व्वन् शतपत्रिका भवात्काण्डान्।

उह्या (प्त्या ?) कार्तिकमासके दारुप्लावयेत्सलिलैः॥ ७७॥

शतपत्रिका के काण्ड या वृंत के नीचे का आधा भाग अधपका होना चाहिए। कार्तिक मास में इसकी सावधानी पूर्वक क्यारियों में बुवाई करनी चाहिए। यह इसका परागण काल होता है। इसके बाद दो माह तक निरन्तर इसकी सिंचाई करनी चाहिए।

अन्यदप्याह-

यावन्मासा द्वितयं पल्लविता(त ?) स्तां ततः समुद्धृत्य।

आषा(षो ?)ढे च यथा दिग्वाञ्छित देशेनिरूपयेन्निपुणः॥ ७८॥

जब दो मास में वे पल्लवित हो जाएं तब उन्हें उखाड़कर अन्यत्र रोपित करना चाहिए। आषाढ़ मास जबकि पावस काल होता है, तब वांछित दिशा में भूमि की परीक्षा पर विचार करते हुए ऐसा किया जाना चाहिए।

करवीरदाडिमञ्च-

आनम्य चोभयोरुत्वान् दाडिमी-करवीरयोः।

काण्डाना रोपयेन्मूले दत्वा गोमयमुत्तमम्॥ ७९॥

डाडिम और करवीर या कनेर की जो शाखाएँ झुकी हुई हों, उनका काण्ड विधि के अनुसार रोपण करना चाहिए। इनको गाय के गोबर का खाद दिया जाना उत्तम होता है।

निषिञ्चेत्सलिलैर्नित्यं यावत् मासद्वयं भवेत्।

ततस्तान्मध्यतश्छिद्याच्चिर संजात पल्लवान्॥ ८०॥

इस प्रकार रोपे गए डाडिम व करवीर को दो मास तक नियमित रूप से पान्नी से सींचे। जब पत्तियां बढ़नी शुरू करें तो उनको मध्य भाग से चीर भी देना चाहिए।

अन्यदप्याह-

सर्व्वात्किन्दात्वेद्गर्ते सर्व्वतो हस्त सम्मिते।

सांद्रसैकत संमिश्रमृत्तिका परिपूरित॥ ८१॥

सभी कंदों के रोपण के सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि उन्हें गड्ढों में उगाना चाहिए

जिनकी लम्बाई, चौड़ाई व गहराई एक हाथ होनी चाहिए। इन गड्ढों को मोटी रेत मिली मिट्टी से भरना चाहिए।

कदलीं रोपयेत्मूले दत्वा गोमयमुत्तमम्।
रोपयेत्मूल(लि ?)तो गर्त्ते दत्वा प्रचुरमम्बु च॥ ८२॥

कदलीदल का जब रोपण किया जाए तो उनके मूल में गाय के गोबर का भली भाँति आलेपन करना उत्तम होता है। उनको जड़ों सहित खड्ढों में सावधानी के साथ लगाएं और समय-समय पर पर्याप्त पानी देवें।

अथालेपनम्-

आरोपयेद्वाल तरून् मनीषी-
च्छानांतरं हस्तमितां दिशज्ञः।
क्षौद्रामृणालाज्य विडङ्ग लिप्त मूलान्सु-
गर्त्तेघ्रि(ह्वि ?) मृदा समेतान्॥ ८३॥

छोटे पौधों का प्रत्यारोपण दिन के समय एक निश्चित दिशा में किया जाना चाहिए। जब वे एक निश्चित अनुपात तक वृद्धि कर लें, उनकी जड़ों पर शहद, मृणाल या कमल दण्डिकाओं, घृत तथा विडङ्ग का अच्छी प्रकार लेप करें और पुनः मृदा से दबा दें।

अन्यदप्याह-

तथा महांतोप्यणु रोपणीया स्तलापिका (?)
वेष्ठित मूल देशाः।
प्रदोष काले परवा सरस्य संश्राव्ये
पूर्व्वेह्वि च मन्त्र मेलत्॥ ८४॥

इसी प्रकार जब बड़े पौधों का रोपण किया जाना हो तब भी उक्त विधि को ही अपनाना चाहिए किंतु उन्हें प्रदोषकाल या शाम के समय ही लगाएं। इस समय निम्न मन्त्र का उच्चारण भी करें-

अथ मंत्राः

'हे वृक्षत्वा मितः स्थानान्नेष्याम्यन्य गुणोत्तरं।
तथा सेकं प्रदास्यामि निर्वृत्तिं येन यास्यसि॥ ८५॥
वृद्धिं यास्य सिल त्रत्वं वज्रा(ज्ञा ?)दिभय वर्ज्जितः।
तत्रैव पालयिष्यामि प्रियं पुत्रमिवाचलं॥ ८६॥

हे वृक्ष! मैं तुम्हें यहां से गुणात्मक रूप से श्रेष्ठ किसी अन्य स्थान पर लगाने के लिए ले जाऊंगा। तुम्हें उन विधियों से सिञ्चित करूंगा कि तुम सदा संतुष्ट रहो। तुम यहां पर उगोगे और तुम्हें यहां किसी प्रकार से वज्रपात आदि का भय नहीं होगा। मैं तुम्हारी वहाँ पर अपने प्रिय पुत्र की भांति देखभाल करूंगा।

अथ कालानुसारिवृक्षाऽऽरोपणनियमाः

श्रावणे क्षीरिका-चूत-दाडिमी-वकुलादिकम्।
भाद्रे च राजकोशा-म्र-लकुचादि वपेद्बुधः॥ ८७॥

बुद्धिमानों का मत है कि श्रावण मास में खिरनी, आम्र, दाड़िम, बकुलादि का तथा भाद्रपद या मध्य वर्षाकाल में राजकोश, आम्र, लकुचादि की बुवाई करनी चाहिए।

वराहमिहिर ने कहा है कि जिस वृक्ष में लता, अङ्कुर न हो, उसका शिशिर या माघ-फाल्गुन में, जिसमें शाखा आदि हों उन्हें हेमन्त या मार्गशीर्ष-पौष और बड़ी शाखाओं वाले पौधों को वर्षा या श्रावण-भाद्रपद में रोपा जाना उचित है- अजातशाखान् शिशिरे जातशाखान् हिमागमे। वर्षागमे च सुस्कन्धान् यथा दिक्स्थान् प्ररोपयेत्॥ ५४, ६ भट्टोत्पल ने इस मत को काश्यपीय कहा है और निम्न पङ्क्तियां उद्धृत की हैं- आजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत्। जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः॥ सुस्कन्धाः शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत्॥ (पृष्ठ ६५८)

अन्यदप्याह-

अश्विने गोल्लवार्त्ताक प्रभृतीनि च कार्तिके।
फणिज्झशतपत्रीका धान्यकं मूलादिकं॥ ८८॥

आश्विन मास में गोल बैंगन आदि तथा कार्तिक मास में फणिज्य या मरुवाक, शतपत्रिका, धान्य, मूलादि की बुवाई करनी चाहिए।

अन्यदप्याह-

फाल्गुने च पटोलादि चैत्रे कार्कारुकादिकम्।
रोपयेत्कदलीकादि सुधीर्वेशाखशुक्रयोः॥ ८९॥

फाल्गुन में पटोल आदि, चैत्र मास में कार्कारु या करेला आदि और वैशाख मास में शुक्रवार को कदली आदि का रोपण करने वाले बुद्धिमान कहा गया है।

अन्यदप्याह-

आषाढे निर्वपेत्सर्व्वान रोपंयेच्च प्रकामतः।
सहः सहस्यौ माघश्च(स्य ?) वपनादौ विगर्हितः॥ ९०॥

आषाढ़ मास में किसी भी पौधे का रोपण किया जा सकता है। पौष, माघ और मार्गशीर्ष जैसे माह अधिक सर्दी के होने से रोपण की दृष्टि से अग्राह्य होते हैं।

भिल्लोटाऽऽरोपणनियम-

सर्व्ववृक्ष निवेशानां सर्व दिक्षुधिरोपयेत्।

भिल्लोटं यन्नतः प्राज्ञः पादपाऽरोग्य हेतवे॥ ९१॥

भिल्लोट या भिलावाँ की आरोग्यमयता पूर्वक पैदावार के लिए उसे किसी भी वृक्ष के चारों ओर से घेर में उगाना उचित रहता है।

अत्रैव ज्ञातव्यः

फलिन्यशोक-पुंनाग-शिरीषा निंब पञ्चकाः (? च चम्पकाः)।

मङ्गल्याः प्रथमं रोप्याः भिंदन्ति (भल्लातश्च) च गदापदः(ाः ?)॥ ९२॥

इसके लिए फलिनी, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और नीम- इन पाँच मंगलमय पेड़ों को सबसे पहले लगाएं क्योंकि ये सब ओषधीय गुणों से युक्त होते हैं और नाना आपदाओं से सुरक्षा करने में समर्थ हैं।

मानसोल्लास में सोमेश्वर का मत है कि अशोक, निम्ब, पुन्नाग, बकुल, नागकेसर, शिरीष व तिलक आदि वृक्ष आरोग्य, यश व विजय देने वाले हैं- अशोक-निम्ब-पुन्नाग-बकुलो नागकेशरः। शिरीषस्तिलकश्चैव मुख्यं ते प्रथमं वने॥ मुखारोग्यं यशोवृद्धि लक्ष्मं विजयवृद्धये। सौभाग्यार्थमिव वृक्षाः कर्तव्या भूभृता वने॥ ५, १, १८-१९ , इससे पूर्व शार्ङ्गधर ने यह श्लोक दिया है— मातुलुङ्गरजनी सकण्टकः किंशुकश्च गिरिकर्णिका सिता। तिन्तिडीकविफलाक्षनीलिका कोविदार इति भीतिदो गणः॥ (६८)

अन्यदप्याह-

पूर्व्वस्यां करमर्द-वंश विटपाः पारा(ो ?)वता दक्षिणे

कौबे(चे ?)र्यां बदरी-कपित्थतरवो धात्री पश्चाच्छिवा(? मा)।

अन्ये चोत्तममध्यमा(हा ?)धम शिखा(फा ?)रोप्या

(अ ?) स्ववर्ग्रैः समं कृत्वा चान्तरकं यथायथममी पत्रैस्तुपर्य(स)पृशः॥ ९३॥

करमर्दक, वंश को पूर्व दिशा, पारावत तथा बेर व कैथ वृक्षों को दक्षिण व धात्री को पश्चिम में उगाना श्रेष्ठ है। अन्य को निर्धारित दूरी पर स्वस्थ पौधों के साथ-साथ ही क्यारियों में उसी प्रजाति के कमजोर पौधों को भी उगाना चाहिए।

शार्ङ्गधर ने अन्तिम पङ्क्ति को इस प्रकार दिया है— अन्ये चोत्तममध्यमाधमाशिखा रोप्याः स्ववर्गैः समं कृत्वा चान्तरकम् यथायथममी पत्त्रैरुपर्यस्पृशः॥ (उपवनविनोद ७०)

रोपणेप्रकार:

मण्डप-नन्द्यावर्त्त-स्वस्ति(स्वि ?)क-चतुरस्त्र-सर्व्वतोभद्रैः।
वीथी-निकुञ्ज-पुञ्जक विन्यासैः पादपा रोप्याः॥ ९४॥

पौधों को कई प्रकार से रोपा जा सकता है। कलात्मक रूप से पौधों को मण्डप के अनुसार, पश्चिमोन्मुख या नन्द्यावर्त, स्वास्तिकाकार, चतुरस्र सर्वतोभद्र या सभी दिशाओं में विस्तार लिए, वीथी के रूप में, निकुञ्ज बनाकर अथवा समूहबद्ध भी लगाया जा सकता है।

परिक्खादिकृत्य-

मध्ये सपुष्पाः(ष्फाः ?) सफला वाह्ये तत्परतो परे।
वृक्षाः कार्या युता वृत्या सा चापि परिखावृत्ताः॥ ९५॥

फूलदार व फलदार पेड़-पौधों को सर्वदा मध्य में और अन्य पेड़ों को उनके बाहर परित या घेरे में लगाएं। इनको जोड़ों के साथ लगाएं और प्रत्येक वृक्ष के लिए परिखा या वृत्ताकार घेरा (आलवाल, थाला) भी बनाएं।

अन्यदप्याह-

इति विदित विधानः शाखिचिंता विधानः
कृत सुर-गुरुतोषः क्षालिताशेषदोषः।
निज मिव वरतोकं निर्व्वपेत्प्राज्ञशोकं (?)
तदवनिज विशेषात्कामतो ज्ञानशेषान् (?)॥ ९६॥

इति वपनविधः।

इस प्रकार पौधरोपण करने के इच्छुक मनुष्य को समस्त विधियों का ज्ञान कर, दोषों को दूर कर अपने इष्टदेवताओं व गुरु को प्रसन्न करते हुए रोपण के लिए तत्पर होना चाहिए।

वृक्षारोपणार्थ-

भूत(ल ?)ले पादपा एव परत्रेह च शर्मणे।
यस्मादनं तदा रिघ्रा(प्रां ?)त्तारणात्त(स्त ?)रवोप्यमी॥ ९७॥

इस संसार में केवल वृक्ष ही इह और पारलौकिक आनंद की सृष्टि कर सकते हैं। पेड़ इस लोक को नाना कष्ट-आपदाओं से बचाते हैं, इसीलिए उन्हें रक्षक भी कहा जाता है।

अतो धर्मार्थ काम(ा)नां छाया पुष्पफलादिभिः।

प्रसाधकतमावृक्षा: पालनीया: प्रयत्नत: ॥ ९८ ॥

यदि वृक्षों की उचित देखभाल किया जाए तो वे अपनी छाया, पुष्प और फलों के माध्यम से हमारे लिए धर्म, अर्थ और काम की साधना में सहायक बनते हैं।

तरुरक्षानिर्देश:

नीहाराच्चण्डवाताच्च धूमाद्वैश्वानरादपि।

जालकारात्प्रयत्नेन रक्षणीया: क्षमारुहा: ॥ ९९ ॥

पृथ्वी पर स्थित समस्त पेड़ों को नमी, झंझावात, धूप, धुंआ, आग, कीटों से अवश्य ही बचाना चाहिए।

आलेपनं तिलखली कृमिशत्रु कल्कै: सेक:

पयोम्बुभिरथे कुणपांबुभिर्वा।

धूपोघृतेनसलिना प्रतिकर्म्म कुपद्विलस्य

कर्म कुशल: किलपादपस्य ॥ १०० ॥

पौध विज्ञानियों को पौधों पर तिल की खली और विडङ्ग का आलेपन करना चाहिए। ये प्रयोग कीट नाश के लिए है। पौधों के लिए दूध, पानी और कुणप जल आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए। उन्हें यथावश्यकता घृत की धूप देकर उपचारित भी किया जाना चाहिए।

अथ कुणपजलं–

वराहविड्व(द्व ?)सामांस-मज्जा-मस्थिष्क-शोणितां।

पक्षस्थं सजलं भूमौ कुणपं परिकीर्त्तितं ॥ १०१ ॥

विभिन्न अपशिष्ट-मल के साथ ही मज्जा, सूअर के मस्तिष्क, मांस और रक्तादि को पानी में मिश्रित कर रखा जाए, इसे 'कुणप' (तरल खाद) कहा जाता है।

अन्यदप्याह–

तुरङ्ग-शुक-मत्स्यानां मेष-छागल शृङ्गिणां।

संग्राह्यं हि यथा लाभं मेदोम(स ?)पलं तथा ॥ १०२ ॥

अश्व की अस्थियां, मृत शुक, मछलियों का मांस, भेड़-बकरियों के सींग, उपला आदि को संग्रह कर लेना चाहिए।

तान् सर्व्वात्रेकत:(लत) कृत्वा वह्नौ नीरेण पाचयेत्।

सम्यक् (सम्पक ?) पलांबु निक्षिप्य भाण्डेस्निग्धे विधाययेत् ॥ १०३ ॥

इन सभी को मिला पानी में डालकर आग पर उबाल लेना चाहिए। इस मिश्रण को एक चिकने पात्र में भरकर रख लें और इसमें पर्याप्त भूसी मिला दें।

चूर्णी (धूणी ?)कृत्य खलिर्देया ति(? स्ति)लनां माक्षिकं तथा।
स्विन्नाश्च सरसान्माषां स्तत्र(सूत्र ?) दद्याद्धृत्तथा (हृत्ततं... ?) ॥ १०४ ॥

(अथवा) उक्त सामग्री को लोहे के किसी पात्र में भून लें और उसमें तिल की खली और शहद मिलाएं। इसमें बेहतर गुणवत्ता वाले माष या उड़द और घृत मिला लेना चाहिए।

उक्तवत्सुक्षिपेत्तत्र मात्रानास्तीह कस्यचित्(त ?)।
एकैकं स्थापयेद्भाण्डेकोष्णस्थाने मनीषिणा ॥ १०५ ॥

पूर्व में बताई गई उक्त सामग्री को बिना किसी अनुपात या निश्चित क्रम के काम में ले लेना चाहिए क्योंकि इनका अनुपात कठिन है। तैयार होने पर ज्ञानी व्यक्ति को उसे किसी भाण्डे में लेकर एक कोने में, गर्म स्थान पर रख देना चाहिए।

कुणपस्तुभवेदेवं तरूणां पुष्टि (पुष्पि ?)कारकः।
स मतेन मयो(येः ?) ख्यातं यथोक्तं मृषिभिः पुरा ॥ १०६ ॥

इति कुणपजलं।

कुणप के सन्दर्भ में यह हमेशा ज्ञातव्य है कि वह पेड़ों के लिए अत्यधिक पोषक होता है। ऐसा विचार पूर्व काल में ज्ञानी जनों द्वारा प्रतिपादित किया गया और मैं (ग्रंथकार सुरपाल) भी परीक्षा के उपरांत यही कह रहा हूँ।

रोपितवृक्षाणां सेचनविधि-

बालस्य वृद्ध्ये देया सप्तमे-सप्तमे दिने।
मत्स्य (मत्स ?)मांस तिलै सिद्धा कृशराशीतला तरोः ॥ १०७ ॥

बाल और नए रोपे गए पौधों की वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि सात-सात दिन के अंतराल पर उनको मत्स्यमांस, तिल आदि से सिद्ध किए शीतल जल से बराबर सिञ्चित किया जाए।

तपवारणनिर्देश-

नवारोपित वृक्षाणां कार्यमातपवारणम्।
यावत्प्रवाल संकाशा जायन्ते पादपा नवाः ॥ १०८ ॥

नए रोपे गए पौधों की पत्तियां जब तक प्रवाल की भांति न दिखाई देने लगे, उनको सूर्य के ताप से बराबर बचाए रखना चाहिए।

देशजवृक्षसेचनप्रकार-

प्रतिवासरमेवैषां सायं प्रातर्निषेचनम्।
दातव्यं तृप्तिपर्यन्तं पक्षाहं जाङ्गले वनौ॥ १०९॥

जहाँ सूखा क्षेत्र (जाङ्गल) हो, वहाँ पर नए बोए गए पेड़-पौधों को प्रतिदिन सुबह और सन्ध्या को नियमित रूप से एक पखवाड़े तब तक सींचना चाहिए जब तक की भूमि पूरी तरह तृप्त नहीं हो जाए।

अन्यदप्याह-

सकृदेवाल्पमानूपे सेचनं पञ्चवासरम्।
सायं प्रातस्तथाल्पाल्पं दशाहमुभयात्मके॥ ११०॥

अनूपप्रदेश में, जहाँ कि भूमि दलदली होती है वहाँ पाँच दिन में एक बार पौधों को पानी देना चाहिए। साधारण क्षेत्र में दस दिन तक सुबह शाम सीमित मात्रा में पानी दिया जाना उचित है।

वराहमिहिर ने केवल अनूपक्षेत्र में वृक्षों के सेचन का निर्देश देते हुए वहाँ पाए जाने वाले पेड़ों की सूची दी है- जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः। बीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमाः। वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनसस्तथा। तिमिरोऽम्रातकश्चेति षोडशानूपजाः स्मृताः॥ (५४, १०-११)

कालानुसारसेचनप्रकार-

सेकश्चिर प्ररूढानां दिवसान्तरितोहिमे।
वसन्ते प्रत्यहं सायं त्रिकालं नित्यमातपे॥ १११॥

जिन पौधों की जड़ें मिट्टी में भली-भाँति जम गई हो, उनको शीतकाल में एक दिन के अंतराल पर पानी दिया जाना चाहिए। वसंत ऋतु होने पर उन्हें नित्य शाम को तथा ग्रीष्मकाल हो तो प्रतिदिन तीन बार पानी पिलाएं।

सोमेश्वर की मानसोल्लास में यही उक्ति है— हैमन्ते शिशिरे देयं तोयमेकान्तरे दिने॥ ५, १, २१)

अन्यदप्याह-

वर्षाशरदिनोदेयोऽदेयो (देयोदेय?) वा शोषणे वने।
ओ(ऊं)षधीफल संभूतोरसोमूत्रं वसापयः॥ ११२॥

पावसकाल और पतझड़ में अथवा जब मिट्टी सूख गई हो तब चिकित्सकीय फलों के रस, मूत्र, वसा व दुग्धादि मिलाकर पानी पिलाना चाहिए।

सोमेश्वर का यह भी मत है कि वृक्षों में एक वर्ष तक के वृक्ष को एक घड़े द्वारा सींचा जाना चाहिए और जैसे जैसे इनकी आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे बीस वर्ष तक प्रतिवर्ष जल के घड़ों की भी वृद्धि करनी चाहिए— विजानायात्ममारक्ष्य कुम्भनेकेन सेचयेत्। यावद्वर्ष तत् कुम्भं प्रतिवर्षं विवर्द्धयेत्॥ (५, १, ३३)

अन्यदप्याह-

कुणपाम्बुशकृन्मांसानीति द्रव्याणि सेचने।

मांस किं एव शितांभोभिः कुणपांभो विमिश्रितैः॥ ११३॥

भवन्ति फल पुष्पाढ्याः सर्व्वाभूरुह जातयः॥ ११४॥

पेड़ों से पर्याप्त मात्रा में फूल-फल लेने के लिए पानी में सड़े हुए बीज, मांस, मल व कुणप जल को मिलाकर पौधों को दिया जाना चाहिए। इससे सभी प्रकार के वृक्ष फल-फूलों से लकदक हो जाते हैं।

तृणादिशोधनविचार-

तृणान्यु(न्यु ?)पान्तदेशे(श ?)षु सर्वतः परिशोधयेत्तँ।

कुद्दाल येत्तरूणाम् तु मूलोपान्तम् विचक्षणः॥ ११५॥

पौधपालक जनों को पौधों के आसपास उग आई व्यर्थ घास, खरपतवारों को उखाड़ लेना चाहिए। इसके लिए कुदाल का प्रयोग कर पौधों की जड़ों के आसपास भी खुदाई (निराई-गुड़ाई) करनी चाहिए।

अथाधूपनविधि-

सिद्धार्थ-पार्थकुसुमैः शशमांसयुक्तैर्जंतुघ्नंराहित(?)

निशा सहितेश्च वृक्षाः।

आधूपिताव्यपगताखिलदोषशंका पुष्पै(पुष्फैः ?)

फलैः परमतोष कराभवन्ति॥ ११६॥

हल्दीचूर्ण, विडङ्ग, खरगोश का मांस, अर्जुन वृक्ष के फूल, सफेद सरसों के बीज के मिश्रण को जलाकर उठने वाले धुएं की यदि वृक्ष को धूनी दी जाए तो परम संतोष देने वाले पुष्प और फलों की उत्पत्ति होती है। इस धूप से पेड़ में व्याप्त समस्त दोष भी दूर होते हैं और इसी कारण वह अधिक फलवान होने लगता है।

अन्यदप्याह-

कदलीदल-सिद्धार्थ श(स ?)फरी धूपधूपिताः।

पुष्पैः(फैः ?) फलैः सुसम्पन्ना भवन्ति तरवोचिंरात्॥ ११७॥

केलों के पत्तों, सरसों, शफरी प्रजाति की मछली की धूनी दिए जाने पर पेड़ कम समय में ही फूल व फल देने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

हरिण-कोल-वसा-मधु-सर्प्पिषा-निचुल संभव पल्लववारिणा।
अचिरमेव भवन्ति निषेचिता: कुसुम सत्फलभारभृताद्रुमा: ॥ ११८ ॥

हरिण, कोल की वसा, शहद, सरसों, घृत तथा निचुल के वृक्ष की कोमल पत्तियों को जल में मिलाकर पेड़ों से सिञ्चित किया जाए तो वे बड़ी मात्रा में फल-फूल देने लगते हैं।

विडङ्गादिधूप:

घृत-विडङ्ग-पयोम्बु-मधु-प्लुतानन्तकुठाज(?) रज: परिधूपिता:।
अचिरमुत्तम पुष्प-फलान्विता विटपिन: प्रभवन्ति पयो तु च ॥ ११९ ॥

घृत, विडङ्ग, छाछ, शहद आदि के मिश्रण से पेड़ों को परिधूपित किया जाए तो वे अत्यल्प काल में ही फूलों व फलों से लद जाते हैं और दीर्घ काल तक फलवान बने रहते हैं। यह इस धूप का प्रभाव है।

अथ लतार्थप्रयोग:

सदाजगरधम्मीणवसाभि: परिखेचिता:।
पुष्पै: फलै: सुसम्पन्नाभवन्ति सकल्क(? प)लता: ॥ १२० ॥

अजगर और धामीन (धम्बोई या धाब्दई) साँप की वसा मिलाकर यदि लताओं को जल दिया जाए तो वे बहुत फल देने लगती है।

विड्वा(द्वा ?)वृश्चिककण्टकेन धूपिता शफरी-घृतै:।
कोलमूषवसासिक्ता(क्ता ?) धत्तेपुष्पं फलं लता: ॥ १२१ ॥

कोई लता तब अत्यधिक फल-फूल देने लगती है जबकि उसे किसी वृश्चिककांटे (एक प्रकार का कृषकोपयोगी औजार बिच्छुकांटा) से छेदा जाए और बाद में शफरी मछली के साथ ही घी की धूप दी जाए और कोल, चूहे की मज्जा का छिड़काव किया जाए।

द्राक्षालतार्थ प्रयोग:

ताम्रचूडश(शं ?)कृच्चूर्णं मूले दत्वानिषेचिता:।
मत्स्य (त्स ?)मांसोदकैर्द्राक्षानता पुष्पै: फलैर्भवेत् ॥ १२२ ॥

अङ्गूर की लताएं फूलों और फलों से लद जाती है यदि उनकी जड़ों को मुर्गियों की बीट के चूर्ण से पोषित किया जाए और मछली के मांस मिले पानी से सींचा जाए।

अथाम्रप्रयोगः

प(ा ?)क्वांकोल्हफलोदक सर्प्पिर्मधुशूकरवसाभिः।

मधुरसाढ्य महाफलनम्राश्चता भवन्ति परितुष्टाः॥ १२३॥

आम के वृक्ष को यदि अंकोल के पके हुए फलों के रस, घी, शहद तथा सूअर की वसा के साथ ही पानी से सींचा जाए तो उसके फल मीठे, बड़े और तृप्त करने वाले होते हैं।

अथ नारिकेलादि प्रयोगः

गो-कोल-शिशुमारोत्वमांसक्काथंबु सेचिताः।

श(स ?)फरी-तिलचूर्णाक्ताः फलन्ति नृण पादपाः॥ १२४॥

नारियल कुल के वृक्ष जैसे कि ताड़, सुपारी, खर्जूर, कतक आदि को यदि गाय के मांस, सूअर के मांस और शिशुमार नामक जीव के मांस मिले पानी से सींचा जाए और शफरी मछली को तिल चूर्ण में मिलाकर दिया जाए तो वे बहुत शीघ्र और अच्छे फल देने लग जाते हैं।

अन्यदप्याह-

मैरेयकिएव तिल-माषमुरासवैश्च क्षौद्रान्वितैः

सलवणैः कृमिशत्रुयुक्तैः।

आलेपिता निशि महत्फल भारनम्राः

स्युर्न्नालिकेर तरवो निरुपद्रवाश्च॥ १२५॥

निशाकाल में यदि वायविडङ्ग, नमक, तिल, मिश्री, शराब, उड़द, सुरा तथा सड़ी हुई देशी शराब को मिलाकर यदि नारियल के पेड़ों का आलेपन किया जाए तो निर्विघ्न रूप से वे बहुत भारी फल देने लगते हैं। ये फल बड़े भी होते हैं।

अन्यदप्याह-

क्षारोदकेन यवचूर्णयुते नालिकेर

द्रुमास्तुषजलैरथवा प्रतृप्ताः।

नित्यं वहन्ति घटपीनफलानि नूनं पाण्यामलाः

परिफलन्ति च माषयूषैः॥ १२६॥

यदि नारियल के पेड़ों को क्षारीय जल, जौ के चूर्ण, तुष जल के साथ ही उड़द मिलाकर बराबर दिया जाए तो उन पर पानीदार कलशों के आकार वाले आश्चर्यकारी श्रीफल होने लग जाते हैं।

अन्यदप्याह-

सितसिद्धार्थकतोयं यव-तुष-पिण्याकधारणं च तथा।
खर्जूरी-कमला-द्रमल-कुचानां पुष्ट्ये भवति॥ १२७॥

सफेद सरसो के जल, जौ, तुष, खली, खजूर, कमल, अद्रमल और कुचादि को पानी में मिलाकर यदि इन पेड़ों को दिया जाए तो वे शीघ्र पोषण को प्राप्त होते हैं।

अथ दाडिमार्थप्रयोगः

मार्जा(ज्ज ?)रि-चाष-हरिणद्विप-शूकराणां
मांसेन भूरिवसया महिषीपयोभिः।
स्याद्दाडिमी मधुर भूरिरसाढ्य बीजगर्भाति-
पीनफल भारनताति तृप्ताः॥ १२८॥

अनार के फल अधिक बड़े, रसदार और मीठे होकर संतुष्टि देने वाले होते हैं यदि उन्हें पर्याप्त मात्रा में बिलाव, चाष, हरिण, हाथी, सूअर का मांस, वसा तथा भैंस का दूध दिया जाए।

अन्यदप्याह-

स्याद्दाडिमी पशुपलान्वित फेरु-
मांस पिण्डोपचार विधि सम्यग वाप्त तृप्ति।
आप्लाविलापि सित साधित वारिपूरैः
प्रखादुभूरि रसगर्भफलाव नम्राः॥ १२९॥

लोमड़ी के मांस को गाय, भैंसों के मांस में मिलाकर खाद के रूप में मिश्री के साथ यदि अनार को दिया जाए तो वह अधिक मीठे और स्वादिष्ट, रसपूर्ण फलों से झुक जाते हैं।

अन्यदप्याह-

वराज्यशफ(सफा ?)री क्षौद्रलिप्ताः संधूपितास्ततः।
सघृत-त्रिफलाचूर्णैर्दाडिमी स्यात्महत्फलैः॥ १३०॥

यदि घृत, शहद और शफरी नामक मछली को मिलाकर दाडिम के तने पर लेप किया जाए और त्रिफला चूर्ण का घी के साथ धुआं दिया जाए तो उस पर बड़े आकार वाले फल आने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

डुंडुभै क्षीर संसिद्धैस्तथा शफरिकाजलैः।
संतृप्ता दाडिमीश्चाद्रुमहाफलनता भवेत्॥ १३१॥

शफरी मछली, दूध से उपचारित जल के साथ यदि भूमि-कीट (केंचुआ अथवा पनीहा?) की बड़ी मात्रा जब दाड़िम को दी जाती है तो उसके बड़े आकार वाले और अधिक फल होने लगते हैं।

कुदृष्ट्यावारणार्थप्रयोगाः

दाडिमी फलभाराढ्यश्चा खर्प्परमण्डिता।
तथाम्राललरूः कुम्भमुखालङ्कृतस्तकः ॥ १३२॥

अब फलदार पेड़ों को दृष्टिदोष से बचाने के टोटके दिए जा रहे हैं। जब दाड़िम का पेड़ फलों से लद जाए तो उस पर खोपड़ी बांध देनी चाहिए। इसी प्रकार आम पर जब मञ्जरियां और अमियां भरपूर आने लगे तो एक मटका फोड़कर उसका मुंह या ठीकरा बांध दिया जाना चाहिए।

अथ पनसार्थ प्रयोगः

फलत्रिक्क्राथ च येन सिक्तो विभूषितश्चा शुपलालकेन।
बहूनिधत्ते पनसः फलानिश्चादून्यस्थीनि महत्तराणि॥ १३३॥

जब त्रिफला से कटहल या पनस के पेड़ को इस प्रकार विभूषित किया और सींचा जाता है तो वे बड़े आकार के फल देने लगते हैं। ये फल अनस्थी अर्थात् बीज-गुठली विहीन भी होते हैं।

अन्यदप्याह-

यष्टीमधूक-तिला-माक्षिक-मिश्रतोपैस्तुष्ट-
स्तथ कुणप तर्प्पित मूलदेशः।
पीयूषहद्यसुरभी(बहूनि) विल्वयीनानि
मञ्जुल(लि ?)फलानि विभर्त्तिकोलः॥ १३४॥

यष्टिमधु या मुलेठी, तिल और शहद तथा कुणप के मिश्रण को जब कोल वृक्ष की जड़ों को सींचा जाता है तो वह बड़े और आकर्षण फल देने लगता है जिनका स्वाद अमृत तुल्य होता है और फलों का आकार बिल्व जैसा हो जाता है।

अन्यदप्याह-

कर्क्कंधूका-लकुच-वदरी-धात्रिका-झंबुवृक्षा-
लेखित्वाज्यै समकृशरा रोध्रपङ्कैर्यवाढ्यैः।
सम्यग्लिप्ता तिल-मधु-यवैर्धूपिता द्वादशाहं
क्षीरांभो(प्रो ?)भि कुसुम समये सेविताः सत्फलास्यु॥ १३५॥

कर्कंधु या करौंदा, लकुच व बेर, धात्री या धोकड़ा व जामुन के पेड़ों को खरोंच कर घी, शहद, क्षार के मिश्रण का लेप किया जाए अथवा लोध्र व जौ के चूर्ण का लेप करें तथा तिल, मधु, यव की बारह दिन तक धूप देकर छाछ से सिंचाई की जाए तो उसके अच्छे फल आने लगते हैं।

तथैते सर्व्वदासीधुः पूर संसेक तर्प्पिता।

पीयूषहृद्य पीनानि फलानि परिविभ्रति॥ १३६॥

इसी प्रकार ऊपर उल्लिखित वृक्षों पर बड़ी मात्रा में यदि पानी व शराब का नियमित छिड़काव किया जाए तो वे अमृत के समान, विशाल व स्वादिष्ट फल देने लग जाते हैं।

बिल्व च कपित्थार्थ प्रयोगाः

घत्ते विल्वः कपित्थश्च फलानि सुरसान्यपि।

सुवह्ननि च संसक्तो(क्तो ?)गुडाज्यक्षीरमाक्षिकैः॥ १३७॥

जब बिल्व तथा कपित्थ के वृक्षों को गुड़, घी, दूध तथा शहद का घोल बनाकर संसिक्त किया जाता है तो वे बड़ी मात्रा में रसदार फल देने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

अनव(वं ?)तृण-करीष-भस्म राशिमपीडित मूल तु चः सदा कदल्यः।

कषपलसलिलैः कृताभिषेकाद्दधति फलानि बहूनिपीवराणि॥ १३८॥

कदली की जड़ों को यदि सड़ाए गए भूसे की राख और गाय के गोबर का खाद दिया जाए और कस सहित मांस के जल से सींचा जाए तो वे प्रभूत मात्रा में वृहदाकार फल उत्पन्न करने लगते हैं।

तिन्दुकादीनां प्रयोगः

व्रीहि-माषजलैस्तृप्ताः संति तिन्दुकपादपाः।

निवुलछदतोयैश्च फलैः पारावता(?)नताः॥ १३९॥

तिन्दुक या तेंदु के पेड़ को यदि ब्रीही या चावल तथा उड़द मिश्रित जल दिया जाए तथा पारावत के पेड़ों को नीम की पत्तियों के रस से पोषित किया जाए तो वे फलों से लद जाते हैं।

मातुलिङ्गार्थ प्रयोगः

सक्षीर-मांस-झष-गोमय-शालिकि एव तोयोल्वणै-

स्तिल-खली सलिलैः सुतृप्ताः।

नम्रा भवन्ति मृदु-मांसल-कुंभपीन प्रस्वादुभिः

फल भरैः खलु मातुलुंग्यः ॥ १४० ॥

मातुलिङ्ग या बिजोरा के वृक्षों को दूध मिश्रित गंदे पानी, मांस, मछली, गोमय, शाली या चावल और तिल की खली से पोषित किया जाता है तो वे अत्यधिक मीठे गुदे वाले नरम तथा वृहद् कलशाकार फल प्रदान करने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

खण्ड-सवलित-फेरवामिषेस्तर्प्पितः फलित बीजपू(षू ?)रकः।

आमिषांबु गुड-दुग्ध तर्प्पितः सत्फलो(ले ?) भवति नागरङ्गकः ॥ १४१ ॥

बीजपूरक के पेड़ों को यदि सियार के मांस को पानी में मिलाकर दिया जाए तथा नारङ्गी के पेड़ों को मांस, गुड़ के साथ ही दूध मिश्रित पानी से सींचा जाए तो वे पर्याप्त मात्रा में श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले फल प्रदान करने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

जन्तुघ्न-माष-तिल-सर्षप-विल्ववारिपूरै(रुमास ?)

शशकमांस पयस्समेतैः।

सिक्ताभवन्ति च शशामिष लेप धूपैन्नरिङ्गकाः

फल भरैर्विनता प्रयुक्ताः ॥ १४२ ॥

नारङ्गी के पेड़ को यदि विडङ्ग, उड़द, तिल, सरसो, बिल्व, हल्दी और खरगोश के मांस को जल मिश्रित कर दिया जाए और लेपन व धूपन करें तो वे अच्छी मात्रा में फलों से लद जाते हैं।

मधुकार्थ प्रयोगः

अङ्कोलूवल्कल रजः कलयान्वितस्य मांसस्यजालिनिशिफादल संस्कृतस्य।

तृप्तो मधूकतरूल्वण पिण्ड धूपैः कर्प्पूर रेणु रुचिरैः कुसुमैर्विभर्त्ति ॥ १४३ ॥

मधुक वृक्ष को यदि कलया दाल, अङ्कोल वृक्ष की छाल के चूर्ण और मांस के टुकड़ों से धूपित किया जाए और जालिनी या राजाकोश के पत्तों व जड़ों का खाद दिया जाए तो वह कर्पूर के समान अति सुगंध वाले पुष्पों को उत्पन्न करने लगता है।

सौवीरादीनां प्रयोगः

सौवीरक(म ?)स्तु दधि-कोल-तिलैः

ससीन्धु क्षीरेण्डिक्का च कुणपैश्च भवन्ति तृप्ताः।

श्यामा कदम्ब करिकेसरका समृद्ध

पुष्पोच्चयैरति सुगन्धभ(ल ?)रैर्विनम्राः ॥ १४४ ॥

सौवीर के वृक्ष दही, कोल की चर्बी, तिल और देशी सुरा से तृप्ति को प्राप्त करता है जबकि क्षिरीका या खिरनी का पेड़ कुणप जल से पुष्टि पाता है। इसी प्रकार श्याम, कदम्ब, करिकेसर भी उपचारित किए जाने पर पुष्पित होकर झुक जाते हैं। उनके पुष्प अति सुगन्धित हो सकते हैं।

अथ कुसुमद्रुमार्थ प्रयोगः

जंतू (? जन्बू)पल्लव कोसीरमुस्तक्काथैः सुरान्वितैः।

पुष्पाणां जातयः सर्व्वाः परिपुष्पन्ति सेविताः ॥ १४५ ॥

सभी पुष्पवाले पौधे जन्तुखस और मुस्त पल्लवों के क्वाथ में सुरा मिलाकर सिंञ्चित किए जाने से अधिकाधिक फूल उत्पन्न करने लगते हैं।

एलादिगन्धद्र(द्द ?)व्याणां स(श ?)लिलैः परिषेचिताः।

आमिषक्काथ संपुष्टा पुष्पाढ्या केतकी भवेत्॥ १४६ ॥

दत्ताहारा सकृत्तोयैस्तथा पुष्पति केतकी।

केतकी को यदि इलायची आदि गंधवाले द्रव्यों तथा मांस के क्वाथ से सिञ्चित किया जाए तो बहुत अधिक पुष्प उत्पन्न होने लगते हैं। केतकी मल-जल से पोषित किए जाने पर भी बहुत फलती-फूलती है।

अथ नाना दोहदम्-

आदौ बकुलदोहदम्-

कान्तामदिरासेक तोषितो बकुलद्रुमः ॥ १४७ ॥

बकुल के वृक्ष रमणी मुख आसव से संतुष्ट होते हैं अर्थात् किसी युवती की थूंक या कुल्ले से बकुल के पेड़ बहुत संतुष्ठ होते हैं।

वृक्षाकांक्षाओं को लेकर यह मान्यता बहुत पुरानी है। कवि हर्ष ने रत्नावली नाटिका में कहा है— मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैरिवास्यते पुष्पवृष्ट्या। १, १८, इसी प्रकार कादम्बरी की उक्ति है- मदनकलितकामिनीगण्डूष सीधुसेकपुलकितबकुलेषु। (पृष्ठ २२२)

माकन्दाकांक्षा-

नखाग्रेणैव कामिन्या कुवाराग्रेणर(?) लेखितः।

विभर्त्ति मुकुलव्याजाल्मा(जान्मा)कन्दः पुलकार्जनं(र्कोजनं ?)॥ १४८ ॥

माकन्द वृक्ष को यदि कोई कामिनी अपने नाखून के आगे के भाग से खुरचती है तो पेड़ में नवीन कोंपलों का प्रस्फुटन हो जाता है और वह पुलकित होता है।

अशोकदोहदापेक्षा-

सिंजन्मनोज्ञ तरन् पुरसांद्रलाक्षारा(न ?)-
गारुणांघ्रि कमलेन सविभ्रमं च।
आताडितोवन तपास्यमर वैजयंत्या
पुष्पोच्चयं वितनु(पु ?)ते नितरामशोक॥ १४९॥

अशोक वृक्ष को यदि कोई कामदेव को रिझाने वाली सुन्दरी मधुर झंकार देने वाले पदाभूषण धारण किए, अलक्तक या गहरे लाल लाख के रंग के पुते पैरों से आघात करती है तो पेड़ कुसुमित हो उठता है।

रघुवंश ८, १८ में कालिदास की उक्ति- 'कुसुमम् कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति' पर चित्रवर्द्धन व सुमतिविजय की व्याख्या है— स्त्रीणां चरणप्रहारेण अशोकतरु:पुष्पयतीति प्रसिद्धिरतः पादप्रहार एवाशोकस्य दोहद इति भावः। इसी प्रकार कुमारसंभव में भी कहा गया है- असूतसद्यः कुसुमान्यशोः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि। पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्चिनूपुरेण॥ (३, २६)

कुचघातक्रीडा-

आलोल-कङ्कण-मृणाल मनोज्ञवाहुवल्ली
विलास परिरम्भभरै समंतात्।
आलिङ्गितः कुरबकस्तिलकोऽवलोकैः
पुष्पश्रियन्वितनुते चतुराङ्गनाया॥ १५०॥

कुरबक तथा तिलक के वृक्षों को यदि कोई सन्नारी लताओं व कमल के वृंत जैसी अपनी सुन्दर बाहुराशि जो कंकणादि धारण किए हुए हो, से आलिङ्गित करती है तो उस पेड़ पर बड़ी संख्या में सुंदर पुष्प खिल उठते हैं।

सुभाषितावली ग्रंथ में उक्त वृक्षों की दोहदापेक्षा को संयुक्त रूप से इस प्रकार लिखा गया है- कुरबक कुचघात क्रीडारसेन वियुज्यसे बकुलविटपिन्स्मर्त्तव्यम् ते मुखासवसेवनम्। चरणघटनाशून्यो यास्यरुयोमशोकऽशोकतामिति... । २५६४, इसके अतिरिक्त वृक्षाकांक्षाओं के विषयों को मल्लिनाथ ने भी मेघदूत की टीका में सङ्केतित किया है— स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूष सेकात्पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणलिङ्गनाभ्यम्। मन्दारो नर्मवाक्यत्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताच्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति

च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः॥ (२, १८)

अथ लतार्थपरिणयोपाय-

कन्ये व चारुने पथ्याकृत कौतुक मङ्गला।

प्राप्त पाणिग्रहा श्यामापुष्यत्पासन्नशाखिना॥ १५१॥

श्यामलता का दुल्हन की भांति शृङ्गार कर यदि अपने निकटस्थ किसी पेड़ से विवाह रचा दिया जाए और विवाह पूर्व के मंगलाचार संपन्न करवाए जाते हैं तो उस पर सुन्दर पुष्प खिलने लगते हैं।

प्रियङ्गुलता-आम के विवाह का वर्णन मल्लिनाथ ने किया है-फलिनी सहकारश्च प्रियङ्गुचूतौ मिथुनं परिकल्पितं समर्थितम॥ (रघुवंश ८, ६१)

अन्यदप्याह-

विधिवद्वारुणी सि(शि ?)क्ता दिनान्तते माधवीलता।

करवीरः कुरंटश्च विभर्ति कुसुमश्रियं॥ १५२॥

माधवीलता, करवीर और कुरंट पर यदि संध्या वेला में विनितभाव से सुरा आ सीञ्चन किया जाता है तो वे सुन्दर पुष्प देने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

पुष्पश्रियं वितनुते तृ(नृ ?)ण वह्निलोलकीला-

कलापकवलैः कलिता चमल्ली।

सिक्तापयः शवलशीतुलवारिपूरैः

स्यात्पाटला च मधुपैकविलास भूमिः॥ १५३॥

मल्लिका वृक्ष को यदि घास की लपटों से हल्का-हल्का सेका जाए और पाटल को दूध मिश्रित जल से सिञ्चत किया जाए तो वे इतने फूल देने लगते हैं कि उन पर सदैव मधुमक्खियों का जमघट लगा रहता है।

कार्पासिकार्थप्रयोगः

कर्प्पासिको(का ?)झषपलेन कृताभिषेको

यूथीपयस्तिल करीष जलेन तृप्ताः।

सप्तछदो वितनुतेवर पुष्प शोभां

शेफालिकापल झषाढ्य पलाम्बु तृप्ताः॥ १५४॥

कपास के पौधों या वणियां पर मछली के मांस का पानी छिड़का जाता है, यूथी

(एक प्रकार की चमेली) को जब दूध, तिल, गाय के गोबर के मिश्रण से सिञ्चित किया जाता है, सप्तछदा (सप्तपर्ण) और शैफालिका को मांस, मछली मिश्रित जल से सिञ्चित किया जाता है तो सभी श्रेष्ठ कुसुम उत्पन्न करने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

सौर्पेह्नि विर्भटा(टी ?)लाम्बु कर्कारु त्रपुसादिकाः।
सन्तिकोलास्थि विट्धूपैः(विद्धूपैः ?) फलाढ्याः शाकजातयः॥ १५५॥

विभ्रति, अलाम्बु या कद्दू, कर्करु, त्रपुस आदि सब्जियों के पौधों को यदि ग्रीष्मकाल में सूअर की अस्थियों की धूनी दी जाए तो वे अत्युत्तम फसल देने लगते हैं।

आशुतंडु(दु)ल मण्डेन सिक्ताः पर्यषितेन च।
सदैवालाम्बुका धत्तेफलानि प्रचुराण्यपि॥ १५६॥

अलाम्बुक पर अल्पकाल में ही प्रचुर मात्रा में फल लगने लग जाएंगे यदि उसे चावल के माण्ड से सींचा जाए।

पटोलाः फाल्गुने मासि तृणानलकरालिताः।
चैत्रे फलन्ति संसिक्ताः सन्धितैः खलिकाजलैः॥ १५७॥

पटोल को यदि फाल्गुन मास में भूसे की खलीक से उपचारित किया जाए और उस पर चैत्र माह में पानी मिली खली का छिड़काव किया जाए तो उत्तम पैदावार होने लगती है।

तरुरक्षा-

तरौनिर्वापयेद्वह्नि भस्म-वज्रा(ज्ञा ?)ग्नि संभवम्।
विकीर्णं वस्त्रवद्धं च क्षेत्रे तु हि न पीडनं॥ १५८॥

वृक्ष को कोहरे से बचाने के लिए उन पर कपड़ा लपेट कर आग का धुआं किया जाना चाहिए।

विकीर्णा(णी ?) दधि समिश्राः शालिभक्ताः समन्ततः।
क्षेत्रेषु करकावृष्टिं वारयत्येव तत्क्षणात्॥ १५९॥

यदि पके या भाप किए चावलों में दधि मिलाकर खेतों में छिड़काव किया जाए ओलावृष्टि जन्य असर का तत्काल निर्मूलन हो जाता है।

मन्त्रेणानेन लाक्षाभिर्लिखितैः कदली(ला ?)नली।
मूषादीत्वारयत्याशु क्षेत्र मध्य त्रिकोणके॥ १६०॥

यदि खेत में चूहे आदि नुकसान पहुंचाते हों तो निम्न मंत्र को केले के पत्र पर लाख की स्याही से लिखकर खेत के मध्य त्रिभुजाकार गड्ढ खोदकर गाड़ दिया जाना चाहिए।

अथ तरुरक्षार्थमन्त्र-

(ॐ) स्व(स्वे ?)स्ति किष्किन्धातः। परमभट्टा(द्य ?)रक परमेश्वर परमवैष्णव प्रगट पराक्रम विजितार्क मण्डलोपजीवीतः। श्रीमद्धनूमद्देवचरणविजयिनः। अमुक क्षेत्रे मूषक गन्धिका श(स)लभादीन समाज्ञापयंति। यथा।

एतद्राज्ञादे(वरामच)न्द्राय दृक दर्शनादेव क्षेत्रमिदं विहायान्यत्रयास्यथ।
नोचेत् हनरदेहरपचरवक्ष लाङ्गूलेन हुं फट् स्वाहाः॥ १६२॥*

इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है— ॐ सदा शुभ हो, किष्किन्धा के परमवीर, परमेश्वर, परमवैष्णव के रूप में प्रकट होने वाले, पराक्रम प्रदर्शक, सूर्य को अपने मुखमण्डल में लेने का पराक्रम दिखाने वाले श्रीमान् हनुमानदेव है जिनके चरण हमेशा विजय की ओर बढ़ते हैं। वे 'अमुक' (यहाँ पर खेतपति या खेत का नाम लिखना चाहिए) क्षेत्र के चूहे, टिड्डे, पतङ्गे आदि को आज्ञा देते है। वह आज्ञा देव रामचंद्र की है, वे देख रहे हैं अत: वे सब उस क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र चले जाए। अन्यथा देव तुम्हारे मारण, दाहन व निवारण के लिए पूंछ के बल का प्रयोग करेगा। हुं फट् स्वाहा।

अथ प्रयोगविधि-

पत्रे मन्त्र (मनुं ?) समालिख्य जप्त्वातं निखनेद्भुवि।
के च (क्षेत्रे ?) कीट पतङ्गाखुपिपील्यादि विनश्यति॥ १६३॥

इस मन्त्र को पत्र पर लिखकर जाप करने से और अभिमन्त्रित पत्रों को गड्ढा खोदकर गाड़ दिए जाने से उस क्षेत्र में कीट-पतङ्ग, चिंटियां आदि हानिकारक जीवों का विनाश हो जाता है।

इति विविध सुसिद्ध कर्म-योगावरतर मध्यम निन्दितान शेषान्।
शिशु-युव-जरठेषु पादपेषु प्रतिविहिता विदधत्यमी क्रमेण॥ १६४॥

इति पोषणाध्याय:।

इस प्रकार इन विविध परीक्षित योगों, उत्तम, मध्यम व निन्दित विधियों का

**पाठांतर— ॐ स्वस्ति किष्किन्धास्थितप्रकटपराक्रमान्तर्हितार्कमण्डलोपजीवितस्य श्रीहनूमानाज्ञापयति मूषकपतङ्गपिपीलिकाशलभकरभान्बककीटगन्धिकानिहैर्न स्थातव्यम्। आज्ञामतिक्रममाणस्य शरीरनिग्रहः समार्वयति। तस्य वानरस्य क्रममाणस्य सागरम्। कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव नर्दति॥ हुं फट् नमः॥ (उपवन. पृष्ठ ३२०)*

समस्त शिशु पौध, पूर्ण विकसित और फल वाले वृक्षों को कीटादि व्याधियों से बचाने के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए।

अथ रोगज्ञानाध्यायः-

शरीराङ्ग तु भेदेन द्विःप्रकाराः समासतः।
सर्वभूरुहजातीनामान्तकः परिकीर्तितः॥ १६५॥

अब पौधों की व्याधियों पर विचार किया जा रहा है। सभी प्रकार के वृक्षों में दो प्रकार की (कृमि) व्याधियाँ पाई जाती है १. आन्तरिक और २. बाह्य।

कृमियों के उक्त दोनों प्रकारों पर गरुडपुराण में चर्चा हुई है कि बाह्यगत कृमि मल, कफ, रक्त व विष्ठा से उत्पन्न होते हैं। जन्मगत भेद से इनके चार प्रकार हैं जबकि नामभेद से कृमियों के बीस प्रकार माने गए हैं। इनसे शरीर पर कोष्ठ या चकत्ते हो जाते हैं, पिडिका, कण्डू व गण्ड रोग होते हैं। आभ्यांतरिक कृमियों में श्लेष्मज मुख्य हैं। ये मधुरान्न, गुड़, दूध, दही, मछली व नए चावल के भात से उत्पन्न होते हैं। अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, च्युरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध नामक इन कृमियों के सात प्रकार कहे गए हैं। अन्य प्रकारों में केशाद, रोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस व मातर के अतिरिक्त ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, शूलाख्य तथा लेलिह हैं। (अ. १६५, वा. नि. अ. १४ तथा सुश्रुत. अ. ५४)

तत्र वातात्कफात्पित्ताच्छरीराणां समुद्भवाः।
आगंतूनां समुत्पत्तिः कीटशीतादिभिर्भवेत्॥ १६६॥

पेड़ों की शरीर रचना की आन्तरिक व्याधियों में वात, पित्त व कफ जन्य व्याधियां मुख्य हैं जबकि बाह्य व्याधियों में कीट-पतङ्गों के साथ ही शीत, ग्रीष्म, वर्षादि ऋतु जन्य व्याधियाँ होती हैं।

वराहमिहिर ने कहा है— शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता। अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसश्रुतिः॥ (५४, १४)

वात व्याधिः

तत्र रूक्षकषायादि द्रव्यैरत्यर्थ सेचितैः।
भूमि संशोषणाद्वृक्षे भवन्त्यनभजागदाः॥ १६७॥

वृक्षों को वात व्याधि जन्य रोग तब होते हैं जबकि भूमि में अत्यधिक मात्रा में रूक्ष, कषायादि तत्त्वों को प्रदान किया जाता है या ऐसी सूखाने वाली वस्तुएं मिल जाती है।

लक्षणाः

ते कार्श्यकुकृता ग्रंथि गुटिकारूढ पत्रता।
कर्क्कशाल्परसास्वादुफलता वेति कीर्त्तिताः॥ १६८॥

वात व्याधि जन्य वृक्ष के रोगों के लक्षण इस प्रकार जानने चाहिए- तने का कृश हो जाना, पत्ती और तने पर गाँठें हो जाना, फलों की कठोरता एवं कम रसीला होना, मीठास की कमी हो जाना आदि।

कफ व्याधिः

स्वादु स्निग्धाम्ल शीताद्यैर्द्रव्यैरत्यर्थ सेचितैः।
हिमागमे-वसंत च भवन्ति कफजागदाः ॥ १६९ ॥

पेड़ों में कफ जन्य व्याधियाँ प्रायः जाड़ा या वसन्त ऋतु में होती है। इनका कारण है यदि उक्त अवधि में पेड़ों को मीठा, तैलीय, अम्लीय एवं अधिक शीतलता देने वाले द्रव्यों से युक्त पानी या आहार को अत्यधिक मात्रा में दिया जाए।

लक्षणाः

ते चातिकाल फलता पाण्डुत्वं-कुब्ज-पत्रता।
अवृद्धि फलिते नीरसता चेति प्रकीर्तिताः ॥ १७० ॥

इसके अन्तर्गत फल धारण करने में अधिक काल लगना, पीलापन, पत्तियों का मुड़ जाना, फलों की वृद्धि नहीं होना, असमय फलना, नीरस होना आदि व्याधियाँ भी होती है।

पित्त व्याधिः

कट्वम्ल-लवणैस्तीक्ष्णैर्द्रव्यैरत्यर्थ सेचि(वि ?)लैः।
भवन्ति पित्तजा रोगा ग्रीष्मकाले घनात्यये ॥ १७१ ॥

पौधों में पित्तज दोष ग्रीष्मकाल और बादलों के आगमन काल में प्रकट होते हैं। इसका कारण पेड़ों को खनिज, कटु, अम्लीय एवं लवणीय आदि तीक्ष्ण द्रव्यों से सींचा जाना है।

लक्षणाः

ते (तेणी ?) पीतपत्रताऽकाल फलस्त्रावो विशोषणं।
पत्र-पुष्प-फल(र्ल ?)म्लानिः सदनं चेति प्रकीर्त्तिताः ॥ १७२ ॥

पित्त व्याधि होने पर पेड़ों की पत्तियां अकाल ही पीली पड़ जाती है, फल असमय ही गिरने लगते हैं, पेड़ सूखने लगता है, पत्र, पुष्प व फल म्लान पड़ जाते हैं या पीले पड़कर नष्ट होने लगते हैं।

अन्यान्य हेतवः

कृमिसंजग्धमूलानि शोषण पीतपत्रता(भा ?)।
भवेच्चं (च्च ?)डा तपार्त्तानां पल्लवम्लानिरुल्वणा ॥ १७३ ॥

कई बार जड़ों में कृमि लग जाएं तो भी पेड़ सूखने लगते हैं और पत्ते पीले पड़ जाते हैं। तीव्र ताप या तापघात के कारण भी पल्लव म्लान होकर लवना जाते हैं।

प्रचण्डपवनोद्वेगैर्भङ्गोन्मूलनमोटनं।
भ(ल ?)ग्नस्त्रस्त विभेदेन तत्र भङ्गो(भगो ?)द्विधा भवेत्॥ १७४॥

प्रचण्ड हवाओं के प्रभाव से भी पेड़ टूट जाते हैं, जड़ों से उखड़ जाते हैं या झुक जाते हैं। यही नहीं, भग्न होकर विभेदित हो जाते हैं या दो फाड़ हो जाते हैं।

वह्निवक्षादिजु(यु ?)ष्टानान्तदङ्ग परिशोषणं।
भूमेर्निःसार भावेन पानीया भावतस्तथा॥ १७५॥

पेड़ आगजनी के शिकार होकर या तड़ित से भी सूख जाया करते हैं। इसी प्रकार मृदा के सूखते जाने या निस्सार होने से भी उक्त लक्षण प्रकट होते हैं।

सर्व्वभूरुहजातीनां शोषः समुपजायते।
कुठारा(क्रवारा ?)द्यभिघातेन(मु ?) भूरुहाणां व्रणो भवेत्॥ १७६॥

सभी प्रकार के पेड़ तब भी सूख जाते हैं या उनका विकास रूक जाता है जबकि उन्हें कुठार-कुल्हाड़ी आदि के वार से घाव या व्रण हो जाते हैं।

अव्रणेपि परिस्त्रावो जायते कफदूषणात्।
मिथ्योपवारतो रोगो यथास्वं वातजादयः॥ १७७॥

कफ के दूषित होने पर बिना व्रण या फोड़े के भी पेड़ स्त्रावित होने लगते हैं। ये ही लक्षण वात व्याधि के दौरान यदि त्रुटिपूर्ण उपचार किया जाए तो भी स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं।

दिने-दिने पचीयन्ते पत्र-पुष्प-फलानितेः (व्रिन्वितेः)।
अत्यंबु सेच(सैव ?)या घर्म्माहू दोषात्काल दोषतः॥ १७८॥

वातजन्य व्याधि में पेड़ की पत्तियों, फूलों व फलों का गिरना आरम्भ हो जाता है। जब पेड़ों की अधिक सिञ्चाई होती है, अधिक गर्मी होती है या दूषित मिट्टी में रोपण हो अथवा काल भेद के दौरान भी उक्त प्रकार के रोग-दोष दिखाई देने लगते हैं।

पाण्डुरोगं-

क्रुद्धा वातादयो दोषाः पाण्डुरोगं प्रकुर्व्वते।
तेनार्त्ताः शाखिनः सन्ति पाण्डु स्कन्ध फलच्छदाः॥ १७९॥

वात, पित्त और कफ रोग के दूषित हो जाने पर पेड़ों को (तीनों ही प्रकार का)

पीलिया रोग हो जाता है। इसके लक्षण हैं पीड़ित वृक्षों के तने, शाखाओं, फल आदि का पीला पड़ जाना।

आयुर्वेदिक सिद्धांतों में व्यक्तियों के पाण्डुरोग के पाँच प्रकार बताए गए हैं- वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं मृत्तिका-भक्षणजन्य। च. चि. १६, सु. उ. तं. अ. ४३ व अष्टाङ्ग. २)

बीजदोषाः

बीजस्य दोषाद कृतोपचारान्मिथ्योपचारादपचारतो वा।
क्रुद्धा प्रकुर्व्वन्ति समीरणाद्या वन्ध्यान शेषान वनीरुहाश्च (श्चां ?)॥ १८०॥

बीज के दूषित होने, उपचार के गलत हो जाने या उपचार पर उपचार किए जाने से भी खराब हुए बीजों से वातादि व्याधियां हो जाती है और वे बांझ हो जाते हैं और उत्पादन की क्षमता खो बैठते हैं।

दौर्गन्ध्यं गन्धविभ्रंशः पत्र-पल्लवकुब्जता।
पिपीलिकाभिषङ्गाच्च पानीया जीर्णतो भवेत्॥ १८१॥

अत्यधिक सिञ्चाई के कारण पेड़ों को अपच हो जाता है। चिंटियों के कारण लग जाने से पेड़ों की मूल गन्ध जाती रहती है और दुर्गन्ध आती है। इससे पत्र मुड़ने या बौने होने लगते हैं।

द्रुमविनाश हेतवः

दुलवह पवनान्य वृक्षघर्षाः सतत्तमनातपदेश संस्थितिश्च।
खगनिचयनिवास वल्लितानोपगल तृणानि च शाखि नाशकानि॥ १८२॥

आग, वायु, अन्य निकटवर्ती वृक्षों से टकराव, लगातार अन्य वृक्षों की छाया में बने रहना, विभिन्न पक्षियों का जमगट बने रहना, अमरबेल-वल्लरियों का अत्यधिक लिपटे रहना और खरपतवार का उग आना- इन कारणों से भी वृक्ष अपने विकास को प्राप्त नहीं होता, वरन् विनाश के रास्ते पर जाता है।

इति विविधगदान वेक्ष्य नित्यं निज-निज कीर्त्तित लक्षणै (णौ ?)रमीभिः।
वरतस्मतिसल्लसत्प्रयत्नो धरणिरुहेषु चिकित्सितं विदध्यात्॥ १८३॥

इति रोगज्ञानाध्यायः॥

उपर्युक्त विभिन्न कारणों को सर्वदा ध्यान में रखते हुए, पेड़ों की व्याधियों के कारणों का परीक्षण कर ही उनका उपचार किया जाना चाहिए। यह ज्ञातव्य है कि उपचार के लिए परामर्श उसी का लिया जाए जिसके उद्योग में उच्च बौद्धिक क्षमता हो। उसकी

परामर्श पर ही वृक्षों के बचाव के लिए चिकित्सा की जानी चाहिए।

... ... ।

... ... ॥ १८४ ॥

अथ चिकित्सा-

वातादीनोपचार-

जयेद्वातभवान् रोगान्मांस-मेदो-वसा-घृतैः।

सेकः(कुणप तोयैश्च) सर्व्व वात विकारनुद्॥ १८५॥

वात व्याधियों के उपचार के लिए वृक्षों को मांस, मेद, वसा और घृत दिया जाना चाहिए। कुणप जल (?) का प्रयोग भी इसके लिए किया जा सकता है।

अन्यः

अरिष्ठ-गोशृङ्ग-तुरङ्गकेशो-शणैः ससर्प्पिः शिशु(सिसु ?)मार तैलेः।

सकोलमेदोभिरुहारधूपैर्निवा(वः ?)रयेत्मा तरु रोगमाशु॥ १८६॥

अरिष्ठ, गाय के सींग, घोड़ के केश, शण, घी, शिशुमार के तेल व कोल के मेद के मिश्रण की यदि पेड़ों को धूनी दी जाए तो वात रोग तत्काल दूर हो जाते हैं।

कफरोगोपचार-

कषायैः कटुकैस्तीक्ष्णैः (रोगान्) कफ कृतात्जयेत्।

पञ्चमूलं कृत(ता ?)क्काथैः सुरभी सलि(ल ?)लेन तु॥ १८७॥

कफ से हुए कषाय, कटु व तीक्ष्ण रोगों के शमन के लिए पञ्चमूल क्काथ का प्रयोग किया जाना चाहिए।

गरुडपुराण में पञ्चमूल क्काथ में बिल्व, शोणा या श्योनाक, गम्भीरी या श्रीपर्णी, पाटल या पाढर तथा अग्निमान्द्य वृक्षों की गणना की गई है। (अ.१६८)

सितसर्षप कल्कं च मूले दत्वा निषेचयेत्।

तिलभूति(नि ?)जलैः सर्व्व कफरोग निवृत्तये॥ १८८॥

सफेद सरसो के कल्क या लई को यदि पेड़ों की जड़ों को दिया (आलेपित किया) जाए और उस पर तिल व राख मिश्रित जल का छिड़काव करें तो कफ रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

उद्धृत्यांह्रिमृदं तत्र रूक्षामन्यां मृदं न्यसेत्।

वला सरोगिणां प्राज्ञस्तद्रोग विनिवृत्तये॥ १८९॥

कफजन्य व्याधियों के शमन के लिए वृक्ष के चारों ओर फैली जड़ों को हटा लें और गड्ढ में नवीन, सूखी हुई मिट्टी भर दें।

पित्तरोगोपचार-

शीतलैर्मधुरप्रायैर्द्रव्यैः पित्त समुद्भवान्।
सर्व्वभू(रु ?)ह जातीनां रोगानयनयेत्सुधीः ॥ १९० ॥

पित्तज व्याधि होने पर पेड़ों के लिए शीतल, मधुर द्रव्यों की विधि से उपचार करने वाला सुविज्ञ होता है।

क्षीरेण-मधुमिश्रेण यष्टिमधु-मधूकजैः।
पिश्च(क्ष ?)रोगाद्विमुच्यते (न्ति ?) सिक्ताः क्वाथै ते(श्व ?) शाखिनः ॥ १९१ ॥

पित्तज व्याधियां होने पर वृक्षों को दूध, शहद, मुलेठी एवं मधुक का क्वाथ तैयार कर देना चाहिए।

गरुडपुराण में लघुपञ्चमूल क्वाथ को वात पित्त विनाशक व ओजवर्द्धक कहा गया है। लघुपञ्चमूल क्वाथ में शालपर्णी जो एकाङ्गी नामक ओषधि है, पृश्निपर्णी या पेठवन, दो बृहति या भटकैया तथा गोक्षुर या गोखरु की गणना की गई है। (अ.१६८)

फल-त्रिफलजैः सिक्ताः सर्प्पिर्मधु समन्वितैः।
मुञ्चन्ति भूरुहाः सर्व्वे रोगान्वित्त समुद्भ(द्ग ?)वान्॥ १९२ ॥

पित्त व्याधि से छुटकारे के लिए पेड़ों को फूलों का क्वाथ, त्रिफला, घी व शहद का मिश्रण देना चाहिए।

कृमिजन्योत्पातचिकित्सा-

उद्धृत्यमूलतः प्राज्ञा कृमीन् कांडरकादिकान्।
निषिञ्चेच्छीत सलिलैर्भूरुहान् सप्तवासरान्॥ १९३ ॥

काण्ड, शाखाओं पर कृमियाँ होने पर प्राज्ञजनों को चाहिए कि वे पेड़ को सात दिनों तक ठण्डे जल से सिञ्चित करें।

अन्यदप्याह-

पयः कुणप-भिल्लोट-वसा(चा ?)गोविद्जलं जयेत्।
सिद्धार्था-व्द(?) वचाकुष्टातिविषा लेपनं कृमीन्॥ १९४॥

दूध, कुणप, भिल्लोट, वसा, गाय के गोबर का जल में घोल बनाकर देने से और सफेद सरसो, वचा, कुष्ठ, अतिविष के लेपन किए जाने से भी कृमियों से छुटकारा मिल जाता है।

अन्यदप्याह-

सिद्धार्थ-रामठ-विडङ्ग-वचोष्णे-गोमांसांबु-

सैरिभविषाण कपोतमांसैः।

भिल्लातचूर्णसहितैर्विटपे प्रधूपः

सद्योजये कृमिचयंकिल भू(रु ?)हाणां॥ १९५॥

सफेद सरसो, रामठ (हींग), विडङ्ग, वचा, उषणा, गोमांस मिला पानी, सैरिभ विषाण या भैंसे का गोबर, कपोत का मांस और भिल्लात चूर्ण के धुएँ के प्रयोग से पेड़ों को कृमियों के प्रकोप से मुक्त किया जा सकता है।

लेपो विडङ्गैः सघृतैर्निषेकः क्षारांबुना सप्तदिनानि यावत्।

गोमांस-सिद्धार्थ तिलोपनाहः कांव्रारकादीनपहंति जन्तून्॥ १९६॥

विडङ्ग के लेप, घी सहित क्षारीय जल से सात दिनों तक सिञ्चाई तथा गोमांस, सरसो, तिल आदि सामग्री के लेपन से कांव्रा (रोम वाली लट) आदि से छुटकारा पाया जा सकता है।

सोमेश्वर का मानसोल्लास में भी यही मत है- विडङ्गीसिङ्गुसन्धूरमारिचारति विषावचा। भालातकं तथा शृङ्ग माहिषं समभागतः॥ एतैर्विरचितौ भूमौ निहन्य कृमिकीटकम्। उद्याने पादपानां तु सर्वव्याधि विनाशनम्॥ (५, १, ३१-३२)

लतांर्थ प्रयोगाः

सेचये कृमिभिर्जग्धां लतां च खलिकाजलैः।

जयेद्धस्मेष्टकाचूर्णैर्द्धूलनं च कृमीन् दले॥ १९७॥

यदि लताओं में कृमियों का रोग हो तो खल मिश्रित जल पिलाएँ और बेलों पर भस्म तथा ईंटों के बुरे का छिड़काव करें।

व्रणित्तरुचिकित्सा-

जन्तुघ्न-तिल-गोमूत्र-सर्प्पिः-सिद्धार्थ लेपितः।

संसिक्तःपयसा जन्तुकृतः संरोहति व्रणः॥ १९८॥

वृक्षों पर यदि जन्तुओं से व्रण या घाव बना दिए हों तो विडङ्ग, तिल, गोमूत्र, घी और सिद्धार्थ या सरसो मिश्रित घोल दें तथा उपर से दूध भी दिया जाए।

हिमतापादिपीड़ित्तरुचिकित्सा-

हिमचण्डोतपार्त्तानां कार्यमाच्छादनं वहिः।

कुणपांबु पयोभिश्च परिषेकः प्रशिस्यते(प्रसिस्यते ?)॥ १९९॥

इसी प्रकार जो पेड़ बर्फबारी या ओलावृष्टि, अति ताप आदि से प्रभावित हो गए हों तो उन्हें आवरण से बाहर से आच्छादित कर दें तथा कुणपजल, दूध से सिञ्चना चाहिए। इससे उन्हें आराम मिलेगा।

छिन्नतरुचिकित्सा-

प्लक्षो(फ्रक्षो ?)दुम्बर वल्कल घृत-मधु-मदिरा-पयोभिरत्वतया।
सुदृढं पलालल रज्ज्वा(ज्वा ?) वद्धा संभिप्यतैरेव॥ २००॥

टूटे हुए पेड़ को चावल की रस्सी से सुदृढ़ता के साथ बाँध दें और उसे पाकड़ व उदुम्बर की छाल, घी, शहद, सुरा और दूध से आधूपित करें।

आपूर्य सारमृद्भिर्महिषीक्षीरेण सपदि संसिक्ताः।
सलिला पूरित मूला भवन्ति सुस्था महीरुहाभग्नाः॥ २०१॥

उक्त उपचार के बाद पेड़ के चारों ओर मृदु मिट्टी भर दें और भैंस के दूध और वृष्टि जल से सिञ्चाई करें तो वह पुनः फूट उठता है।

... ... ।
... ... ॥ २०२॥

हन्यमानतरुचिकित्सा-

स्रस्तशाखाश्च तत्स्थाने संलिप्ता मधु-प्पिषा।
सिक्ताः पयोम्बुभिः सन्ति शाखारुद्ध नभस्थला॥ २०३॥

यदि किसी पेड़ की शाखाएं गिरने लगे तो शाखा के तड़कने वाले स्थान पर शहद व घी के मिश्रण का लेप करें। उस पर दूध मिले पानी का छिड़काव भी करें। ऐसा किए जाने पर वह शाखा पुनर्जीवन पाती है और गगनचुम्बी हो जाती है।

अथाग्निदग्धतरुचिकित्सा-

वह्निदग्धाश्च तत्स्थाने छित्वाशिका पयोवुभिः।
कुलीरपर्प्यराद्यैश्च धूपिता स्युः सुपल्लवाः॥ २०४॥

जिस पेड़ की शाखाएं जल गई हों, तो उनको पृथक् कर दें। जले हुए भाग को हटाने के बाद उस पर जल मिश्रित दूध से सेचन करें तथा केंकड़े के कवच आदि का धुआँ दे तो उस पर नवाङ्कुर फूटते हैं और अच्छे पल्लव निकलने लगते हैं।

सर्व्वाङ्गे पद्मिनी पङ्कैर्लिप्ता वह्निकरालिताः।
कुणपांबु पयः सिक्ता सन्ति शाखा-वृन्ताम्बराः॥ २०५॥

आग से झुलसे हुए वृक्ष के सभी छोरों पर पद्मिनी और कीचड़ का आलेपन करें और फिर कुणप जल प्रदान करें। इससे उसकी शाखाएं पुनः फूट जाती है तथा वे आकाश को छूने लगती है।

विश्ववल्लभ में इसका यह प्रयोग भी बताया गया है- कर्कन्धुमज्जामधुनावलिप्तः कङ्केनलिप्तः कुणपाम्बुसिक्तः। प्ररोहमायान्त्यनलेन दग्धः क्षीरातसीलिप्ततनुश्च शाखी॥ (८, ५२)

अथ विद्युद्धत्तरुचिकित्सा-

विदारी-शर्क्करा-नागजिह्वा-तिल विलेपिताः।

सन्ति सत्पल्लवा वज्रदग्धाः सिक्ता पयोम्बुभिः॥ २०६॥

बिजली के गिरने से क्षतिग्रस्त हुए वृक्ष से पुनः अच्छे पत्ते फूटने लग जाते हैं यदि उसे विदारी, मिश्री, नागजिह्वा, तिल के मिश्रण से विलेपित किया जाए और दूध मिश्रित जल का सेचन किया जाए।

विश्ववल्लभ में विद्युत्पात से आहत वृक्ष की चिकित्सा विधि इस प्रकार बताई गई है— मधूक-मुद्रा-तिल-माषचूर्णैः सशक्तु दुग्धैर्विनिषिक्त मूलः। प्ररोहयत्येव तरुश्च विद्युन्निपातदग्धोऽचिरेण शश्वत्॥ (८, ५३)

शुष्कतरुचिकित्सा-

शर्क्करा-म्बु-तिल-क्षीरैः सेकाल्लेपात्समन्ततः।

पद्मिनी-कर्दमैर्ल्लेपाद्वह्नि शोषः प्रशाम्यति॥ २०७॥

शर्करा मिश्रित पानी, तिल, दूध के प्रयोग तथा पद्मिनी एवं कीचड़ का आलेपन करने से आग से जलकर सूखे हुए वृक्षों की पीड़ा दूर होती है।

शोषेनिःसार मृद्भूतेतां हरेत्मूल मृत्तिकां।

अन्यां सारवन्ति तत्र न्य(म्य ?)सेत्सिञ्चेत्पयोम्बुभिः॥ २०८॥

यदि निस्सार हुई या मिट्टी की खराबी के कारण वृक्ष सूखते दिखाई दें तो वह मिट्टी हटाकर नई मिट्टी भर दें और वृक्ष को दूध मिश्रित जल से सिञ्चित करें।

जलाभाव समुद्भूते विशोषे परिषेचयेत्।

क्षीराम्भोभिः कुलीराप्व धूपैः पंधूपयेच्चातान्॥२०९॥

यदि जलाभाव से वृक्ष सूखते हों तो थाले में दूध मिश्रित पानी दें और कुलीर या केंकड़े की त्वचा की धूनी दें।

न्यग्रोधोम्दुवरोर्वल्क गोमयक्षौद्रसर्प्पिषा।

प्रलेपेन(पने ?) विधानेन व्रणो रोहति शाखिनां॥ २१०॥

वट, उदुम्बर की वल्क, गाय का गोबर, क्षौद्र या शहद, घी के मिश्रण का लेप करने से वृक्षों के घाव दूर हो जाते हैं व शाखाएं फूटती हैं।

विशेषमाह-

धव-श्रीपर्णिका-श्यामा-वेतसो-र्जुनवल्कलैः।*

परिश्रितः प्रलेपेनपरिस्त्रावः प्रशाम्यति॥ २११॥

इसी प्रकार धव या धोकड़ा, श्रीपर्णी, श्यामा, वेतस और अर्जुन के पेड़ों की छाल से तैयार मिश्रण का लेप किए जाने से भी व्रण जैसी व्याधि से शीघ्र ही छुटकारा पाया जा सकता है।

मिथ्योपचारनिर्मूलनार्थ-

विडङ्गचूर्ण सन्मिश्रसान्द्र(ष्व ?)पङ्क विलेपनैः।

जयेज्जलपयः सेकै रोगान्मिथ्योपचारजान्॥ २१२॥

यदि वृक्ष अनुचित उपचार किए जाने से प्रभावित हो तो वायविडङ्ग के चूर्ण, और पानी में कीचड़ मिलाकर सेचन किया जाना चाहिए।

यव-गोधूम सम्भूतचूर्ण क्षौद्र पयोम्भसां।

सेकैः सप्ताहमात्रेण पाण्डुरोगः प्रशाम्यति॥ २१३॥

वृक्षों में पीलिया या पाण्डुरोग का सात दिन में उपचार किया जा सकता है यदि उक्त वृक्षों को जौ, गेहूँ, शहद और दूध मिश्रित पानी से सींझा जाए।

वन्ध्यतरुचिकित्सा-

वन्ध्या महीरुहाः सिक्ताः पयः कुणपवारिभिः।

भवन्तिपुष्पफलितैः सर्व्वाशा परिपूरकाः॥ २१४॥

जो वृक्ष अनुत्पादक या बांझ हों, वे भी तब फल-फूलों से युक्त दिखाई देने लगते हैं जबकि उन्हें दूध में कुणप जल में मिलाकर दिया जाए।

तिल-यव-कुलत्थ-माषै-र्मुद्गन च संभृतैः शीतैः।

वन्ध्यास्तरवा(चो ?) नित्यं पुष्पफलैः पूरयंत्याशां॥ २१५॥

तिल, जौ, कुलुत्थ, उड़द, मूँग को शीतल जल में मिलाकर सिञ्चाई करने से भी बांझ वृक्ष नित्य पुष्प व फलों से लकदक रहने लगते हैं।

---

*मातृका में यह श्लोक अशुद्ध रूप में है—

धवश्रीपर्णिकाश्यामावेतसोर्जुनवल्क गोमयक्षौद्रसर्प्पिषा। प्रलेपनेलैः।

विशेषमाह-

तिलाजाविशकृच्चूर्णं पृथगाढ(ट ?)क सम्मितां।

सक्तु(क्कु ?)प्रस्थं जलद्रोणं गोमांसतुलयान्वितम्॥ २१६॥

तिल और बकरे व भेड़ की मेंगनी के चूर्ण को एक आढक लें, एक प्रस्थ सक्तु तथा एक द्रोण पानी का घोल तैयार करें। इतना ही गोमांस (एक तुला) भी मिलाएं।

सप्तरात्रौषितं चैतत् सेकात्पुष्पफ(फवल ?)लप्रदम्॥ २१७॥

इस मिश्रण से यदि सात रात्रि तक वृक्षों का सेचन किया जाए तो वे फूल व फल देने लगते हैं।

अन्योपाय:

व्याघ्र-चित्रक-गोमायु मांसभूत जलोल्वणै:।

करेणु-माहिषी-क्षीरै: सिक्ता: स्युस्ते फलप्रदा:॥ २१८॥

वे वृक्ष भी फलों का उत्पादन करने लग जाएंगे जिन्हें व्याघ्र, चित्रक, लोमड़ी के मांस, हाथी व भैंस के दूध के मिश्रण से सींझा जाता है।

अजीर्णांबु कराग्रेण भित्वा कृष्य विलिप्य च।

प्रतिमूलं किल क्षौद्र-विडङ्गाद्यैर्जलं न्यसेत्॥ २१९॥

अधिक जल दिए जाने से अजीर्ण हुए वृक्षों को नाखुन से खुरचकर जड़ सहित निकाल दें और प्रत्येक जड़ पर शहद और वायविडङ्ग के मिश्रण का लेपन करें और जल से सेचन करें। यह उनके लिए कारगर प्रयोग है।

गो-कुक्करास्थि मार्जारपुरीष परिधूपिता:।

भवन्ति नीरुजा: शाकजातयस्त्रिपुसादय:॥ २२०॥

गाय व श्वान की अस्थि, बिलाव की विष्ठा से परिधूपित किए जाने से ककड़ी वर्गीय सब्जियां आरोग्यता तो प्राप्त करती है।

धूपनं (नाति) तीक्ष्णं न बालेषु प्रयोजयेत्।

मृद्वय्यालेपनं चाति मतिमान् परिवर्जयेत्॥ २२१॥

शिशु पौधों को अधिक धूप नहीं देनी चाहिए। इसी प्रकार उन पर अधिक प्रलेपन भी नहीं करना चाहिए। समझदारों को धूप व आलेप का प्रयोग अति करने का विचार त्याग देना चाहिए।

इति विविध विधिं प्रयुक्त योगैरपि

न हि शान्ति मुपैति यस्य रोगः।
तमपरसु विशिष्ट (द्रेहे ?) भूमिदेशे
धरणि रुहं प्रतिरोपयेन्म(त्म ?)नीषी॥ २२२॥

इति रोगोपशमाध्यायः।

इस प्रकार रुग्ण वृक्षों के लिए कुछ उपाय कहे गए हैं। उक्त उपचारों के बाद भी यदि द्रुम व्याधियों का उपचार नहीं होता दिखे तो पेड़ को उखाड़कर अन्य स्थान पर रोपित कर देने में ही समझदारी है।

अथ विचित्राध्यायः

नानाविषयसंग्रहकरणहेतुं-

सदा पुष्पफलापत्तिरकाल फलपुष्पता(: ?)।
तथा गन्ध समुत्पत्तिरनस्थित्वं रसान्यता॥ २२३॥

अब पौधों में जिन प्रयोगों से अचरज उत्पन्न किया जा सकता है, उनका वर्णन किया जा रहा है। इनमें मुख्य हैं कि किन विधियों से पेड़ वर्ष पर्यन्त फूल एवं फल देता है, बिना मौसम के असमय ही फल-पुष्प देता है, गन्ध उत्पन्न करता है, अनस्थी और गुठली रहित फल देता है तथा रस बदलता है।

वर्णप्रवर्त्तनं पुष्पपरिवृत्ति(:) फलान्यता।
गन्धप्रवर्त्तनं गन्धवंधनं वल्लि पुष्पता॥ २२४॥

उन विधियों का वर्णन भी आगे किया जा रहा है जिनके प्रयोग से पेड़ों के पुष्पों का वर्ण परिवर्तित हो जाता है, पुष्प परिवर्तित हो जाते हैं और फल भी अन्य हो जाते हैं, गन्ध परिवर्तित हो जाती है, गंध बंध जाती है और वल्लरियां लताएं फूलने लगती है।

लतात्वं वामनत्वं च मिश्रता चिरपाकता।
अपाकः फलदीर्घत्वं नाशः सम्प्रति जन्म च॥ २२५॥

इसी प्रकार वे प्रयोग भी लिखे जा रहे हैं जिनके प्रयोग से पेड़ों को लता के रूप में बदला जा सकता है, पेड़ों को वामनाकार किया जा सकता है, मिश्रित प्रजाति का बनाया जा सकता है, दीर्घ काल तक फलदार बनाया जा सकता है, जिनसे फल पकते ही नहीं हैं, फसल की नष्टता व दीर्घायु एवं पुनर्नवीकरण हो सकता है।

तत्काल फलता पुष्प-फल बीज(वाज ?)न्मपीनता।
वियोनिजननं चेति विचित्रं तद्य(ष्व ?)थाधुना॥ २२६॥

फलों की तत्काल उत्पत्ति, पुष्प व फलों के आकार में बढ़ोत्तरी, उत्पत्ति के साथ ही वृद्धि तथा अन्य प्रजातियों या वियोनिज पौधे तैयार करने जैसी विधियों का भी आगे वर्णन किया जा रहा है।

आदौ कथनम्-

सुगर्त्तके पूर्व्वविधान संस्कृते
सुपक्कमाकंदज बीजमुत्तमम्।
द्विपक्षकं कूर्म्मशशास्त्र संस्थितं
व(वि ?)पेद्विशोष्यार्कमरीवि(चि ?) सञ्चयैः॥ २२७॥

पूर्व में खड्ढ तैयार करने की जिस विधि का निर्देश किया गया है, उसके अनुसार गड्ढ तैयार करें। यहां रोपण से पूर्व पके आम की गुठली को कछुए और खरगोश के खून में भिगोकर एक मास तक धूप में सुखाएं। बाद में इसे रोप दें।

तस्मादजादुग्धनिषेकजातः समुल्लसच्चा तु सहस्त्रशाख।
फलानि पुष्पाणि सदैव धत्ते तरुर्मनोज्ञा(ज्ञा ?)नि न चात्र चित्रं॥ २२८॥

इसके बाद उस पर बकरी का दूध डालें। यह गुठली जब पेड़ बनेगी तो उसकी हजारों शाखाएं होंगी तथा वर्ष पर्यंत उस पर हजारों फल-फूल लगने लगेंगे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पिण्याकजन्तुरिपुगोपलचूर्ण सिक्तैरिक्षोरसैः प्रमथितैरभिषिक्त मूलाः।
मासं फलानि कुसुमानि मनोहराणि भूमीरुहा दधति नूनमकालमेव॥ २२९॥

जिन पौधों की जड़ों को छाछ, गन्ने का रस मिला गोमांस, विडङ्ग तथा तिल से सीञ्चा ज़ाता है तो वे अपने मौसम के अतिरिक्त एक माह के समय तक सुंदर फल-फूल देने लगते हैं।

अकाले फलोपायः

वराहिजीरेक्षुरसै सचन्द्रलेखा घृतैराज्यघटे द्विपक्षसु।
सन्धितैर्मूलमथो विलिप्यमृद्धिः प्रपूर्येक्षुरसाभिषिक्ताः॥ २३०॥

वाराहीजीरा और गन्ने के रस को चंद्रमा की रोशनी में दो पक्ष तक घी के पात्र में रखा जाए। बाद में इसका पेड़ों के मूल पर विलेपन किया जाए और मिट्टी भरकर इक्षुरस से बराबर सिंचाई की जाए।

धूपिताः कुणप-क्षौद्रैः प्रयत्नेन महीरुहाः।

अकाले फल-पुष्पाणि वित(न ?)त्वन्ति न संश(शंश)यः ॥ २३१ ॥

यदि उक्त पेड़ों को इसी की धूप भी दी जाए और कुणप के जल से सीञ्चा जाए तो वे अकाल या असमय ही फल व फूल देने लगते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

अन्यदप्याह-

जम्बू-प्रवालघन-वीरणमूल कल्कैरालिप्य तद्भवजलैरभिछेचितस्य।
आसाद्यचूतविटपी सहकार लक्ष्मीमामोदमोदितमद्धुव्रत सख्यमेति ॥ २३२ ॥

यदि आम के एक सामान्य वृक्ष पर जम्बू, प्रवालघन, वीरण घास या खस के मूल का गाढ़ा लेप चढ़ाया जाए तथा इसी लेप के जल से छिड़काव किया जाए तो वह उच्च गुणवत्ता वाले बहुत फल उत्पन्न करता है।

अथ गन्धार्थ प्रयोगः

अशोकाकलिकादीनां पुष्पवासितयामृदा।
मूलभृतेति सौरभ्यं जायते सुमनोहरम् ॥ २३३ ॥

किसी पेड़ के पास यदि अशोक वृक्ष की कलियों से सुगन्धित मिट्टी भर दी जाए तो उस पेड़ से अति आकर्षक गंध आने लगती है।

बीजरहित फलोपायः

क्रोडीवशाभावितसाधुवी-
जाज्ज्ञाताः प्रवृद्धाश्च वचाभिषेकैः।
फलन्त्यबी(ची ?)जानि फलानि नित्यं
कूष्मण्ड-वार्त्ताक-पटोलकाद्याः ॥ २३४ ॥

कूष्माण्ड या कद्दू, वार्तिक या बैंगन और पटोल आदि के अच्छे बीजों को यदि मादा भालू की मज्जा से अच्छी प्रकार भावित किया जाए और उसी के जल से सिञ्चित किया जाए तो वे बीज रहित फल देने लगते हैं।

अन्यदप्याह-

मधुपुष्पो-त्पल-क्षौद्र-सिता-यष्टी कृतस्तरौः।
पिण्डाविनिहितो मूलरन्ध्रेऽनाशि(सि ?) फलत्वकृत् ॥ २३५ ॥

यदि किसी पेड़ की जड़ के पास एक गड्ढ में मधुकपुष्प, कमल, शहद और मिश्री व यष्टि या मुलेठी की बनाई गोलियां रख दी जाए तो वह पेड़ लम्बे समय तक स्थिर रहने वाले फल देने लगता है।

स्वादार्थ नाना प्रयोगाः

अश्वघ्न-लाङ्गलि-विषां वृहतीद्वपेन
पिण्डीकृतेन परिपूरित मूलरघ्नः।
वृक्षस्त्वीमीभिरभिषेचनतः प्रसूतेक्तं(क्कं ?)
फलं सहज मिष्ट फलोपि(य ?) नूनं॥ २३६॥

अश्वगन्धा, लाङ्गली और छोटी व बड़ी वृहति (भटकैया) के मिश्रण की गोलियां यदि किसी वृक्ष की जड़ के पास गड्ढे या छिद्र में रख दी जाए और उसी से तैयार घोल से यदि पेड़ों का सेचन किया जाए तो वे उस पर तीखे स्वाद वाले फल लगेंगे यद्यपि उनका स्वाद स्वाभाविक रूप से मीठा होगा।

विडङ्ग-यष्टी-यव-कल्क-दुग्धै-र्गुडान्वितैर्ले(ले ?)पनतोति मात्रं।
विलिख्य मूले विटपी स्वभाव तिक्तः सुधाहद्यफ(फे ?)लानि सूते॥ २३७॥

ऐसे पेड़ जो तीखे स्वाद वाले फल उत्पन्न करते हों, यदि उनकी जड़ों पर विडङ्ग, यष्टि, जौ, दूध और गुड़ के मिश्रण का लेपन किया जाए तो वे सुधा जैसे स्वाद वाले फल उत्पन्न करने लगते हैं।

मधूककुसुम-क्षौद्र-यष्टी-द्राक्षा-सिता-यवैः।
उल्लिख्य लेपितः सिक्तो (शिस्तो ?) ध(द ?)त्तेम्लोपि च मिष्टतां॥ २३८॥

यदि कड़वे फल देने वाले वृक्ष की जड़ों को उघाड़कर मधुकपुष्प, यष्टि, अङ्गूर, मिश्री और जौ के मिश्रण का लेपन कर मिट्टी भर दी जाए तो वे मीठे फल देने लगते हैं।

पुष्पार्थ प्रयोगः

निशा-किंशुक-कर्प्पासी-मञ्जिष्ठा-रोध्रवारिभिः।
श्वे(स्वे ?)तं पुष्पं तरोः सेकाद्ध(द्ध ?)त्ते वामीकरद्यु(घु ?)तिं॥ २३९॥

यदि सफेद पुष्प देने वाले वृक्ष को हल्दी, किंशुक, कपास के बीज या बिनौला, मञ्जिष्ठ और लोध्र के मिश्रण से सिञ्चित किया जाए तो वह स्वर्णिम वर्ण के पुष्प उत्पन्न करने लगता है।

अन्यदपि-

मञ्जिष्ठा-दरद-क्षीर-कांक्षी पारावतामिषैः।
श्वेतं पुष्पं तरोध्रवारिभिः श्वेतं पुर्मूललेपात्स्वर्ण निभं भवेत्॥ २४०॥

मञ्जिष्ठा, दरदा, दूध, कांक्षी (मिट्टी विशेष), कबूतर के मांस को मिलाकर यदि

सफेद फूलों वाले पेड़ की जड़ों पर लगाया जाए तो वह सुनहरे रंग के फूल देने लगता है।

अथ फलार्थ प्रयोगाः

फलत्रिक्काथो (कापो ?) यव चूतबीजनीलीद्रवैः संततमेवसिक्ताः।
मूलेचतच्चूर्ण वपेन(चयेन) पूर्णः फलानि सूतेञ्जन संनिभानि॥ २४१॥

त्रिफला चूर्ण के क्काथ, यव, आम की गुठली व नील के मिश्रण के घोल को जिन पेड़ों को दिया जाता है तथा सिञ्चित किया जाता है तो उनके फल अञ्जन या सूरमा के सदृश आने लगते हैं।

अन्यदपि-

यव-किंशुक-मञ्जिष्ठा-निशा-तिल भवैर्ज्जलैः।
कल्कैश्च सेचिता लिप्ताः फलं विभ्रति लोहितम्॥ २४२॥

उन वृक्षों के फल लोहित जैसे लाल उत्पन्न होने लगते हैं जिनको पानी और जौ, किंशुक, मञ्जिष्ठा, हल्दी और तिल के कल्क से आलेपित किया और सिञ्चित किया गया जाता है।

अन्यदपि-

शाल्मलीत्व-ग्निशा-नीली-त्रिफला-कुष्ट-सीन्धुभिः।
लिप्त संसिक्त सूलानां फलं स्याच्छुकपिञ्जरम्॥ २४३॥

उन पेड़ों के फल शुक वर्ण सदृश होने लगते हैं जिनकी जड़ों को शाल्मली (सेमल) के त्वक या छाल, हल्दी, नील, त्रिफला, कुष्ठ और सुरा के मिश्रण से सिञ्चित किया जाता है।

अन्यदप्याह-

नीली-निशा-रोध्र-वरा-तिला-सनै-काशीश(?सीस)
यष्टी सहितैर्विचूर्णि(र्ण्यै)तैः।
प्रकीर्णमूलाः परिखेचिताति(नि ?) जलैः
सुवर्णवर्णानि फलानि विभ्रति॥ २४४॥

उन वृक्षों के फल सुनहरे रंग वाले हो जाते हैं जिनकी जड़ों पर नील, हल्दी, लोध्र, त्रिफला, तिल, असन, कसीस, यष्टि आदि का लेप करने के बाद ऊपर से पानी का छिड़काव किया जाता है।

नूनं कलाय सहिताजगराहि चर्म पूली
कृताति वहुकर्द्दम पूर्णमूलाः।

मांसोदकेन बकुला: सततं निषिक्ता:
पुष्पन्ति चम्पकुसुम प्रचयैर्नितान्तम्॥ २४५॥

बकुल का वृक्ष पर्याप्त पुष्प उत्पन्न करने लगता है यदि उसे मांस, कीचड़ युक्त पानी और नाग और अजगर की केंचुली से लगातार पोषित किया जाए।

वराहमेह: कलानाङ्कोल्हपानीय सेचिता:।
कदलीकुरुते चित्रं फलिता दाडिमीफलै:॥ २४६॥

कदली के पेड़ पर भी अनार के फल लग सकते हैं यदि उसे सूअर के मूत्र व अङ्कोल से सिञ्चित किया जाए।

सूकरवसाभि भावि(र्भात्रि ?)
त बीजाज्ज्ञातस्तथै(ध्यै ?)व एरण्ड:।
पूर्वोक्त(क्क ?) योगसिक्त:
संसूते कारवेल्ल फलं॥ २४७॥

अरण्डी के बीज को यदि सूअर की मज्जा के साथ ही पूर्वोक्त उपायों से उपचारित कर रोपा जाए तो वे कारवेल के समान फल उत्पन्न करने लगते हैं।

अथ मनैच्छितगन्ध प्रयोगा:

अभिलषित कुसुम सुरभि मृत्तिकयापूर्णमूल देशानां(ना ?)।
जलदमुरानतवालकपत्रक सेकेन(नं ?) गन्ध परिवृत्ति:॥ २४८॥

पुष्पों की गंध को मनचाहे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है यदि उनके पौधों की जड़ों को मनोवांछित गंध वाले इत्र के सीञ्चा जाए तथा उनको जलद, मुरा, नत, वालक तथा पत्रक से पोषण दिया जाए।

अन्यदपि-

स्वै: स्वै: प्रफुल्ल कुसुमै रति वासना-
भिर्मद्भिर्नितान्त परिपूरित मूलदेशा:।
मुस्ता मुरानतदलांबु सुराभिषिक्ता गन्धं (ध ?)
परंवितनुतेखिल पुष्पजाति:॥ २४९॥

सभी प्रकार के फूलों वाले पेड़-पौधे अच्छी सुगंध देते हैं यदि यदि उन पेड़-पौधों के आधार के चतुर्दिक प्रचुर मात्रा में उन्हीं पौधों के फूलों का पोषण दिया जाए। उनको मुस्त या मोथा, मुरा, नतदल या नटाभिर की पत्तियों और शराब के मिश्रण से भी सीञ्चा जाना चाहिए।

अन्यदपि-

मेदः पयो-रुधिर-कुष्टयुतोय मेवयोगः

करोति निरतां निज गन्धवृद्धिम्।

सायं स्व-पुष्पसमये विधिवत्प्रयुक्तः

पुंनाग-नाग-बकुलादिक पादपानां॥ २५०॥

पुन्नाग, नाग व बकुल के फूलों की सुगंध में वृद्धि की जा सकती है यदि इन पौधों को शाम के समय, उनके कुसुमित होने के काल में मेद, दुग्ध, रक्त, कुष्ट के जल से भली-भाँति पोषित किया जाए। इससे फूलों की सुगन्धि सघन हो जाती है।

अथ लतार्थ प्रयोगाः

आपूरयेत्प्रचु(वु ?)रगोपल मिश्र मृत्स्या संधानकेन दृढकर्प्परकं विशालं।

यत्नेन तत्र करवीरमुदारगव्य मांसांबु सेक विधिना जनयेन्मनीषी॥ २५१॥

करवीर के पौधे को गोमांस का पोषण दिया जाना चाहिए। ऊपर से गोमय व मांस से भी समय-समय पर पोषण दिया जाए। एक बड़ा व सुदृढ़ खप्पर या कलश जिसमें कि कीचड़ और पर्याप्त रूप से गोमांस हो, वहाँ पर इसे उगाकर साश्चर्य देखें।

खाते गवास्थि परिपूरितके सुदग्धे-

भस्मान्विते सुरभि मांस जलेन सिक्ते।

न्यस्तश्च(स्म ?) भूरि सुरभी पिशिताम्बु

सेकाद्वल्ली च येन परिपुष्पति नित्यमेव॥ २५२॥

उपर्युक्त करवीर के पौधों को इस प्रकार फूलते देखकर उसे एक गड्ढ में रोप दिया जाना चाहिए। इस गड्ढ में रोपण से पूर्व गाय की अस्थियाँ, अच्छी प्रकार से जली हुई राख तथा प्रचुर मात्रा में जल डाला जाना चाहिए। इस प्रकार के उपचार के बाद पौधा बेल तक बन जाता है और नित्य ही पुष्पों से परिपूर्ण रहता है।

अधुना तिन्तिडीविधानमाह-

त्रिफ(तिप ?)लान्वित-तिल-यव-माषजचूर्णैर्जलान्वितैः सिक्ताः।

रजनीचूर्ण वि(पि ?)धूपात्तिन्तिडिकावरलता भवति॥ २५३॥

तिन्तिडी अथवा इमली का पौधा भी एक शानदार बेल बन जाता है यदि उसे त्रिफला चूण, तिल, जौ, उड़द मिले जल से सिञ्चित किया जाए और हल्दी के चूर्ण की धूनी दी जाए।

यह मत वराहमिहिर परीक्षित है— तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं व्रीहिमाष

तिलचूर्णसक्तुभिः। पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया॥ (५४, २१)

अधुना कपित्थबीजरोपणमाह-

धात्री-वचाभयास्पोताश्म(श्यं)पा(मा)नां वेतसस्य च।
शिंशपा-सूर्यवल्लीनामष्ट मूल्य(प ?)तिमुक्तयोः॥ २५४॥
प(य ?)लासिन्याश्च मूलेन शृतैः क्षीरैः कपित्थजं।
सुभाव्य शतधा बीजं मासमास्थाप्य शोधितः॥ २५५॥

कपित्थ या कैंथ के बीज की शीघ्र उत्पत्ति के लिए बीज को दूध के साथ उबालें। उक्त दूध में धात्री, वचा, अभया, आस्फोत, अश्माप, वेतस, शिंशप, सूर्यवल्ली, अतिमुश्कक या तेंदुआ (तिनिस) और पलासिन्या इन सभी की मूलों को डालकर ओटावें। इस प्रकार तैयार दूध में बीजों को दोनों हाथों से सौ ताली बजाने में जितना समय लगे, उतनी देर उस कपित्थ के बीज को रखें। यह प्रयोग मास पर्यन्त कर बीज को शोधित करें।

गर्त्ते वपेज्जले न्यस्तं सर्प्पिः क्षौद्र समन्वितम्।
भस्मगोमय-जन्तुघ्न-तिल-क्रोडामिषोद्भवं॥ २५६॥

उक्त शोधित बीज को एक गड्ढ में बोयें। इसके साथ ही उसे घृत, शहद के साथ ही गोमय की भस्म, विडङ्ग, तिल, क्रोडामिष या भालू का मांस मिला जल भी दें।

रजः संपूरयेदूर्द्ध्वं सुमृद्भिश्चतुरङ्गुलां।
स(शि)क्तु माष-तिल-क्षौद्रै-र्मत्स्य-मांसोदकेन तत्॥ २५७॥
सेचितो वल्लितां याति तज्जातो विटपो ध्रुवं॥ २५८॥

कपित्थ के उक्त बीज की बुवाई के साथ ही गड्ढ को चार अङ्गुल ऊंचाई तक अच्छी गुणवत्ता वाली मिट्टी से भर दें। इस बीज को जौ, उड़द, तिल, शहद, मत्स्य, मांस के पानी से बराबर सींचा जाए तो यह निश्चित है कि वह एक वल्ली के रूप में बदल जाएगा।

बृहत्संहिता में यह प्रयोग वराह ने सर्वप्रथम दिया है— कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोत धात्रीधववासिकानाम्। पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टामूली॥ क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते ताला शतं स्थाप्य कपित्थबीजम्। दिने-दिने शोषितमर्कपादैर्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम्॥ हस्तायतं तद्द्विगुणं गभीरं खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम्। शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रलेपयेद् भस्मसमन्वितन॥ चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवश्च प्रपूरयेद् मृत्तिकयान्तरस्थैः। मत्स्यमिषाम्भस्सहितं च हन्याद् यावद् घनत्वं समुपागतं तत्॥ उप्तं च बीजं चतुरङ्गलाधो मत्स्याम्भसा मांसजलैश्च सिक्तम्। वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमावृणोति॥ (५४, २२-२६)

अथान्येषा लतार्थप्रयोग-

लताम्र मालती(ली ?) राव धातकी(?) माधवी त्वक् (च)।

बहुशो मर्द्दिता(तो ?)द्वीजादविका क्षीर मिश्रया॥ २५९ ॥

वियोनि वृक्षांघ्रि मृदाचिते वटे सम्यक् प्रकीर्णे तिलचूर्णस(श ?)क्तुभिः।

उप्ता दधि-क्षीर-जलव सेचनैर्यथा स्वमेव प्रतिजायते लता॥ २६० ॥

किसी भी जाति के बीज को आम्रलता, मालती, धात्री, माधवी की छाल के मिश्रण में कई बार मर्दित किया जाए और बकरी के दूध में भी रखा जाए। इस प्रकार से उपचारित बीज को यदि किसी गड्ढ में बोया जाकर विभिन्न प्रजातियों के पेड़ों की जड़ों के पास से खोदी गई मिट्टी भरें और उस पर तिलचूर्ण, जौ, दधि, दूध और जल से पर्याप्त सेचन करें तो वह बीज स्वयं भी लता बन जाता है।

अथ वामनकौतुकं-

पुरुष प्रमिते खाते सम्यक् घटिते नवेष्ठकानि च यैः।

जनितोयत्नवता तरुरमलधिया वामनः फलति॥ २६१ ॥

यदि किसी पौधे को एक पुरुष के बराबर (१२० अङ्गुल) गहरे गड्ढे में प्रयास पूर्वक लगाया जाए और नवीन ईंटों से ढक दिया जाए तो वह वामन आकार में होने पर भी फलित होने लगेगा।

अन्यदप्याह-

नातिबालतरुस्कन्धे छित्वा दग्धे (धो ?)ग्नि नामनाक्।

आज्य-गोमय-सिंधूत्व मधु-मांसैर्विलिप्य च॥ २६२ ॥

जो अधिक छोटा न हो, ऐसा एक पेड़ लेकर उसके स्कन्ध को छेदें और वहाँ अग्नि से दाग लगाएं। बाद में उस स्थान पर घी, गोमय, सिंधु नमक, शहद और मांस के मिश्रण का लेप करें।

सिक्तस्तिर्यगधः कील विद्धमूलः पयोम्बुना।

चारुशाखः स्वकालेषु वामनः फलति ध्रुवं॥ २६३ ॥

इसके बाद उक्त पौधे की जड़ में एक कील को तिरछा ठोक दें और गाड़कर दूध मिले पानी से सेचन करें तो उस पर सुन्दर शाखाएं विकसित होने लगेंगी और वामनाकार होकर भी वह पौधा अपनी निर्धारित उम्र में फल देने लगता है।

चतुस्तम्भ कृतालम्वो मूलासन्न कृते वटे।

विन्यस्तो निपुणैः सिक्तो वामनः स्यात्पयोम्बुना॥ २६४॥

चार स्तम्भों वाले किसी आलवाल पर यदि वटादि को विकसित किया जाए और दूध से सेचन किया जाए तो तो वह वामनाकार ही होगा।

अथ उत्पलार्थ प्रयोग:

चिपाट्य(द्य ?) सर्वो(वे ?)त्पल जातिकन्दमेकत्र संघट्य(द्य ?)निबध्य सूत्रैः।
सर्पि-र्मधुभ्यामनुलिप्य चोप्तं तथा-तथा पुष्प चयं दधाति॥ २६५॥

उत्पल की विभिन्न प्रजातियों के कन्दों को उखाड़ें। इनको एकत्रित रूप में यदि धागे से बांधे और घी के साथ शहद से आलेपित कर कन्द समूह को उगाया जाए तो वे इस कमल-गुच्छ के रूप में एक ही पौधे पर अलग-अलग रंग के पुष्प उपजाना शुरू कर देंगे।

एवं निबद्ध्य काण्डानि करवीरे विमिश्रकः।
दाडिमीजातिभेदादौ कृतः संकुरुतेद्धुतम्॥ २६६॥

इस प्रकार रूपान्तरण के अनेकानेक आश्चर्यकारी प्रयोग करवीर के काण्डों को एकत्रित कर और दाड़िम की विभिन्न प्रजातियों के तनों को आपस में बाँधकर किए जा सकते हैं।

विशेषमाह-

मातङ्गजमदाक्तेन प्लवङ्गनलकेन तु।
फलानि विद्ध मूलस्य पचन्ति न हि वत्सरं॥ २६७॥

किसी वृक्ष के फलों को वर्ष पर्यंत नहीं पकने दिया जा सकता है यदि जड़ों को उन्मत्त हाथी के रक्त में डूबे हुए बंदर के नल स्थान की हड्डियों से छेद दिया जाए।

सद्योहतवृषस्कन्ध चर्म्मणानत्यते दृढं।
महीरुहस्य शाखाया तस्याः पाकः फले न हि॥ २६८॥

यदि तत्काल मारे गए बैल के स्कन्ध की खाल से किसी पेड़ की कोई विशेष शाखा दृढ़ रूप से बांध दी जाए तो उस शाखा के फलों का पकना बंद हो जाएगा।

निहितासित वृषकंवलभव चर्म्म सप्तपरिणद्धा।
या शाखा खलु तस्याः फलानि पाकं न गृह्णन्ति॥ २६९॥

इसी प्रकार किसी पेड़ की वह शाखा जो श्याम वृषभ के गलकम्बल की चमड़ी की सात गांठ लगाकर बांध दी जाए तो भी उस शाखा पर फल नहीं पकेंगे।

लतारूपेणपरिवर्तन-

दन्तीदन्तरजो वह्नि तप्त हेमशलाकया।
रम्भा स्युर्वल्लरी मूले विद्धा दीर्घ फलप्रदाः॥ २७०॥

हाथी दाँत के जलाने से उठी आग पर तप्त सोने की सुई से यदि किसी केले के पेड़ की जड़ को विद्ध कर दिया जाए तो वह पेड़ लता के रूप में बदल जाएगा और उसमें वृहद् आकार वाले फल लगने लगेंगे।

करीष कोलेभतुरङ्गमास्थि कृशानुसंतापित लोहसूच्या।

विद्धाः कदल्यः खलु वल्लिमूले करींद्र दंतायत सम्पदाः स्युः॥ २७१॥

पूर्वोक्त कदली लता की जड़ को यदि गाय के गोबर, हाथी, घोड़ा एवं सूअर की हड्डियों को जलाने से उठी आग में परितप्त लोहे की सुई से विद्ध किया जाए तो वह हाथी के दाँत जैसी फल संपदा को उगाने लगती है।

अन्यदप्याह-

वराहदंष्ट्रा नलिकाकयेर्व्वा दानाभि पूर्णा निहिता प्रयत्नात्।

गर्भस्य मूले मुस(श ?)ल प्रलम्बं फलं कदल्याः कुरुते नितान्तं॥ २७२॥

कदली का पेड़ मूसल के आकार के फल देने लगेगा यदि उसकी जड़ में वराह की दाढ़ों या बंदर के मांस भरे खोखले दाँतों को रखा जाए।

अन्यदपि-

पयस्योर्जुन तर्क्कारी लवणांबु प्रलेपित:।

द्रुमोनश्य(रप ?)ति सर्वत्र(त्रा ?)त्वचा कोलास्थि कीलित:॥ २७३॥

पयस्य, अर्जुन और तरकारी पर यदि लवणीय पानी का लेपन कर दिया जाए तो वे नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार कोल या सूअर की अस्थि से यदि पेड़ों को खुरच दिया जाए तो वे नष्टता को प्राप्त होते हैं।

अन्यदपि-

सिक्तस्तन्दुलतो येन नालिकेरो व(वि ?)नस्यति।

कर्प्पासो न चिरान्निंबपत्र संभृतवारिणा॥ २७४॥

यदि चावल की धोवन से नारियल के पेड़ों का सेचन किया जाए तो नारियल के पेड़ों का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार कपास के पौधे या वण्या तत्काल नष्ट हो जाएंगे यदि उनको नीम की पत्तियों का घोल दिया जाए।

अन्यदप्याह-

नाशयेत्कदली मूले निहिता हिङ्गुवर्त्तिका।

कूष्माण्डैर्व्वारुकादीनि कुलीरास्थि विधूपनम्॥ २७५॥

हिङ्गु नामक पेड़ की एक डाली यदि कदली की जड़ में रख दी जाए तो कदली को नष्ट कर देती है। इसी प्रकार कूष्माण्ड, उर्वारुकादि बेलों को यदि केंकड़े की अस्थियों की धूप दी जाए तो वे नष्ट हो जाती है।

(अङ्कोल्हतै ?) कुलत्थक्काथ तोयेन तरुः पुष्प-फलं त्यजेत्।
किंशुकार्जुन-तर्क्कारी लवणात् धूक्षणेन वा॥ २७६॥

कोई पेड़ अपने पुष्प व फल तत्काल गिरा देगा यदि उसे कुलुत्थ का पानी दिया जाए। इसी प्रकार किंशुक, अर्जुन व तरकारियां भी अपने पुष्प या फलों को गिरा देंगी यदि उनको लवण का सेचन दिया जाए या नमक को वहाँ पर तड़तड़ाया जाए।

अथ तत्कालोत्पन्नार्थविधय:

अङ्कोल्हतैल नरतैल सुभावितं यत् बीजं
स्वभाव परिपक्कफलाद्विनीतं।
संजायते झ(क ?)टितित्करकांबु सिक्त
मृत्स्याचयोस्त मिदमत्र न चित्रमस्ति॥ २७७॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि प्राकृतिक रूप से पके हुए किसी भी बीज को यदि अङ्कोल के तेल और अर्जुन वृक्ष के तेल में परिभावित किया जाए और अच्छी गुणवत्ता वाली मिट्टी में दबाकर उसे नारियल के पानी से परिसेचित किया जाए।

अनेकधां(ध ?)को(कौ ?)ल्हजतैल कोलमेदोभिषिक्तं परिशुष्कमुप्तं।
बीजं सुभूमौकरकांबु सिक्तं प्रजायते संप्रति नूनमेव॥ २७८॥

अनेक बार अङ्कोल के तेल और कोल के मेद में भिगोकर सुखाया हुआ बीज अच्छी और ओलों के जल से भिगी हुई मिट्टी पर उगाया जाता है तो वह अल्पकाल में ऊग जाता है।

अन्यदप्याह-

बीजं श्लेष्माततैलेन शतधा परिभावितं।
करकाजल संसेकादुप्तं सद्यः प्र(प्रा ?)जायते॥ २७९॥

किसी बीज को यदि श्लेष्मांतक या लिसोड़ा के तेल से सौ बाद परिभावित किया जाए और उसे यदि ओलों के जल से सिञ्चित किया जाए तो वह तत्काल अङ्कुरित हो जाता है।

यही प्रयोग बृहत्संहिता में कहा गया है— शतशोऽङ्कोलसम्भूतफलकल्केन भाविताम्। एतत्तैलेन वा बीजं श्लेषमातकफलेन वा॥ वापितं करकोन्मिश्रमृदि तत्क्षणजन्मकम्। फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम्॥ (वही, २७-२८)

अनेकधाकुक्कुटर(रै ?)क्त सिक्तं दाडिंबबीजं रवि शुष्कमुप्तं।
नृमांसमेदः परिधूपसेकात्प्रजायते तत्फलति क्षणेन्॥ २८०॥

दाडिम के बीज को मुर्गे के रक्त में अनेक बार भिगोकर सूर्य की धूप में सूखा लें। बोने के बाद इस नृमांस से सिञ्चित किया जाए और उसी से परिधूपित किया जाए तो वह तत्काल फलित होता है।

सपुष्पफलप्राप्यविधिः

अङ्कोल्ह-मत्स्य-शिशुमार-नृ-कोल-नक्रतैला-
भिभावित विशोषित बीजमुप्तं।
सेकाद्वरावनितले करकांबु सिक्ते सूते
सपुष्प फलितं झटितिद्रुमं हि॥ २८१॥

यदि किसी बीज को अङ्कोल सहित, मत्स्य, शिशुमार, नर, कोल तथा मगर के तेल में परिभावित किया जाकर सूखा दिया जाए और अच्छी मिट्टी तले रोपित कर नारियल या वर्षाजल से सिञ्चित किया जाए तो उगने वाला पेड़ पुष्प सहित फल एक साथ ही देने लगता है।

विशेषमाह-

फलितं मधुकर्क्कोट(र्क्कट ?) कुम्भान्तर्गमहीगतं।
सेकात्पात्र समानं स्यात् पिण्याकामिष वारिभिः॥ २८२॥

एक परिपक्व मधुकर्कट को मिट्टी के घड़े में लगाकर यदि अन्यत्र भूमि पर लगाया जाए और फिर यदि उसे खली व मांस के पानी से सिञ्चित किया जाए तो वह उस पात्र के आकारवाला ही उत्पन्न होता है।

फलं तालफ(प ?)लाकारं दाडिंबस्सप्तरोपितः।
विभार्त्त-त्रिफला-सर्प्पिः कोल-मेदोभिषेकचितः॥ २८३॥

यदि किसी दाड़िम के पौधे को एक स्थान से उखाड़कर बारी-बारी सात स्थानों पर रोपित किया जाए तथा उसे त्रिफला, घृत या सरसो तथा कोल के मेद से सिञ्चित करें तो उसके फल नारियल के आकार के उत्पन्न होने लगते हैं।

गो-कोलास्थि-करीषा-ग्निदग्धे सार मृदाभृते।
उप्तस्तु मूलको गर्त्ते वर्त्तमानः प्रजायते॥ २८४॥

गाय और कोल की अस्थि तथा गोबर के कण्डों से परितप्त अच्छी मिट्टी से पूरित गड्ढे में यदि मूली के बीज को लगाया जाए तो वह तत्काल उत्पन्न होती है।

लिप्त्वा त्रपुस कूष्माण्ड प्रकाण्डौ मधु-सर्प्पिषा।

बद्ध्वा पलालरज्जा(क्ष्वा ?) च गोमयेन प्रलेपयेत्॥ २८५॥

कुकुम्बर (खीरा ककड़ी) और कूष्माण्ड के प्रकाण्ड या मोटे तने पर शहद और पिघले हुए मक्खन का लेप किया जाए और दोनों को तृणीय रस्सी से बांधकर उन पर गोबर का लेप करें।

ततस्तावेकतांपातो छित्वा मूलाग्रयोः क्रमात्।

कूष्माण्ड वत्फलं सूते त्रपुसश्चाव शे(शो ?)षितः॥ २८६॥

उक्त प्रयोग से दोनों ही प्रकाण्ड एकाकार हो जाते हैं। बाद में यदि उक्त तने को छेदित कर दिया जाए और जड़ के सीरे के क्रम को बनाये हुए रखा जाए तथा रोपित किया जाए तो उत्पन्न फल खीरा की अपेक्षा कूष्माण्ड के आकार के होंगे।

अन्यदप्याह-

कूष्माण्डकफलेवाले स्वल्पं छिद्रं विधाय च।

प्रलिप्य मधु-सर्पिभ्यां पिचुबीजं विनिक्षिपेत्॥ २८७॥

कूष्माण्ड के कच्चे, नरम फल में एक छोटा छिद्र करें। उस छिद्र में नीम का ऐसा बीज (निंबोली) रखें जिस पर बड़ी मात्रा में शहद व घृत गया हो।

उप्तं परिणतात्तस्मात्फलादा कृष्य यत्नतः।

तत्सूते विटपं पीन वार्त्ताक स्थूल संपदम्॥ २८८॥

जब कूष्माण्ड का फल पूरी तरह पक जाए तब उस नीम के बीज को प्रयत्नपूर्वक निकालकर रोपित करें। उससे एक ऐसा पौधा उत्पन्न होगा जिस पर हृष्ट-पुष्ट, स्थूल बैंगन उत्पन्न होने लगेंगे।

अथोत्पलबीजरोपणविधानम्-

महिषीकरीष-मूत्रै-र्मृदितं सप्ताहमौत्पलं बीजं।

वरभूमौ(मो ?)करकाजल सिक्तं सूते हि करवीरम्॥ २८९॥

उत्पल के बीज को यदि भैंस के गोबर और मूत्र से सप्ताह पर्यंत मर्दित किया जाए और बुवाई के बाद सप्ताह पर्यंत नारियलजल (या वृष्टिजल) से सेचन किया जाए तो वह बीज करवीर के रूप में अङ्कुरित होगा।

सिक्तेऽजगरचर्माढ्य कलापोत्पूति कर्द्दमे।

भूभागे मांसतोयेन जायते पद्मकाननम्॥ २९०॥

पूर्वोक्त उत्पल के बीज को यदि अजगर की खाल में लपेटकर ऐसी मिट्टी में बोया जाए जो कि कमल के बीजों से ही सनी-सड़ी हुई हो और उसे मांसजल से सेचित किया जाए तो वह भूभाग पद्मकानन या कमल-वन के रूप में विकसित हो जाएगा।

श्लेष्मांतकबीजरोपणविधानम्-

श्लेष्मातकस्य बीजं निष्कुलितं सप्तभावितं येश्या।
अङ्कोल्हकस्य महिषी-गोमयेघृष्टं त्वनातये शुष्कं ॥ २९१ ॥
महिषीकरीष मृत्स्यायुक्तं करकाजलेनत(तं ?)त्सिक्तं।
उप्तं जनयति(जनन् ?) कुमुदं कुमदं(?) कुरुते किमाश्चर्य्यं ॥ २९२ ॥

इति विचित्राध्याय:।

श्लेष्मान्तक या लिसोड़ा के बीज का ऊपरी छिलका उतारकर अङ्कोल के फल की चिकनाहट की सात भावना देकर छाया में सुखा लें। तदोपरांत भैंस के गोबर से घिसें या गोबर में रख दें। बाद में इस बीज को भैंस के गोबर मिली मिट्टी में बोया जाए तथा नारियल (अथवा ओलों ?) के जल से सेचित किया जाए तो वह बीज कुमुद के पौधे के रूप में अङ्कुरित होता दिखेगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

यह श्लोक 'बृहत्संहिता' के मत से प्रेरित है— श्लेषमांतकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञ:। अङ्कोलविज्ञलाद्भिश्छायायां सप्तकृत्यैवम् ॥ माहिषगोमय घृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्त। करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्ह्रा फलकराणि ॥ (५४, २९-३०)

अथोपवनप्रक्रिया-

घनप्रवालस्त्वगिता(गित१ ?)नि विकीर्णपुष्पाणि समीरणेन।
गृहाणि कुर्यादति(सि ?)मुक्तकानां लताभिरालोल मधुव्रताभि: ॥ २९३ ॥*

अब उपवन की प्रक्रिया को समझाया जा रहा है। उपवन को सूर्य की किरणों से बचाने के लिए वहाँ ऐसी सघन पत्तियों वाली अतिमुक्तक लताओं को लगाना चाहिए जिनके फूलों पर सदा मधु-पराग के लोभी भौरें गुञ्जार करते हों।

विलम्बिनो यत्र तट द्रुमा च
पुर्विलोकयन्ति प्रसवेक्षणैरि च (व ?)।

**उपवनविनोद में इस श्लोक के बाद निम्न श्लोक भी मिलते हैं- स्थानेष्वपरेषु तथा पादयुगलेषु मिथुनसंवाह्या:। शाखावलम्बिनीभिर्दोला: कार्या लताभिश्च ॥ तरुविटपलतानिकुञ्जरम्या विरचितकंदरसानुगण्डशैला। विविधमणिगुहा विचित्रधातु: क्वचिदपि पर्वतिका विहारहेतु: ॥ केकानिनादसुभगा: सदासंत्रासिताहय:। ताण्डवेन तदुद्देशान्मण्डयन्ति शिखण्डिन: ॥ (८४-८६)*

समं दिशन्तः (दिरांत ?) कलहंसभूषणा
क्वचिद्भवेत्पुष्करिणी मनोरमा ॥ २९४ ॥

उक्त उपवन में स्थान-स्थान पर सुन्दर सुख-राशि वाले पुष्करिणी, जलाशय बनवाए जाने चाहिए जिनमें हंस पक्षी तैरते किलोल करते हों। उक्त जलाशय के चतुर्दिक वृक्षों का रोपण करें जो पानी में अपनी परछाई फूलों की आँखों से निहारते हों।

निर्यादः स(श ?)लिलं सुखावतरणां(णं ?) तीरेषु पुष्पद्रुमां (: ?)
कुञ्ज(कूज ? द्दक्ष)विहङ्गमां सतरुणीम(ा ?)त्यायतां दी(दा ?)र्घिकाम्।
कुर्यात्तत्र समुल्ल(घ्त ?)सत्कमलिनी पत्राङ्कुरश्या(ञा ?)मलां
श्यामालोचनम(का ?)ल्लिकां विदधतीं नीलोत्पलानि क्वचित् ॥ २९५ ॥

उस उद्यान में दीर्घिकाओं अथवा लम्बी पुष्करणी की भी संरचना होनी चाहिए जिसकी जलराशि में कोई जलचर नहीं हो और जिसमें नौकायन किया जा सके। उसके चतुर्दिक पुष्पवाले पौधे लगे हों। वह नव कमलदलों की पत्तियों तथा नीलकमल से आच्छादित हो। वहाँ उत्फुल्ल नीलकमल ऐसे प्रतीत हों जैसे सुकुमार रमणी की आँखों के मध्य में कालिख दिखाई देती है।

उपवन वारिमध्यमग्रं विमल-
तया प्रतिबिम्बितं दधाना।
निशाकर (शशिकर) निकरेण पूरितेव क्वचिदुपनेय
पयाः सुखाय वा(था ?)पी ॥ २९६ ॥

उपवन में ऐसा जलाशय भी बनाया जाना चाहिए जिनमें जलराशि बिल्कुल कांच की तरह स्वच्छ हो तथा जिसमें उद्यान की सुषमा प्रतिबिम्बित होती हो। ऐसा प्रतीत होता हो कि जैसे कुण्ड के मध्य स्वयं एक उद्यान लग रहा हो। अन्य स्थानों पर भी ऐसे जलाशय बनवाए जिसमें चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणें इस प्रकार पड़ती हो मानों जल का अस्तित्व की पहचान में ही नहीं आए अर्थात् वह चन्द्रिका-सरोवर तुल्य हो।

मध्ये तस्मिञ्शिशिरशिखरिस्पर्द्धिवेश्म प्रवातं
मू(गू)ढोपान्त सुरभिकुसुमैः शाखिभिर्नम्र(त्र ?)शाखैः।
स्थाने-स्थाने स्फटिक धवलं मण्डपम्(पीं ?) मण्डनर्हं
कुर्यात्तस्मिन्नपि च कदलीमन्दिरं मन्दवायु(: ?) ॥ २९७ ॥

उपवन में जगह-जगह पर स्फटिक के सदृश प्रतीत होने वाले मण्डप या छतरियाँ बनवाई जानी चाहिए। इनकी सजावट कदली-मन्दिर के समान हो। वहाँ पर शीतल, मन्द

बयार बहती हो। उसी के मध्य में एक सुन्दर वेश्म का विधान भी करें जो हिमगिरि के समान प्रतीति दे और जहाँ पवन-प्रवाह की विशेषता के साथ ही मूढोपांत सुगन्धित पुष्पों के झुरमुट हो और जिस पर शाखाएं झुकी हुई हों।

चालुक्य सोमेश्वर का मानसोल्लास में इसी प्रकार का निर्देश है- कृत्रिमां रचयेत् वृक्षांत सरांसि सरितस्तथा।... सुगन्धिपुष्पस्तवकीन्सुधास्वादुत्पलान्वित:। साक्षान् निर्मितहंसाद्य निर्मलोदकधूपितम्॥ ...दिग्धधुदर्पणाकारं गिरौ कुर्यात् सरोवरम्। (५, १, १००-३)

अथ कूपनिर्देश-

क्वचिदपि कूपं कुर्यादुपवनदेशे सुमृष्टसलिलभरम्।
संसिक्त सकल विटपं बद्धं पाषाण सञ्चयै: परित:॥ २९८॥

उपवन में किसी स्थान पर कूप का निर्माण करवाना चाहिए जिसमें पर्याप्त और अच्छा मीठा पानी हो ताकि उससे उपवन के वृक्षों को सीञ्चा जा सके। उसके चारों ओर पत्थरों का घेरा भी बन्धवाएं।

बृहत्संहिता में वराहमिहिर ने उपवन में वापी खुदवाने का निर्देश दिया है। ५३, ११८, कूपादि के लिए काश्यपीयकृषिसूक्ति का मत है- उद्यानयापि वा नीरं न पर्याप्तं हि कुल्यजम्। तस्मिंस्तु देशे सर्वत्र कूपं निर्मापयेन्नृप:॥ क्षुद्रकूपं च कूपं महाकूपं च वापिकाम्। चतुरश्रं मण्डलं वा दीर्घाकारमथापि वा॥ स्थापयेत् खातयेत्तच्च रक्षयेच्च यथाविधि। उत्तरायणमासेषु प्रायो देशेषु सर्वत:॥ अधोभागे जलं दृश्यं नद्यामापि तले क्वचित्। तस्मात् कूपादिखननमुत्तरायणमासिके॥ सम्पूर्णलिलावाप्तिहेतवे चिरकालिकम्। दगार्गलविधिज्ञेन धीमता भूमिवल्लभ:॥ वापीकूपादिखननं सलिलस्थितिमेव च। आदौ निश्चित्य वृक्षाद्यै: भूनाडीवीक्षणादपि॥ भूमिपरीक्ष्य कलयेत् सुमुहूर्त सुलग्नके। प्राय: प्रातस्तु खननं शुभाय परिकीर्त्यते। अभ्यर्च्य वरुणं नीरनाथं भूदेविकामपि। वनदेवीं तथाभ्यर्च्य बलिदानात् विशेषत:॥ कूपं वापीं दीर्घिकां च स्थापयेत् क्रमतो नृप:। आदौ महावटं खात्वा दीर्घं वा चतुरश्रकम्॥ मण्डलाकारमथवा खातमृत्स्नां तुदूरत:। निक्षिप्य क्रमशस्तत्र जलसंदर्शनावधि॥ मृदुद्धरणमाख्यातं भटैर्वीरै: कृषीवलै:। जलं सैकतसंमिश्र वीक्ष्य कूपादिषु क्रमात्॥ अधोऽधिष्ठानकल्पस्तु दार्ढ्याय च विधीयते। स्थले सैकतभूयिष्ठे चेष्टिकाजालकैरपि॥ सुपक्वैरिह चादिष्टमाधिष्ठानप्रकल्पनम्। कठिने भूमिभागे तु दीर्घिकाकल्पने क्वचित्॥ अधिष्ठानमधोभागे शिलाखण्डै: प्रकल्पयेत्। कूपस्याध: स्थले चैवमधिष्ठानं यथाक्रमम्॥ सिकताजलसंमिश्र-मृदुद्धरणकार्यत:। दृढीकृत्य क्रमान्नित्यं भूयिष्ठं सलिलं तत:॥ विलोक्य तत्र कूपादावधिष्ठानोपरि क्रमात्। इष्टिकाखण्डकै: कालेनिर्माणं कल्पयेन्नृप:॥ सुधासंमिश्रितै: कूपनिर्माणं त्विकादिभि:। चिरकालस्थितिकर माहुस्तत्त्वविदो बुधा:॥ अत: सर्वत्र देशेषु वापीकूपादिकल्पनम्।

सुधेष्टिकादिभिः कार्यमिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥ अधिष्ठानात् भूतलान्तं प्रत्यहं चेष्टिकादिभिः। प्रकल्पनं प्रकुर्वीत क्वचित् सोपानकल्पनम्।। मुखद्वारं प्रकुर्वीतशिलाभिः भूतले क्रमात्। प्राच्यां प्रतीच्यामथवा स्थलयोग्यं विदुर्बुधाः॥ घटीयन्त्रस्थलं तीरे शिलाभिः परिकल्पयेत्। ततः सलिलनिःस्रावहेतवे दृढभूमिके॥ तीरेषु क्षुद्रकुल्यां च स्थापयेत् स्थलयोग्यकम्। घटीयन्त्रं तु विविधं वृषभर्वाह्यमुत्तम्॥ १, १४८-१६९, इसी प्रकार सोमेश्वर का कथन है- सूक्ष्मयुक्ताफलैर्क्लिप्तं बालुकापुलिनस्वलम्। कुङ्कुमोदक तुपणचिःकुल्यां कुत्रापि कारयेत्॥ ... विधायेविविधं शैल ततासादमुदान्वितः॥ (वही ५, १, १०४-५)

अधुनाद्रव्ययोगमाह-

अञ्जन-मुस्तो-शीरैः सराज(सनाग ?)कोशातका-मलकचूर्णैः।
कतकफल समायुक्तेर्योगः कूपे प्रदातव्यः (कूपे योग्य मुदातव्यः ?)॥ २९९॥

अब जल में डालने के योग्य द्रव्य के विषय में कहा जा रहा है। अञ्जन, मोथा, खस, राजकोशातक, आँवला और कतक के फल के चूर्ण का मिश्रण बनाएं और जल में डालें।

यह श्लोक बृहत्संहिता ५३, १२१ है। कतक वृक्ष के फल का जलशोधनार्थ प्रयोग अग्निपुराण में इस सुभाषित के साथ प्रयोग किया गया है कि उसका नाम लेने से ही कभी जलशुद्ध नहीं हो जाता है- फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम्। न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ (१६१, १२)

अस्य गुणानाह-

कलुषं कटुकं विरसं लवणं स(श)लिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत्।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं ससुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम्॥ ३००॥

इति उपवनप्रक्रिया।

जहाँ पानी गंदा हो, कटु, बेस्वाद, नमकीन और दुर्गन्ध वाला हो, वहाँ पर यदि उक्त औषधीय चूर्ण का प्रयोग किया जाए तो जल निर्मल, सुरस, सुगंधवाला और अनेक गुणों से युक्त हो जाता है।

(बृहत्संहिता ५३, १२२)

अथ कूपार्थभूमिपरीक्षा-

पातालादूर्ध्वगमाः शिराः प्रसर्प्पन्ति सर्व्वतो दिक्षु(: ?)।
नीरस्य भूमिमध्ये ज्ञात्वा ताः कल्पयेत्कूपम्(त्कपान् ?)॥ ३०१॥

अब कूपादि जलस्रोतों के लिए भूमि परीक्षा की विधि दी जा रही है। भूमितल में

पाताल से लेकर ऊपर की ओर जलशिराएं विद्यमान हैं, अन्य दिशाओं में भी जलशिराओं का निरंतर प्रवाह है। इन्हीं के आधार पर किसी स्थान पर कूप खनन पर विचार करना चाहिए।

यह श्लोक बृहत्संहिता के निम्न श्लोक का रूप है— पातालदूर्ध्वशिरा शुभा चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च। कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये॥ (५३, ५)

शिराचिह्ननिर्देशः

यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा(मे ?) देशे (? तत्र)॥ ३०२॥

यदि जलाभाव वाले क्षेत्र में वेतस या वेदमजनूँ का वृक्ष हो तो वहां से तीन हाथ पश्चिम की ओर डेढ़ पुरुष प्रमाण (१८० अङ्गुल) गहराई पर पश्चिमी शिरा बहती मिलेगी।

(बृहत्संहिता ५६, ६ है।)

चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरो हि मृत्पीता।
पुटभेदकश्च (स्य ?) तस्मिन्पाषाणे (ो ?) भवति बहुतोयः॥ ३०३॥

उक्त स्थान पर खोदने से जो चिह्न मिलेंगे वे हैं- आधा पुरुष (६० अङ्गुल) नीचे पाण्डुवर्णीय मेढ़ंक, फिर पीली मिट्टी, तत्पश्चात पत्थर और पत्थरों के अनंतर जल प्रवाह।

(बृहत्संहिता ५३, ७ है।)

अन्यदप्याह-

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत्समीपस्थः।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे स(श ?)लिलं पुरुषद्वये स्वादु (साधुः ?)॥ ३०४॥

पूर्व दिशा में जामुन के वृक्ष के पास यदि साँप की बांबी हो तो वहाँ से तीन हाथ दक्षिण में दो पुरुष नीचे मिठा जल होता है।

बृहत्संहिता ५३, ९ यहां वराह ने यह भी कहा है— जम्ब्वाश्चोदग्धस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा। मृल्लोहगन्धिका पाण्डुरा च पुरुषेऽत्र मण्डूकः॥ (बृहत्संहिता ५४, ८)

अर्द्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः।
मृद्भिवति तत्र नीला दीर्घं कालं च बहुतोयम्॥ ३०५॥

उक्त स्थान के लक्षण इस प्रकार होते हैं— पहले आधे पुरुष नीचे खुदाई पर मछली मिलेगी। फिर कबूतर के रंग जैसा पत्थर, तदोपरांत नीले रंग की मिट्टी तथा अंत में

बहुत जल निकलता है जो दीर्घावधि पर्यंत चलता है।

उक्त मत सारस्वत मुनि के मतानुसार है, जैसा कि भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता की विवृत्ति में उद्धृत किया है- जम्बूवृक्षात् पूर्वभागे वल्मीको यदि दृश्यते। तरोर्दक्षिणतो हस्तांस्त्रस्त्क्त्वाऽधो जलं वदेत् ॥ नरद्वयेऽर्ध पुरुषे मत्स्योऽश्मा पक्षिसन्निभ:। ततोऽपि मृतिका नीला ततो मृष्टं जलं वदेत् ॥ (पृष्ठ ६२६)

अन्यदप्याह-

वल्मीकोपचितायां (मिनायां ?) निर्गुण्ड्या दक्षिणे(न) करत्रयोन्माने।
पुरुषद्वये सपादे भवति जलं स्वादु चाशोष्यम् (वाशोषं ?)॥ ३०६ ॥

निर्गुण्डी या नेगड़ (मेवड़ी) के वृक्ष के पास वल्मीक हो तो उससे दक्षिण दिशा में तीन हाथ दूरी पर सवा दो पुरुष गहराई पर अगाध और स्वादिष्ट जल मिलता है।

यह श्लोक बृहत्संहिता ५३, १४ से है किंतु किञ्चित पाठांतर है। तुलनीय- वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरै:। पुरुषद्वये सपादे स्वादु जल भवति चाशोष्यम् ॥)

रोहितमत्स्योर्द्धनरे मृत् कपिला पाण्डुरा तत: परत:।
सिकता सशर्क्कराऽथ (श्च ?) क्रमेण परतो(पुरुतो ?) भवत्यम्भ: ॥ ३०७॥

उक्त शिरा स्थल के लक्षण इस प्रकार जानने चाहिए- पहले आधा पुरुष खोदने पर रोहित संज्ञक मछली मिलेगी, फिर कपिल वर्ण की मिट्टी, इसके बाद पाण्डुर वर्ण की मिट्टी, तदनंतर बालू मिश्रित मिट्टी और अंत में जल शिरा होगी।

(बृहत्संहिता ५३, १५)

अन्यदप्याह-

पूर्वेण यदि बदर्य्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात्।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्द्धनरे॥ ३०८॥

यदि बेर के वृक्ष के पूर्व में वल्मीक हो तो वहाँ से तीन हाथ पश्चिम में तीन पुरुष नीचे जल पाया जाता है। यहाँ के लक्षणों में पहले आधा पुरुष गहराई पर सफेद छिपकली मिलेगी।

बृहत्संहिता ५३, १६, भट्टोत्पल ने इसका उत्स सारस्वत मुनि के कथन को स्वीकारा है और निम्न श्लोक उद्धृत किए हैं- पूर्वभागं बदर्याश्चेद्वल्मीको दृश्यते जलम्। पश्चाद्धस्तत्रये वाच्यं खाते तु पुरुषत्रये॥ अध:खातेऽर्धपुरुषे दृश्यते गृहगोधिका। श्वेतवर्णा ततोऽधस्थं जलं भवति निर्मलम्॥ (पृष्ठ ६२७)

अन्यदप्याह-

सपलाशा (सफला ?) वा बदरी चेद्दिश्यपरस्यां जलं ततो भवति।
पुरुषत्रये सपादे भवति परं (त्रव ?) दुन्दुभे(दुंदुभि ?)श्चिह्नम्॥ ३०९॥

जल विहीन स्थान पर यदि पलाश या किंशुक के साथ बेर का पेड़ हो तो इस युगल वृक्ष से पश्चिम में तीन हाथ दूरी पर सवा तीन पुरुष नीचे जल पाया जाता है। वहां के लक्षणों में खोदने पर एक पुरुष नीचे डिण्डु संज्ञक विषहीन साँप मिलेगा।

यह श्लोक बृहत्संहिता से है किंतु अन्तिम पङ्क्ति का स्वरूप इस प्रकार है— पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च दुण्डुभश्चिह्नम्॥ ५३, १७, इस श्लोक भट्टोत्पल ने सारस्वत मुनि की उक्ति से माना है- पलाशयुक्ता बदरी यत्र दृश्या ततोऽपरे। हस्तत्रयादधस्तोयं सपादे पुरुषत्रये॥ नरे तु दुण्डुभः सर्पो निर्विषश्चिह्नमेव च। अधस्तोयं च सुस्वादु दीर्घकालं प्रवाहितम्॥ पृष्ठ ६२८)

अन्यदप्याह-

काको(काष्टो ?)दुंबरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन्।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था (दिग्स्था ?) च सा वहति॥ ३१०॥

काकोदुम्बर या काले गूलर के पास यदि साँप की बांबी हो तो उसी के मध्य में सवा तीन पुरुष नीचे पश्चिमी शिरा बहती मिलेगी।

(वही ६३, १९, तृतीयांश में पाठांतर 'वहति सा च' मिलता है।)

आपाण्डुपीतिका (आपाण्डुरा च ?) मृत्स्ना (मृत्का ?)
गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः।
पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति॥ ३११॥

उक्त स्थान पर पहले पीले वर्ण की मिट्टी होगी। फिर सफेद वर्ण का पाषाण, नीचे खोदने पर आधे पुरुष पर सफेद चूहा, तदनन्तर श्वेत पाषाण तथा अंत में जल शिरा दिखाई देगी।

(वही ५३, २० तथा 'मृत्स्ना' के स्थान पर 'मद्' पाठांतर है।)

अन्यदप्याह-

आसन्नो वल्मीको दक्षि(ण)पार्श्वे विभीतकस्य यदि।
अध्यर्धे तस्य (? भवति) शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम्॥ ३१२॥

विभीतक या बहेड़ा के पेड़ के समीप दक्षिण दिशा में यदि सर्प का निवास हो तो

वृक्ष के पूर्व में दो हाथ की दूरी पर डेढ़ पुरुष नीचे जल शिरा होती है। यह पूर्वी जल शिरा होती है।

वही ५३, २४, उत्पल ने इस श्लोक का उत्स सारस्वत मत को मानने हुए निम्न उक्ति उद्धृत की है- विभीतकस्य याम्यायां वल्मीको यदि दृश्यते। करद्वयान्तरे पूर्वे सार्धे च पुरुषे जलम्॥ (पृष्ठ ६२९)

अन्यदप्याह-

तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा (यदि ?) भवेद्ध(तिह ?)स्ते।
तत्रोदग्भवति (तत्रोदःस्रवति ?) शिरा चतुर्भिरर्द्धाधिकैः पुरुषैः॥ ३१३॥

पूर्वोक्त बहेड़ा के पेड़ की पश्चिम दिशा में वल्मीक हो तो वृक्ष से उत्तर में एक हाथ दूरी पर भूमि खोदी जाए तो साढ़े चार पुरुष नीचे जलशिरा मिलेगी।

(वही ५३, २५)

श्वेतो (त ?) विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽश्मा।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षद्वये(? त्रये)तीते॥ ३१४॥

उक्त स्थान के लक्षण इस प्रकार होंगे- एक पुरुष गहराई पर सफेद विश्वम्भर नामक़ जीव मिलेगा, बाद में लाल सुर्ख पत्थर होगा, तदोपरान्त पश्चिम दिशागामी जल शिरा होगी किंतु यह तीन सालों में ही समाप्त हो जाने वाली होती है।

(वही ५३, २६)

अन्यदप्याह-

सकुशः(शा ?) सि(शि ?)त ऐशान्यां (येतस्या ?)
वल्मीको यत्र कोविदारस्य।
मध्ये तयोर्नैररर्द्धपञ्चमै(मे ?)स्तोय-
मक्षोभ्यम् (मभ्येघं ?)॥ ३१५॥

जिस स्थान पर कोविदार या कचनार का पेड़ हो, वहाँ वृक्ष से ईशान कोण में कुश से युक्त श्वेत वर्ण वाला वल्मीक हो तो पेड़ व बांबी के मध्य साढ़े चार पुरुष नीचे कभी न सूखने वाला जल पाया जाता है।

(वही ५३, २७)

अथतु भुजङ्गः पुरुषे (? प्रथमपुरुषे भुजगः)
कमलोदरसन्निभो(भा ?) मही (मह ?) रक्ता।

कुरुविन्दः (क ?) पाषाण(। ?)श्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ ३१६ ॥

उक्त स्थान पर एक पुरुष गहराई पर साँप मिलेगा। वहाँ की भूमि कमल के रंग के समान लाल रंग की होगी और साँप के नीचे हरा सुभाजा पाषाण मिलेगा।

(वही ५३, २८)

अन्यदप्याह-

सर्व्वेषां वृक्षाणामधः (मध्ये ?) स्थितोदर्दुरो यदा
दृश्य (स्थितं दुर्दरं यदा पश्येत् ?)
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्द्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ३१७ ॥

जिन पेड़ों के नीचे मेंढ़क पाए जाते हों, उनकी उत्तर दिशा में एक हाथ की दूरी पर साढ़े चार पुरुष नीचे जल पाया जाता है।

इस स्थान के वराह ने निम्न लक्षण भी दिए हैं— पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत् पीतिका ततः श्वेता। दर्दुरसमानरूपः पाषाणो दृश्यते चाऽत्र॥ ५३, ३१-३२, उत्पल ने सारस्वत मुनि के मत को इसका उत्स बताते हुए उद्धृत किया है— तरूणां यत्र सर्वेषामधःस्थो दर्दुरो भवेत्। वृक्षादुदग्दिशि जलं हस्तात् सार्धैर्नरैरधः॥ चतुर्भिः पुरुषे खाते नकुलो नीलमृत्तिका। पीतश्वेता ततो भेकसदृशोऽश्मा प्रदृश्यते॥ (पृष्ठ ६३१)

मनुना विरचितं दकार्गलमिदानीं-

या मौञ्जिकैः (मौञ्जवैः ?) काशकुशैश्च युक्ता
नीला च मृद्य(अ ?)त्र सशर्करा च।
तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णाथवा (कृस्नाथवा ?)
यत्र च रक्तमृद्वा (तिकृमृत्कां ?)॥ ३१८ ॥

जो भूमि मूञ्ज, काश, कुश से युक्त हो, जहां पर नीली मिट्टी और रेत दिखाई देती हो, वहाँ पर भूमिगत सुस्वाद वाली जल शिरा होती है। जिस भूमि की मिट्टी काल अथवा लाल वर्ण की हो, वहाँ पर भी सुस्वादिष्ट जल मिलता है।

वराह के अनुसार यह श्लोक मनु के मतानुसार है। (५३, १०३)

अथ भूगुणानाह-

सशर्करा(करो ?) ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मृष्टं(मिष्ट ?) पयो नीलवसुन्धरायां ॥ ३१९ ॥

इति कूपभूमिपरीक्षाः।

जो भूमि रेत वाली और ताम्रवर्ण की हो, वहाँ पर कषाय स्वाद वाला जल पाया जाता है। कपिल वर्ण की भूमि में नमकीन जल और नील वर्ण की भूमि पर मीठा जल होता है।

(वही ५३, १०४)

अथान्नादिनिष्पत्तिमाह-

केन कस्य वृद्धिर्ज्ञेयेत्येतदाह-

न्यग्रोधन तु यवकास्ति(सि ?)न्दुकवृद्ध्या च षष्टिको(ा ?) भवेत्(भवति)।
अश्वत्थेन च विज्ञेया निःष्पत्ति सर्व्वस(श)स्यानाम्॥ ३२०॥

वृक्षों में फल-फूलों की वृद्धि देखकर द्रव्यों की सुलभता व धान्यों, जीवों की निष्पत्ति को जानना चाहिए। जहाँ पर वट का पेड़ हो वह क्षेत्र यव अथवा जौ की खेती के लिए उपयुक्त होता है। तेंदु को साठी चावल की खेती तथा पीपल की उपस्थिति को सभी प्रकार की फसलों के उत्पादन की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

वही २९, ३, कुसुमलताध्याय का आरंभ इस तरह हुआ है— फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम्। सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम्॥ शालेन कलमशाली रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च। पाण्डूक क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः॥ (वही १-२)

अथान्यत्-

जम्बूभिस्तिलमाषा (? स्थल शाषाः) शिरीष वृद्ध्या च मुद्गनिष्पत्तिः।
गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन॥ ३२१॥

इसी प्रकार जहाँ पर जामुन के पेड़ अच्छे फलते हों वहां पर उड़द की उपज तथा जहाँ शिरीष या सरस के पेड़ फलते हों वहां पर मूंग की निपज अच्छी होती है। मधुक के पेड़ों के आधार पर गेहूँ तथा सप्तपर्ण के आधार पर जौ की उपज की उन्नति को जानना चाहिए।

बृहत्संहिता के वर्तमान पाठ में 'मुद्गनिष्पत्तिः' के स्थान पर 'कङ्गुनिष्पत्ति' पाठ मिलता है। वही २९, ४, इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि वासन्तीलता व कुन्द के फूलों में फल, पुष्पों की वृद्धि से कपास, असना से सरसो, बेर से कुलथी और करञ्ज में फल-पुष्पों की वृद्धि से मूङ्ग की वृद्धि होती है। वेतस से अलसी, पलाश से कोदो, तिलक से शङ्ख, मोती और चाँदी की तथा इङ्गुदी से सन की वृद्धि होती है- अतिमुक्तक कुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान् वदेदशनैः। बदरीभिश्च कुलत्थां-श्चिरविल्वेनादिशेन्मुद्गान्॥ अतसी

वेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः। तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेन शणा॥ (वही २९, ५-६)

अथान्यत्-

करिणश्च हस्तिकर्णैर्नि(न ?)देश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन।

गाव(मावि ?)श्च पाटलाभिः (स्ति ?)कदलीभिरजाविकं भवति॥ ३२२॥

हस्तिकर्ण के पेड़ पर फल-फूलों की वृद्धि होने पर हाथियों की वृद्धि होती है जबकि अश्वकर्ण के फलने-फूलने पर घोड़ों की वृद्धि स्वीकारनी चाहिए। इसी प्रकार पाटल के पेड़ के फलने-फूलने पर गोधन बढ़ता है तथा केले के पेड़ बकरियों-भेड़ों की उन्नति के कारण होते हैं।

बृहत्संहिता में प्रथम पङ्क्ति में पाठांतर मिलता है— करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन्। वही २९, ७, इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि चम्पा के फूलों में वृद्धि से सोना, बंधुजीव से मूङ्गा, कुरबक से वज्र या हीरा, नन्दिकावर्त्त से वैदूर्यमणि की वृद्धि होती है। सिंधुवार से मोती, कुसुम्भ से केसर, रक्तकमल से राजा व नीलकमल से मन्त्री की वृद्धि होती है। सुवर्ण पुष्प से व्यापारी, कमल से ब्राह्मण, कुमुद से पुरोहित, सुगन्धित द्रव्य से सेनापति और आक से सोने की वृद्धि होती है— चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन। कुरवकवृद्ध्या वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्तैः॥ विन्द्याच्च सिंधुवारेण मौक्तिकं कारुकाः कुसुम्भेन। रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः॥ श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पात् पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः। सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः॥ (वही २९, ८-९)

अथान्यत्-

आम्रैः क्षेमं (छैनं ?) भल्ला(त्ता ?)तकैर्भयं पीलुभि(स)तथाऽऽरोग्यम्।

खदिरश(स ?)मीभ्यां दुर्भिक्ष(कञ्जा ?)र्जुनैः शोभन(ा) वृष्टिः॥ ३२३॥

अमराई का फलना किसी क्षेत्र की खुशहाली या मनुष्यों की कुशलता को बताता है। भल्लातक के पेड़ों के अति फलित-पुष्पित होने पर भय, पीलु के पेड़ आरोग्यता, खदिर व खेजड़ी के पेड़ दुर्भिक्ष तथा अर्जुन के पेड़ यथेष्ट वृष्टि के परिचायक होते हैं।

(वही २९, ११)

अन्यदप्याह-

पिचुमन्द-नागकुसुमैः सुभि(दुर्भि ?)क्षमथ म(न)ारुतः कपित्थेन।

निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं *भवति कुटजेन॥ ३२४॥

---

*पाठांतर- नैव सम्भवति।

पिचुमन्द या नीम तथा नागकेसर का अति कुसुमित होना सुभिक्ष को दर्शाता है, कैथ के पेड़ से वायुजन्य व्याधि, तथा निचुल के पेड़ का विशेष पल्लवन अनावृष्टि जन्य भय अथवा महामारी और कुटज का पेड़ व्याधि भय का परिचायक होता है।

वही २९, १२, इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि दूब व कुश के पुष्पों की वृद्धि से गन्ना, कचनार से आग और श्यामलता की वृद्धि से वेश्या, व्यभिचारिणियों आदि की वृद्धि होती है। जिस काल में वृक्ष गुल्म व लताओं के पत्ते चिकने तथा छिद्र रहित दिखाई दें, उस समय सुन्दर वृष्टि होती है किंतु वे रूक्ष व छिद्रयुत हों तो अल्पवृष्टि जाननी चाहिए— दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण। श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति॥ यस्मिन काले स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः संदृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च। तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम्॥ २९, १३-१४, उत्पल भट ने अन्तिम मत पराशर का बताया है— अच्छिद्रपत्राः सुस्निग्धाः फल-पुष्पसमन्विताः। निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः॥ (विवृत्ति २९, १४ पर उद्धृत)

ग्रंथकर्त्तुः परिचयः

इति धरणिरुहायुर्वेदमुद्यत्प्रतापप्रचरनरपति श्रीभीमपालान्तरङ्गः।
अकुरुत्सुरपालः कौतुकात्सिद्धयोगैर्जगदमलयशः श्रीवैद्यविद्यावर्रेण्यः॥ ३२५॥

इति वृक्षायुर्वेदा सम्पूर्णः॥

इस प्रकार पृथ्वी पर पाए जाने वाले द्रुमों की आयु वृद्धि के लिए इस 'वृक्षायुर्वेद' ग्रंथ को प्रतापी नरपति भीमपाल के चरणाश्रित अन्तरंग सुरपाल ने विश्व हित में लिखा जो कि कौतुकसिद्ध वैद्य था और जिसको विद्यावरेण्य के रूप में विमल यश मिला।

ग्रंथांते लिपिकारस्य स्वीकारोक्ति— कृपा रामकुअरजी कस्य पुस्तकमिदं॥ १॥

परिशिष्टम्-१

अथ वाग का चेटा लगावा की क्रिया *-

अग्निपुराणे वृक्षायुर्ज्ञानम्।

धन्वन्तरि उवाच-

वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः।
प्राग्वटो याम्यतस्त्वा(श्चा ?)म्र आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तु॥ १॥

धन्वन्तरि बोले, वृक्षायुर्वेद को कहूंगा। पाकरि उत्तर दिशा में, पूर्व में बरगद, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपल को लगाया जाना शुभ है।

दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः(न ?) समीपे कण्टकद्रुमाः।
उद्यानं गृहवामे स्यात्तिला(स्यात् बाला ?)न्वाऽप्यथ पुष्पितान्॥ २॥

दक्षिण दिशा में काँटे वाले वृक्ष समीप में शुभ है। गृह के वाम भाग में उद्यान होना चाहिए। उद्यान में तिल या फूल वाले वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए।

गृह्णीयाद्रोपयद्वृक्षान् द्विजं चन्द्र प्रपूज्य च।
ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तं प्रा(मा ?)जेशवैष्णवम्(वाः ?)॥ ३॥
नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे।

रोपण से पूर्व ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा करनी चाहिए। वृक्षों के आरोपण, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी व रेवती) अभिजित्, हस्त पूर्वाषाढा, शतभिषा और मूल नक्षत्रों में होने चाहिए।

प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यां तु कारयेत्॥ ४॥
हस्तो मघा तथा मैत्रमाद्यं (ज्यं ?) पुष्यं सवासवम्।
जलाशयसमारम्भे वारुणं चोत्तरात्रयम्॥ ५॥
सम्पूज्य वरुणम् विष्णु पर्जन्य तत् समाचरेत्।

उद्यान में नदी के प्रवाह का प्रवेश करवाया जाए अथवा एक बावड़ी बनवाएं।

---

* उदयपुर, राजस्थान में जिस वर्ष सज्जननिवास उद्यान की नींव डाली गई, उसी वर्ष कविराजा श्यामलदास दधिवाड़िया की आज्ञा से कोटेश्वर दशोरा ने स्थानीय बोली 'मेवाड़ी' में इस लघुकाय ग्रंथ की रचना की थी।

पुष्करणी बनवाने के लिए हस्त, मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य,धनिष्ठा, शतभिषा और तीनों उत्तरा नक्षत्र उत्तम माने जाते हैं। जलाशय बनवाने से पूर्व वरुण, विष्णु और पर्जन्य की पूजा की जानी चाहिए।

अरिष्टा-शोक-पुंन्नाग-शिरीषा: सप्रियङ्गवा: ॥ ६ ॥
अशोक: कदली जम्बुस्तथ बकुलदाडिमा: ।

अरिष्ठा, अशोक, पुंनाग, शिरीष या सरस सहित प्रियङ्गु, आशापालक, केला, जामुन, बकुल तथा दाड़िम के पौधे रोपण योग्य माने जाते हैं।

सायं प्रातस्तु (प्रात: सु ?) धर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥ ७ ॥
वर्षारात्रौ भुव: शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमा: ।

वर्षा के प्रारंभ में सायंकाल और प्रात:काल वृक्षों का आरोपण करें और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण किया जाना प्रशस्त है। साथ ही वर्षाकाल में रात्रि में वृक्षारोपण किया जाना उचित है। पृथ्वी के सूख जाने पर पेड़ों की सिंचाई करनी चाहिए।

उत्तमा विंशतिर्हस्ता(ते ?) मध्यमा: षोडशान्तरा: ॥ ८ ॥
स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् (द्वादशान्तरम् ?) ।

वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है, सोलह हाथ का अन्तर मध्यम है और बारह हाथ का अन्तर अधम माना गया है।

विफला: स्युर्घना वृक्षा: शस्त्रेणाऽऽदौ हि शोधनम् ॥ ९ ॥
विडङ्ग-धृत-पङ्काक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा ।

वृक्षों का रोपण अति निकट-निकट नहीं करना चाहिए। घने वृक्षों में फल नहीं लगते। वृक्षों के आरोपण के पहले शस्त्र से जमीन पर गड्ढा बनाकर उसकी शुद्धि की जानी चाहिए। जिस गड्ढे में वृक्ष लगाया जाए, उसे जल से भर दें और उसमें वायविडङ्ग का चूर्ण घृत में मिलाकर छोड़ दें, इससे भूमि शुद्ध हो जाती है।

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलै: ॥ १० ॥
धृतशीतपय: सेक: फलपुष्पाय सर्वदा ।

जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता हो, उसकी जड़ में कुलथी, उड़द, मूँग, तिल और यव के चूर्ण से मिश्रित शीतल जल से सिंचन करे तो नित्य पुष्प और फल से लदा रहेगा।

आविकाजशकृच्चूर्णं य(ज ?)वचूर्णं तिलानि च ॥ ११ ॥
गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ।
उ(त ?)त्सेक: सर्ववृक्षाणां फल-पुष्पादिवृद्धिद: ॥ १२ ॥

इसी तरह भेड़ व बकरी की मेंगनी का चूर्ण यवा का चूर्ण और तिल का चूर्ण घृत से सान कर शीतल जल में मिला दें और उससे वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं। सात रात तक जल में गोमांस रख दे और उससे वृक्ष को सींचने से सभी वृक्ष पुष्प व फल से लदे रहते हैं।

मत्स्याम्भसा तु (मत्स्यमांसावसे ?) सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाः।
विडङ्गतण्डुलोपेतं मत्स्यं मांसं हि दोहदम्॥ १३॥

मछली के धोवन जल से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है और वायविडङ्ग, चावल तथा मछली का मांस वृक्षों के लिए दोहद तुल्य है तथा सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को दूर करने वाला है।

सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम्
(एवं कृते चारुपलाश पुष्पाः सुगंधिनो।
व्याधि विषर्जितश्चा भवन्ति नित्यं तरवः
सरस्याश्चिरायुषः साधुफलान्वितश्च)॥ १४॥

इसी प्रकार सभी प्रकार के वृक्ष-विशेष के रोगों का शमन किया जा सकता है। पलाश के पुष्पों को सुंदर तथा सुंगध युक्त किया जा सकता है। व्याधियों, विषादि को दूरकर वृक्षों को चिरायु, सरस व श्रेष्ठ फलान्वित किया जा सकता है।

इति प्रथमम्।

तथा वागाते की क्रिया कौतुकचिंतामणे मछ सो तो न्यारी छे। अर या क्रिया अग्निपुराण मेंली लीखी छे। वाग लगावे जठे पारस पीपल तो उत्तर की त्रफ शुभः। पूर्व ने वड लगावजे। दक्षिण दिशा आंब लगावजे। पश्चिम दिशा पीपली लगावे। तथा कांटा वाला वृक्ष दक्षिण का क्यारा में लगावजै। अर हवेली में वाग लगावे तो हवेली सूंनी सरतां बाईं त्रफ लगावजै। सो ब्राह्मण की, चंद्रमा की पूजा कर लगावै। वृक्ष यां नक्षत्रा में लगावै- रोहिणी १ तीनू उत्तरा ४ स्वाति ५ हस्त ६ पूर्वाभाद्रपद ७ आर्द्रा ८ श्रवण ९ मूल १० एता नक्षत्र लीजै। अर नहर पाणी की होय तो नीकां तथा तलाव की मोरी नीचे लगाजै। अरु वाग वासते नीवांण करावे तो या नक्षत्रां में करांजै- हस्त, मघा, अनुराधा, पूर्वाभाद्रपद, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरा तीनु।

अब नीवाण करता वास्तु की, वरुण की पूजा कीजै। अब रती आवे तीं में या रीति सींचे। अरडीठो, आसापालो, नागचम्पो, सरसि, आम्ब, केलि, जामूण, बोलसरी, दाडिम, इन कौं ग्रीष्म में दो बार सींच जै। सीत काल में येक दिन के आंतरे सींचे। वृषा रतू में पृथ्वी सूकी देखे जद सींचे। अरु वीस हाथ के अंतर वृछ लागे सो उत्तिम, सोला

हाथ के अंतर वृछ लागे सो मध्यम। बारा हाथ के अंतर वृछ लागे सो अधम जांणजै।

अरु वृछ न कों एक जगा सों उपाडि दूसरी जगां लगाजे तो नीका। वृछ सघन होय तो साखा काटबो कीजै।

अब निरफल होय तिन को इलाज- वायविडंग, घृत ते जड में दे पाछे पाणी दीजे फल-फूल आवै। अरु फल-फूल लागि झडि पडै तो इलाज। कुलथ, उडद, मूंग, जव, तिल, घृत, यां करि जड में देय पाछे जल सींचे तो फल-फूल सदा आवै। अरु जिण वृछ कैं फल-फूल वडा नहीं होय तो छाली की मींगणी को खात, जव को चून, तिल को चून... इन कुं पाणी में दिन ७ जावो करि जड में दीजे।

तथा रोग जावे को उपाय- वायविडंग, माछली को मांस यां ने मिलाय जड में दीजे तो रोग जाय।

अथ ओर तरकीब लीखी है-

बोर कै पेबंद करे जीं पेबंद रे ऊपरि दूसरे साल फेर करे। अह्यां पेबंद करे तो बोर बडो होय घणो। अर घणा पेबंद करे तो घणो भारी होय।

अन्य- ओर नींबू, नारंगी भी पेबंद ऊपरी पेबंद करे तो घणा सवादी होय। बड़ा होय। फलदार रूंख सारा ही ज्यां के पेबंद होय सो याही तरह नींबू, नारंगी, तुरसावो, करणो, बीजोरो, चकोतरो, सेव, तूंत, अंजीर, दाडिम, बोर, बिहीखीरणी, दाख, फालसा, ओर बी घणा रूंख पेबंद होय छे ओर वागायत का फल का रूंख बी घणा पेबंद होय छै सो अकल सूं पेबंद करे। अरु जिस्के पेबंद करें जीं का आंख्या के उपरि चीरो धरै सो आंख्या तो नीची रहै अर खाल ही खाल चीरे। अर डाल बी नहीं कटे। अर पाछे उं डाल नें थोड़ी सी चीरा मां उ लचावे। अर उं की खाल ने उं ची उकासे। अर जीं को पेबंद धरणो होय ज्या की लकड़ी ल्यावें जी आंख्या जाग्या होय सो आंख्यां की गेंडे री काटे ले पाछे चीरे नाखे अर आंख्या साबूत राखे। पाछे उं की खाल तो साबूत राखे। आर लाकड़ी उ चेडि नाखे। पछे वा टूक खाल को उ लाकड़ी के चीरो दे जीं जायगा आंख्यां सूं आंख्यां मिलाय दे। थूंक लगावे सो वासी थूंक लगावै अर आक की अकलाई नीचे ऊपरी लपेटि दे। अर आंख्या उघाड़ी राखे। सारी पेबंद इहीं रीति में करे। माहा में वा चैत्र में घणा होय छे सो जीं रीति में आंख्यां फूटै जीं रीति में करे तो जलदी होय। एसो रूंख सूं रूंख की जाति मिले जिही को पेमंद जलदी चढै। लाल दाड्यों परि धोला दाड्यों, नींबू परि करणो, नारंगी, चकोतरो, बीजोरो, तुरसावो, जम्भीरी, सदाफल, और इं जाति का रूंख रि आ मांसा मां होय छै।

चाहे जीं परिकरो चकोतरा परि नारंगी बड़ी होय अर मीठी होय। आंब परि जामूण, बड परि गूलर, बकाण परि नींब, केमरी पर अंजीर, कालातूंत परि धोलो, फालसा

ऊपरि रायण फालसो अह्यां ई ओर देखिले। चमेली ऊपरि सोनजाय, वेलिया उपरी मोतीयो, रायवेली परि मदन बांण, कुंज परि साटो, मोगरा परि जूही, सादा चंपा ऊपरि बारामास्यो। भरीया सेवंती उपरि गुलाब, ओर कसबो फूल वादिक कची पक्की अक्किल सूं देपि ओर करिले। लाल कंडीर परि धोलो। तुंबा की बेली कोला की वेलि चीरे जी मे घालै।

जीव मिलि जाय जदी तूंबा की बेलि जड में सूं काटि नाखे। अह्यां ही उलटी कोहला कीनैं करे तो तूंबो दलदार होय। कोहोलो सवाद होय। मीठा तूंबा में करे। तरबूज की वेलि दाडिम में करे। पेट चीरि ने काटे, जीव मिल्यां जड काटे तो तरबूज में गुला नीसरे। अर जड तो लगी राखे। बेली लांबी नहीं जावे दे तो डाड्युम जोर जाय दाड्युं मीठो होय बड़ी होय वेलि की डीरी तोडि नाखवो करै। केलि के घटि भारी आवै उंमे बच्चा फूटे सो जुदा करि देवो करे। अर जूदो होवा ज्यूं न होय जने तोडी नाखवो करे। अर वेगो वेगो देवो करे। यो साधन राखे।

पाणी तर राखे। मोगरो चमेली ने चोगड़ा सूं खोदी जाला काटे। पाछे एक डाहाली जड नखे होय छे जठा सूं तोड़ नाखे, पाछे ऊपरि आंगुल दोय दोय पीळी गार नाखे पाछे ऊपरी पूस नाखि बाल देसो असी आंच दे सो पेट ने आंच तो गाटी पहुंचे अर पेट बलि न जाय। फेर वा राखतो उहां ही रहवा दे। उपरि पाणी पाय दे तो उण डाली के पीलो फूल आवै। दाडम की कलम लगावे जीकै ऊपरि पेबंद कर दो च्यार तो काट गलै। ओर दाड्यूं की कलम लगावै पाछे उंकी कलम फेरि लगावे अह्यां पांच-सात वार करे तो काठ गले गुलो मोटो होय।

कोहोलो तरबूज बाह्ल जीं की वेलि पेट ने चीरे उं में और वेलि काटे। ऊं को जीव मिली जाए जदी जड में सूं काटि ने पाछे वेलि के कोहोलो लागे जी में दाड्युं का गुला निकले।

तरकीब रंग पलट वा की-

गुलेवां सवा ओर बीज अदसेक्या करि वावे तो ऊंका फूल बसंती छटादार निकले। धरती ने हाथ ऊंडी खोदि स्याप करे काली होय। पाछे ऊपरी पुराणी काटि नाखी वछावै सारा ही पाछे वालि दे। अतरी नाखे जीं की राख आंगुल च्यार-च्यार होय पाछे छाली की मींगणी नाखे पाछे हल फेरि दे मेजी दे पाछे हाथ-हाथ के आंतरे खाडो खोद जीमे पूस वाले। पाछे वागा रि निसरे जी में मींगणी को खात मलाय खाडो भरि दे, उं में बालम का बीज बावै, थोरा देरि करे, ओर कीमति करे तो उं खाडा ने एक दिन दूध सूं भर्त्यो राखे पाछै अयां बावै।

सदा गुलाब फूल उत्तर चुक्यां झोरा तोडि नाखे डांडा पाछे, हींग केसूला मसलि

वो पाणी पेट में दे, पाणी की तसपान नाखवा लागी जाय जदी पाछे पाणी पावै। फेरि फूले अह्यां ही करवो करे तो बारा ही महीना फूलवो वर्स दिन में चार बार कलम करै। माहा वैसाख, श्रावण, कार्तिक में ये कलमी गुलाब की लगावै जयां लगा देवो करे, चोखी जायगां तो पेड़ वणे। जमीं में खाडो खोदि पाणी भरि सुसी जावा दे। काच का सीसा में गुलाब की कली मुटा घुली घालै। जुदी जुदी रहे पाछे सीसा के मूंटे बजर मुद्रा लगावै। पाछे उं खाडा में धरि गार सूं मूंद दे। ऊपरी चूना की होद करि पाणी सूं भरी राखे। वरस दिन तांई फूल रहे। अर होद पकी करि उं में करे तो पाणी थोडो सु कमी नति थोडो होय।

केला पाक पुराणी लाव कुं मसलि बुंलाव का टूक जमी में गाडे। पाणी तर राखे। केलि ऊगे, रुंखा में जावो दे तो चोखा फल फूल मीठो होय। दाडमं को काठ गलै। आम को रेसो गले, छोंत पतलो होय। जावो, सोमल, कडी खलि, लसण, हींग, छाछी मांस को पाणी छाछि। मांस जड में देवो गड दागा री मसीला दे खांड जड में दे। तेल पेड के चोपड़ जड़ा में नाखे। खोर पुराणी जड़ा में नाखे। कबूतर की बीठ नाखै। चमचेडी की वीठ नाखे। मोठा को चून, खांड, भूंगड़ा वांटि भुरकावै। फलदार रुंख के बी अर कची फूल वादि के बी पाना कै ऊपरी दो घडी तो रात गयां, अर च्यार घडीक् तडकै दोन्यूं वार भुरकावै तो जाल्यो अर मोहिलो अर चुरस्यो अर माकड़ी जाला करे सो जाय। दो च्यार वार यो जतन करे, थावर दीतवार के दिन यो जतन करेप अणवीण्या करै।

अथ रुंख के फल घणा दन रहे अर तोड्यां पाछै बी घणा दिन रहे, अर मीठो होय फल दरखत कों वा बेलिकों- पारो ऽ।, मिश्री सेर ऽ। यां ने खरल में एक जीव करे। पाछे दाख में वा दाडमें वा नारंगी में देणे होय। जीं की जड में की गारि काढ़े सो मोटी आंगली जसी जड़ होय सो तो रहवा दे अर मही तांत जाल्यां काटि नाखे अर पाछे चोगड दांया पारा मिश्री विछावे सो जड़ा कै टिकी रहे। अर नही ठहर वा को व्योंत होय तो थोड़ो सो पाणी नांखे, जडां के लगा दे। पाछे धामणी गार, छाली की मींगणी मिलाय उं सूं दाबि दे, पाछै थोड़ी सीतस दे पाणी पावै।

अथ रुंख के फल घणा दिन रहै अर मीठो होय अर क्यूं रंग में स्याही पकड़े-

भीलामां सेर ऽ१, कबूतर की बीठ सेर ऽ२ यां ने कूटि एक जीव करे। अर रुंख की जड़ की गार काढि अर जाल्यां काढि नाखे। अर पतली जड काढि नाखै। पाछै उं में मूल डाल होय जीने चीरे। अर उं में सारा भीलामा मेलिजे पाछे ये कूट्या हु वाछै सो दे पाछे उपरे सूं गारि दे भरै पाछै घणी खेंचिदे र पाण पावै।

अथ तरकीब फल बडो लागो, चोखो लागे-

वेलि वा चेटो उंकी जड एक और सूं खोदि जड का तंतू-जाल्यां काटि नाखे। अर पाछे उं में मस्यो कूकरो वालि वागधो सारो ही मेलि बूर दीजे।

अथ तरकीब रुंख न फलै वांझडो होय तीं का फलवा की–

थावर दीतवार के दन अणठीण्या बाकरा कोलोही जडमें नाखे अर पेड के छांटा दे अरबा करो रांधी उठे खावै। अर बचे तो उठे गाड़ी दे।

अथ रोंख फले नहीं, फूल जडी जाता होय तीं के मंत्री नीलो डोरो बांधे। अर भेंसा गूगल की धूणी देवाय विडंग की धूणी दे– (मन्त्र)'ॐ नमो आदेस गुरु कूं, छूटा मरवा छूटी जाए, छूटी सब ही बंधी बणराया, छूटा नदी बहता नीर इसमे रोंख का फल झड गले तो लाजे हणवंत वीर। मेरी भक्ति गुरु की सकति फुरो मंत्रो ईश्वरो वाचा।'

ओर रोंख फलवा को टोटको–

लुगाई कपड़ा होय तीको कपड़ो लावे, धूणी दीजे। अथ वागधी व्यावे जीका बचा कै जिली होय छै तीं की धूणी दीजे तो फलै अर गिरे नहीं।

अथ तरकीब फल मीठो होय अर घणो फूलै–

अरदाडूं को काठ गलि जाय। उं की जड खोदी जाल्या काटे, अर पतली जड तोडी नाखै पाछै खोर तो मण २, अर छाली की मींगणी सेर दस १, इमें मिलाय जड दाबी दे। पाछे पाणी त्रस देर पाछे पाणी पावै।

ओर तरकीब फल फलै अर मीठो होय–

उं की जड खोदी जाला काटि नाखै, अर पुराणो चूना मण २, अर वागल की वीठ सेर ५, मिलाय जड़ में भरि ऊपरी गारि बूर दे अर पाणी कीतिस देर पाणी पावै।

तरकीब फल फलै अर मोटो होय तीं की–

फल के झुका बांधे अर कै बांस का छबल्या बणवाय ज्यां में फल मेलि पां नल पेटि बांध दे। पोंन नलागवादे बांधि दे तो फल मोटो होय अर फूले अर के पानां दूना बांधे।

अथ तरकीब रोंखा के दाहो नहीं बहै अर सीथोडो व्यापे–

अर दींवल नहीं लागे तीं की– सगला पेड नें तेल सूं चोपडै गहेरो अर पेड सारु तेल जडां में कूटे। अकेक करवो रोजीना छोटो पेड होय तो सेर दो सेर, अरु बडो पेड होय तो पाँच छह सेर दे।

अथ तरकीब भोगलीकी कलम चढावा की–

पहली तो नई गरल फूटे जीं के आंख्या फूटी होय तो काटि लावै, अर पाछे जीं रुंख के पेबंध करणो होय जीं के अयां करे, ज्योडा हाली काटि ल्यावे जीं का विलस्त बिलस्त का टूक करे पाछे वी मां उं सूं डीरी तो तोडी नाखे अर आंगल दोय एक ऊपरी सूं गोल चीरो दे सो वन तो कटै अर लाकडी कटवा पावै नहीं। सो असी जायगां सूं काटे सो पांन तो बीच रहे अर एक आंगल तो भोंगली पांन सूं नीचे रहे। अर एक आंगल उपरे रहे। असी जायगां सूं

काटे पाछे जड मां हे सूं तोला कडी दातां सूं पकडै अर वाची रो दे जतनीं गंडेली ने कपडा सूं लपेटि अर गाटी मूंठी में पकडै सो परट वा पावै नहीं पाछै उन खेचि अर भोंगली ने कुसका ले सो इहि तरह सूं काटि काटि अर मूंढ में कुसका तो जाय सांच व्यारि सो पोन लागवा पावै नहीं। पाछै जि हीं डाली कै पेवंद करे जी की डीरी उठा सूं काटे सो जठे वा भोंगली जमि वे उं पाछै उं को वकल उं भोगली जतरी जायगा को उचे डि लटका दे, अर उं डांड कै थूंक गहरो लगाय अर जो भोंगलीज मैज्यौ भोंगली उं में पहरा वे सो असी जमें सो ढीली वी न रहै अर फाटि बी न जाय पाछै वो वन नीचे लटकायो सो उं कल पेटि अर आकको बन नल पेटि मूंढे गोबर की चूंथी दे घलै मगसर में माहा में चेत में करे।

अथ तुरंजी पेड वणावा की तरकीब—

सीस्यौं, तूंत, दाड्यूं दाख, बीजोरो नींबू, नारंगी, सेव, ओर घणा ही रोंख गुलाब, चमेली, मोगरो सोनजाय, फूलवा दी घणा ही रोंख अर यां करे उंडा हाली कै गांठि होय जीके नीचै सूं आंगुल च्यार वकल छोलि अर जीं कै चोगडा दां काली गार को पींडो चपका दे, अर कपडो लपेटी अर पाणी सूं तर राखे, अर गरम की रत होय तो छावडो राखै एती गठी को साहारो राखे पाछै उं के जड फूटै जद नीचा सूं काटि लै, इतरे वागका बी रोंख उतरे छै। अर डूंगर का रोंख बी उतरे छै, अर फलतो फूलतो बी रोंख उतरे सो फलवो फूलवो करे।

अथ जावो रोंखा को ई सुं रोख रहै अर दीवल वी लागे नहीं, चोखो फल फूलै-

सोमलऽ=, कडी खलैऽ२ हींगऽ= , ल्हसणऽ१, खीपऽ२ आक का फूल पानऽ ॥ छालि ॥,

अथ दीवल जावा की तरकीब—

माथणी में आरणा छाणा भरि दीवले की जागा औंधा गाडै वै भरि जाय जदी दूरे नाखै फेरि भरि धरै अयां दीवले वीत जदी ताई करे।

अथ फल मीठा होय वाकी तरकीब—

सीरो खरड पको सेर ऽ४, छाली की मींगणी मण १ ॥, खोर मण २, यांकी तह जड चोगडदां दे, पहली तो सीरा की पाछे खोर की, पाछे मींगणी की, पाछे मीठी खल की, पाछे कडी खल की। अयां तह दोय दे। पाछे दूध सेर ऽ४ रोजीना १५ तांई दे, उंडो खाडो खोदे पतली जड दूर करै, जाल्यां दूर करें, माटी जड़ राखे, पाछो तह देरि खाडो भरि ल्यावै, उपरि थोडी सीगारि नाखै, पाछै पाणी पावै, वरस दिन आंतरै करै।

अथ तरकीब खाटी-मीठी दाड्यूं की—

दाड्यूं एक पेड में आधे तो खाटी आधे मीठी। अयां पेड नै खोदी उं की जड़ काडे पाछे उं में मोटी जड़ होय जीनै चीरे अर हींगलु ऽ।, दूध सूं वाटि उं में भरी दे, बोदा

चींतरा सूं बांधे, अ के वडा कपडो राखे वेगो गले, पाछे जो, भीलामा पीसि उं जड में हींगलु भरे ज्यां के लेप करि खोर की मूंस बांध पाछे मीठी खल नाखे, पाछे खात मींगणी को दे, पाछे गारि नाख दे, अर वो आधो पेड जी में यो जतन करे मींगणा के पांच सात पुट दही का दे सुकावै अर खोर बी दही में मिलार सुकावे घणी खाटी करे खाटा दही सुं, कडी खल के बी पांच पुट खाटा दही का दे पाछे पहली मुंस खोर की बांधे तह दे जड के पाछे मींगणी की पादै खल की, पाछे गारि नाखै दे दोनू बाजू यो जतन करे अर दोन्यूं बाजु का खाडा मिलवा नहीं दे, पड दो दोनू बाजू राखे पाछै मीठा मांहे तो दूध सूं सींचे खाटा मांहि दही सूं सींचे, पनरा दन ताईं सींचे।

अथ दाख घणो फल या तरकीब सावण में करे पाछे माहा में—

चमचेड की बीठ दे थांवलो खुदे र जड खुदवा पावै नहीं, अर दीखी आवै जदी पहली तह चमचेड की वीठ की दे, पाछै कबूतर की वीठ की दे, पाछै छाली री मींगणी की दे, पाछै उपरे गोर दे, पाछै वेलि का तंतू होय सो आसा री वेलि का काटे पाछै माहा में अयां ही फेरि करे, अर तांतू सारी वेलि का काटे।

अथ तरकीब कुरती में फले तीं की—

सो मुसालो तो यो ही है अर तांतू की सारा वेलिका काटि नाखे अर सूकी डाहाली सारी काटे अर कलम भी करे तो फलै।

अथ तरकीब दरखत का फल झडवा की—

पुष्य, दीतवार होय जदी पहले दिन तो कुंभार को डोरो नोत्यावै, वासण उतार वाको, अर पाछै राति ले आवै, जीं रुंख का फल झडाणा होय तीं रे बांध दीजै, अर लोहबान की धूणी दे तो फल गिरे पडवो करे नी मटे नहीं।

अथ तरकीब फल विगडवा की—

दीतवार के दिन खाट बणतो देखे सो खाट कै तलै बणतां खरे मूंज सो सारी ले आवै, पाछे सात दीतवारां उं के धूप खेवो करे, अर उं ने सिधि करे पाछे जदी तमासो करणो होय जदी वाडी को धोरो वहतो देखे जीमे एकेक दो दो तरम का खेरा नाखै तो फल बिगडे जाय, रहे सो काणां होय जाय सो वे घणा जलदी विगडै।

अथ वाग के छाछा को रो लागे जी को उपाय—

दही सेर दस १०, हींग ऽ=, वायविडंग १२॥, मोरपगी १२॥ छाडछडी लोछ दाम भर्‌यो। ये सारी पीसी दही में घोल दीजे। दसम दीतवार कूं ब्रछ उपरी छांटा दे तो तीतरी नहीं लागे। ओर रोग महुडो चीप्यो लागतो पुष्य दीतवार ने मींढा का लोही का छांटा ब्रछ का पाना उपरी छांटी जे ओर उं का कलेजा कु काढि लीजै ओर जड गधी की लीजे ओर छाडछडीलो,

नागरमोथो यां की धूणी दीजे तो रोग चीप्यो महुडा को जाय। जीं का पांन सूकडी जाय जीने तो महुड़ो कहीजै अर जीं का पानां के चीप सो गूंद जमि जाय जीने चीप्यो कहीजै। अर जीं का पान खरे मुदगी जाय खटा होय जी सूं चुरस्यो कहजे॥ ३॥

रोग लटां को लागे जीकी लट पेट में धोली होय छै—

ओर उं गालकी लट काली होय छै सो जमी में सूं चढे छे सोले दरा की लट वासते सो मल लीजे छह दाम भस्यो, हींग अधेला भस्यो, हरताल दमडी भरी, सो यांकूं कूट गोली बांधजे, सो यां का घर बंध करि दीजे जर बया टेढो होय तो टांची देर लट काढि लीजै, ओर उ गालकी लट को इलाज कीजे।

सो खाण्ड पाव एक लीजै, चून गवां को ऽ।। सेर लीजे, तिन चून कों सेक लीजे, दोन्यां को एक कीजे व्रछ का पेट में नाखिजे तो चींटी वा परे जाय सो उगालकी लट मिटि जाय॥ और ब्रछ निरफल रह्यो होयतो- थावलो बडो वणावजै, ओर जड गधी की लीजे ओर गउ की जड लीजे सो याकुं सुकार महीन कूट नाखिजै ओर उं ब्रछ की जड़ा में दीजे उपरी सूं छाली की मींगणी दीजे जी के उपरी गारि को तह फेरि दीजे, उं कीडाहल कोई आतां-जातां हाथ गया जी गंगाजी खिनाय दीजे पाछे यो इलाज कीजे।

इलाज दाख को कीजे—

खाण्ड लीजे, दूध लीजे, थावलो बड़ो करे उं दाष की जड़ काढि लीजै वांके खाण्ड वा गुड की भूसि बांधिजै उपरी सूं दूध नाखिजै। ऊपरी छाली की मींगणी नाख़िजै। पांच दिन सात दिन उं में दूध नाखिवो करे।

अथ दीवल जमीं में घणी होय तीं को उपाय—

षीप लीजे, आंक लीजै और धवा ले लीजै, यां तीनां को कूट जे, मोटी सी येक कीजै षीप ओरलीजे विना कूटी सो उं षीप ने ढाणा में नाखिजे उंका अंतर पुट में कूटी षीप पधरी जे जदी पाणी चलावै जद तीसुं सारई ई को अंसजाय जी सुदी वली जाती है रहे। दीवले मांझे रहती में काली माटी लीजे ती के संमि पानी को पुंसगल्यो कूटि जे, सो कुंपत ली करिमांथणा मांहि लगाजे एक-एक जवकी मुटाई कीजै फेरि उं माथणी मै। आरणा छाणां सो उ माथणो कोमास्या मै ओ धो गाडे दीजे जमी बराबर दीवले घणी अकराल होय तो दिन आठमें उं भांड नें काढै सो वे छाणा अरदीवले दूरे नाखणी लींप धोय नाखणो फेर उ सीतरे लेप करणो छाणा भरे उं ही तरे गाडि जे सो ईं तरह वार दो-च्यार करे तो दीवले सारी नींसरी जाय।

अथ वाडी फलवा की क्रिया—

गूगल लीजे, मोरपगी लीजे, नागरमोथो लीजे, सो यां कूं कूटि घी मिलाजे।

दीतवार की रात वस्त्र हीण होय धूप दीजे तो वाड़ी फलै। पुनः थावर के दिन अरध बिम्ब में कुंभार की लोढी नौत्याजे, अर्ध राति समें ल्यार धूप देर वाडी में धरि दीजै तो वाडी बहोत फलै॥

इति संपूर्णम्।

कुवा का ढाणा सारण के मध्य होद रहे जीमें पणो गल्यां खात नाखे सो नाख्यां सम भाग जल की साथ सरीखो पोच थोडाक् अरसा पाछै धरती बदले छे, पोटली जथा जोग मुसाला की क्यारा-क्यारा पर नलवो मे गांठ धरीजे उदेई रो भय नहीं। हींग वावा के वास्ते बीज चोपडी जे, भांग के क्यारा केसुलो मींगफल अंतमीसष्टंन मेथी के अंत भीलामा तमाखु के इत्यादि जथा जोग॥*

●

*श्रीमार्तण्ड वंश मौलिमणि महाराजाधिराज श्री महाराणेंद्र श्री १०८ श्री सज्जनसिंहा-नामाज्ञानुसारेण कविकुलोद्भव दधिवाडियान्वयोत्पन्न सांवलदासानुमत्या ब्राह्मण दशोरा कोटेश्वरेण लिखितेदं पुस्तकं। संवत् १९३४ अषाड सुदी १५ (श्लोक २२५)

परिशिष्टम्-२
अथ विष्णुधर्मोत्तरे द्रुमरोपणनिरूपणम्

हंस उवाच-

वृक्षसंरोपणान्मर्त्यो महत्फलमुपाश्नुते।

गुल्मवल्लीलतानां च रोपणात्पुरुषो द्विजा: ॥ १ ॥

वृक्षों के रोपण से मनुष्य को महत्पुण्य, फल की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण एवं पुरुषादि सभी वर्गों के गुल्म, वल्ली, लतादि का व्यक्तियों को अवश्य ही रोपण किया जाना चाहिए।

प्रत्येकं फलमाप्नोति गोदाने यत्प्रकीर्तितम्।

अग्निष्टोममवाप्नोति पुष्पवृक्षस्य रोपणात्॥ २ ॥

प्रत्येक वृक्ष के रोपण से उसी फल की प्राप्ति होती है जो गोदान करने से मिलता है। पुष्पीय वृक्षों को लगाने से अग्निष्टोम तुल्य फल मिलता है।

पौण्डरीकमवाप्नोति फलवृक्षस्य रोपणात्।

आराममपि य: कुर्यात्परेषां नामकारणात्॥ ३ ॥

जो कोई फलदार वृक्षों को लगाता है, उसे पुण्डरीक या विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। जीवन में परार्थ के लिए, नाम-यश के लिए उद्यान का निर्माण किया जाना चाहिए।

तथा हरितकार्यं च सोऽग्निष्टोमफलं लभेत्।

पुष्पारामं नर: कृत्वा देवतार्थं मनोहरम्॥ ४ ॥

देवताओं के लिए आरामादि का निर्माण किए जाने से भी अग्निष्टोम के फल के समान फल मिलता है। इसलिए देवताओं के निमित्त मनोहर पुष्पों वाला उद्यान अवश्य लगाया जाना चाहिए।

देवोद्यानेषु सर्वेषु नन्दनादिषु मोदते।

यथाकामं विहारी स्यान्नात्र कार्या विचारणा॥ ५ ॥

देवताओं के वनों में इन्द्र का नंदनवन प्रसिद्ध है। देवोद्यान से फल रूप में व्यक्ति को नंदनवन में आनन्दपूर्वक विहार, प्रमोदादि का फल मिलता है।

फलारामं तत: कृत्वा विन्दत्यभ्यधिकं फलम्।

कृत्वा द्रुमशतारामं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ६ ॥

फलं दशशतारामे लक्षारामे च कल्पयेत्।

फलों के उद्यान लगाने से अधिकाधिक फल मिलता है। हजार फलवाले बगीचे को लगाने से अथवा एक लाख वृक्षों के उद्यान से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है, ऐसा कहा गया है।

नानाद्रुमाः

चम्पकं मल्लिकां जातीं श्रेष्ठाः पुष्पाकरा मताः ॥ ७ ॥

अन्योऽधिकमवाप्नोति दत्त्वैतान्नात्र संशयः।

गुल्मेषु कथितो श्रेष्ठो तथोभौ भव्यदाडिमौ ॥ ८ ॥

पुष्पीय पौधों में चम्पा, मल्लिका, जाती या चमेली आदि श्रेष्ठ और पुष्पागार कहे गए हैं। ये परस्पर अधिकाधिक फलदायी हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। गुल्मों में दाड़िम व अन्य भव्य वृक्ष का रोपण श्रेष्ठ स्वीकारा गया है।

पथि श्रेष्ठतमौ विप्रा वटाश्वत्थौ प्रकीर्तितौ।

नारङ्गदानाद्भवति नरो रूपसमन्वितः ॥ ९ ॥

रास्ते में लगाए जाने वाले वृक्षों में विप्र वृक्ष के रूप में वट और अश्वत्थ श्रेष्ठतम माने गए हैं। नारङ्गी के दान से पुरुष सुंदर, रूपवान होता है।

बीजपूरकदानेन सौभाग्यं महदाप्नुयात्।

दत्त्वा पालेवताम्रौ तु तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १० ॥

बीजपूरक या बीजोरा नीम्बू का दान करने से बहुत फल एवं सौभाग्य मिलता है। पालेवत, ताम्र के दान से अपूर्व तृप्ति सुलभ होती है।

आम्राक्षोटप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात्।

लक्षारामं तु यः कुर्यादाम्राणामिह मानवः ॥ ११ ॥

आम्र, आक्षोट या अखरोट प्रदान करने से सर्व कामनाओं की पूर्ति होती है। आम्र से मानव को लाखों उद्यान के समान फल मिलता है।

देवोद्यानेषु रम्येषु क्रीडत्यमरसन्निभः।

अप्सरोभिः परिवृतो न च तस्मान्निवर्तते ॥ १२ ॥

ऐसा व्यक्ति देवोद्यान में सदा ही देवताओं के साथ रमण करता है तथा अप्सराओं आदि से घिरा रहता है। वह पृथ्वी पर पुनः नहीं लौटता।

एकोऽपि रोपितो वृक्षः पुत्रकार्य करो भवेत्।

देवान्प्रसूनैः प्रीणाति छायया चातिथींस्तथा ॥ १३ ॥

जो व्यक्ति एक भी पेड़ लगाता है, तो वह एक पुत्र उत्पन्न करने जैसा कार्य करता है। वृक्ष अपने पुष्पों से देवताओं को प्रसन्न करता है और छाया से पथिकों, यात्रियों को सुख देता है।

फलैर्मनुष्यान्प्रीणाति नारक्यं नास्ति पादपे।
अपि पुष्पफलैर्हीने द्रुमे पान्थस्य विश्रमः ॥ १४॥

उक्त पेड़ अपने फलों से मनुष्यों को संतुष्ट करता है। इन पुण्यों के कारण ही वृक्ष लगाने वाला कभी नरक में नहीं गिरता है। यदि कोई पेड़ पुष्प-फल हीन भी होता है तो वह पंथ में यात्रियों के लिए विश्रामयोग्य होता ही है।

छाययां स्तोककालेन बहुपुण्यं प्रयच्छति।
देवे वर्षति यद्वृक्षात्पत्रेभ्यः स्त्रवते जलम् ॥ १५ ॥

वृक्षों से थोड़े काल की छाया भी बहुत पुण्य प्रदान करती है। ईश्वर कृपावृष्टि से पत्तों से फल और देवानुगृह से पत्तों से जलवृष्टि होती है।

तेन तृप्तिमवाप्नोति परलोकगतो ध्रुवम्।
तेन नाकमवाप्नोति वृक्षरोपयिता नरः ॥ १६ ॥

वृक्षों को निश्चय लगाना चाहिए। वृक्षों को लगाने वालों को परलोक गमन पर तृप्ति सुलभ होती है। इस पुण्य पर स्वर्ग सुलभ होता है।

सेचनादपि वृक्षस्य रोपितस्य परेण तु।
महत्फलमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १७॥

पेड़ का यदि किसी अन्य ने भी रोपण किया हो और यदि उसे जल पिलाया जाए तो भी उसे महान् फल मिलता है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए।

अथ वृक्षवैद्यं-

वृक्षायुर्वेदविधिना व्याधितन्तु यथाक्रमम्।
नीरुजं मानवः कृत्वा स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

वृक्षों की व्याधियों का उपचार वृक्षायुर्वेद की नाना विधियों से करना चाहिए। वृक्षों के लिए उपचार करने वाले, वृक्ष चिकित्सक को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।

वृक्षतपस्या-

शीत-वाता-तपक्लेशं तथाच्छेदनभेदने।
सहन्ते परमं वृक्षास्तद्धि तेषां महत्तपः ॥ १९॥
पत्र-पुष्प-फलैर्नित्यं छायया चैव शाखिनः।

परेषामुपयुज्यन्ते तद्धि तेषां महत्तपः ॥ २० ॥

जाड़ा, झंझावात या आंधी, गर्मी जन्य नाना कष्टों सहित छेदन, भेदन जैसी त्रासदियों से वृक्ष बहुत तपते हैं अथवा वे इनसे संघर्ष का तप करते हैं और पत्र, पुष्प, फल सहित अपनी शाखाओं से नित्य छाया देकर वृक्ष परहित में अपनी तपस्या-साधना के पथ पर प्रशस्त होते हैं।

तेषां सदा दयाकार्या भक्तिः कार्या तथैव च।
यस्तेषां भक्तिमान्नित्यं तस्य सा वनदेवता॥ २१ ॥

वे वनदेवता तुल्य ही है जो सदा ही वृक्षों के लिए दया रूपी भक्ति का कार्य करते हैं। उनकी हमें सदा ही भक्ति करनी चाहिए।

तोषमायाति परमं तथा कामान्प्रयच्छति।
वानस्पत्यं तथा लोकं देहभेदे समुश्नुते॥ २२ ॥

वृक्ष सदा ही परम संतोषी होते हैं, वे कामनाओं को पूर्ण करते हैं। संसार में लोक व वनस्पति दोनों में ही देहभेद से आनंद उत्पत्ति, वृद्धि होती है।

वानस्पत्ये शुभे लोके सर्वेषामेव शाखिनाम्।
शरीर वत्प्रतिष्ठन्ति देवता नात्र संशयः ॥ २३ ॥

वनस्पति से उत्पन्न होने से पेड़ों के शुभ होने पर उनकी प्रतिष्ठा भी शरीर की भांति, देववत् हो जाती है। इसमें कोई संशय नहीं है।

याः प्रोक्तास्त्वभिमानिन्यः परां आभामथास्थिताः।
याम्यलोके तथा लोकं वानस्पत्यं प्रकीर्तितम्॥ २४॥

वृक्ष स्वाभिमानी हैं, परम कांति को धारण किए हैं, ऐसा कहा गया है। दक्षिण लोक में वनस्पति का लोक कहा गया है।

यमलोकमुपासन्ते सर्वास्ता द्रुमदेवताः।
द्रुमरोपयितारं च परलोकमुपागतम्॥ २५ ॥

उक्त यम (दक्षिण) लोक में ही समस्त वृक्षदेवता रहते हैं। परलोकगमन पर वे वहीं द्रुम लगाने वालों की रक्षा करते हैं।

दिव्येन गीत नृत्येन रमयन्ते उपासते।
रोपितस्य द्रुमस्येह यथा भवति देवता॥ २६ ॥

वे देवता वहीं पर दिव्य गीतों, नृत्यों से वृक्षरोपक की उपासना करते हैं। जिन्होंने जिस प्रकार का द्रुम लगाया हो, उस द्रुम का देवता उसे मिलता है।

याम्ये तु फलदा लोके तथा लोके तु वारुणे।
देवता स्यान्महाभागाः कृते पुण्ये जलाशये॥ २७॥

यमलोक व वरुण लोक में क्रमशः द्रुमदेव व वरुणदेव ऐसे लोगों के लिए भाग्यदायी सिद्ध होते हैं जो वृक्षरोपण करते हैं या जलाशय बनवाते हैं।

कृते शास्त्रे तथा सम्यग्ब्रह्मलोके तथा द्विजाः।
क्षिप्रमेव महाभागा जायन्ते शास्त्रदेवताः॥ २८॥

ऐसे शास्त्र की रचना करने वाला सम्यग्ब्रह्मलोक के द्विजत्व को प्राप्त करता है, ऐसे महाभाग शास्त्र देवता के रूप में प्रतिष्ठा पाते हैं।

शास्त्रं जलाशयं वृक्षं सुरवेश्म तथैव च।
मृतस्यापि मनुष्यस्य शरीरमिह कीर्तितम्॥ २९॥

शास्त्र की रचना करने वाले, जलाशय बनवाने वाले, वृक्ष लगवाने वाले और देवताओं के मन्दिरों का निर्माण करवाने वाले व्यक्तियों की कीर्ति-काया मृत्यु के बावजूद अमर रहती है।

कीर्त्यते येन चान्यते मानवः स्वर्गमाप्नुयात्।
तत्तत्कार्यं मनुष्येण स्वर्गमक्षय्यमिच्छता॥ ३०॥

वृक्षारोपण वह कार्य है कि जिसके करने से मनुष्य को ऐसे इच्छित स्वर्ग की प्राप्ति होती है जिसका कभी क्षय नहीं होता।

पुत्राः प्रदिष्टाः पुरुषस्य वृक्षाः स्वयंकृतास्तेषु नरेण भाव्यम्।
स्नेहेन नित्यं पुरुषं नृतन्ते कामैस्तु दिव्यैः परितर्पयन्ति॥ ३१॥

वृक्ष पुरुष के पुत्र के समान माने गए हैं क्योंकि पुरुष ने स्वयं ही उन्हें लगाया है, इसलिए वे उसके पुत्र तुल्य कहे गए हैं। पुरुष हमेशा उनके साथ स्नेह का व्यवहार करते हैं और वे वृक्ष उनकी कामनाओं को अवश्य ही परितृप्त करते हैं।

इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरे तृतीय खण्डे मार्कण्डेयवज्रसंवादे मुनीन्प्रति हंसगीतासु वृक्षारोपणफलनिरूपणो नाम सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९७॥

●

परिशिष्टम्-३
अथ विष्णुधर्मोत्तरे वृक्षायुर्वेदाध्याय:

दिशानुसारेण द्रुमविचार-

पुष्कर उवाच:

उत्तरेण शुभ: प्लक्षो वट: प्राग्भार्गवोत्तम।
उदुंबरश्च याम्यनेव सौम्येनाश्वत्थ एव च॥ १ ॥

पुष्कर मुनि (परशुराम से) बोले- घर के उत्तर में प्लक्ष और पूर्व में वट का रोपण उत्तम होता है। दक्षिण में उदुम्बर तथा पश्चिम दिशा में अश्वत्थ या पीपल का वृक्ष श्रेष्ठ होता है।

अग्निपुराण में २४७वें वास्तुलक्षण अध्याय के साथ इस विचार को दिया गया है जो तुलनीय है- उत्तरेण शुभप्लक्षो वट: प्राक्स्याद्गृहादित:। उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तम:॥ (२४)

एते क्रमेण नेष्यन्ति दक्षिणादिसमुद्भवा:।
समीपजाताश्च तथा वर्ज्या कण्टकिनो द्रुमा: ॥ २ ॥

उक्त पेड़ों को दक्षिणादि क्रम से नहीं उगाया जाना चाहिए अर्थात् पूर्वोक्त क्रम से ही वृक्षों का रोपण किया जाए। घर के समीप कभी काँटेदार वृक्षों को नहीं लगाना चाहिए, ऐसे वृक्ष वर्जित हैं।

वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासगृहाच्छुभम्।
वापयेत्प्राक्तिलांस्तत्र मृन्दीयात्तांश्च पुष्पितान्॥ ३ ॥

आवास के बायें भाग में उद्यान लगाकर शुभ दिन में वहाँ पर निवास करना चाहिए। द्रुमों का रोपण करने से पहले भूमि को तिलों की बुवाई कर उनके पुष्पित होने तक शुद्ध करना चाहिए।

अग्निपुराण का कथन है- वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासं गृहे शुभम्। (वही, २५)

ततस्तु रोपयेद्वृक्षान्प्रयत: सुसमाहित:।
स्नातो द्रुममथाभ्यर्च्य ब्राह्मणांश्च शिवं तथा॥ ४॥

उक्त प्रकार से तैयार भूमि पर द्रुमों का रोपण करना चाहिए। इस अवसर पर स्नान, द्रुमार्चना के साथ ही ब्राह्मण व शिव की अर्चना भी करनी चाहिए।

शुभनक्षत्राः

ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तः पुष्यः सवैष्णवः।

नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यते द्रुमरोपणे॥ ५॥

द्रुमरोपण के लिए विचारणीय नक्षत्र हैं- वायव्य के पाँच नक्षत्र अर्थात् रोहिणी, तीनों उत्तरा एवं स्वाती, हस्त, पुष्य, पूर्वाभाद्रपद, आद्रा, श्रवण एवं मूल नक्षत्र वृक्ष लगाने के लिए प्रशस्त माने गए हैं।

उद्यानं सजलं राम नाभिरामं यदा तदा।

प्रवेशयेन्न विपट(कुरुहान्) पुष्करिण्यश्च कारयेत्॥ ६॥

उद्यान में रमणीयता एवं सौंदर्य का बोध हो, ऐसा प्रयास करना चाहिए। वहां कमलताल बनाना चाहिए। यह भी ज्ञातव्य है कि ऐसे उद्यान में कभी निर्वसन प्रवेश नहीं करना चाहिए।

अग्निपुराण में उद्यान में नदी की नहर ले जाने का उल्लेख है— प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यां तु कारयेत्॥ (२८२, ४)

कूपखनन नक्षत्राः

संस्कार्यमुद्भिदं तोयं कूपां कार्याः प्रयत्नतः।

हस्तं मघा तथा मैत्रं सौम्यं पुष्यं च वासवम्॥ ७॥

उत्तरात्रितयं राम तथा पूर्वा च फल्गुनी।

जलाशयसमारंभे प्रशस्ते वारुणं तथा॥ ८॥

ऐसे उद्यान के लिए वहाँ पर प्रयत्नपूर्वक कूप का संस्कार करना चाहिए। कुआँ खुदवाने के लिए हस्त, मघा, मैत्र या अनुराधा, सौम्य, पुष्य तथा वासव के नक्षत्रों के साथ ही तीनों उत्तरा व पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र प्रशस्त कहे गए हैं। वरुण से सम्बद्ध नक्षत्र भी जलाशय के लिए प्रशस्त होता है।

सम्पूज्य वरुणं देवं विष्णुं पर्जन्यमेव च ।

तर्पयित्वा द्विजान्कामैस्तदारंभकरो भवेत्॥ ९॥

खनन अवसर पर वरुणदेव, विष्णु तथा पर्जन्यदेव की पूजा करनी चाहिए तथा तर्पण सहित ब्राह्मणों को यथेष्ट पुण्य के बाद खनन कार्य का आरंभ करना चाहिए।

रोपणीय वृक्षाः

अथोद्याने प्रवक्ष्यामि प्रशस्तान्पादपान्द्विज।

अरिष्टा-शोक-पुन्नाग-शिरीषा-म्र-प्रियङ्गव ॥ १०॥

पनसा-शोकदचली-जम्बू-लकुच-दाडिमाः।
माङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा॥ ११॥

अब वहाँ पर रोपणीय प्रशस्त वृक्षों के विषय में कहा जा रहा है। उद्यान या आवासीय परिसर में अरिष्ठा, अशोक, पुन्नाग, शिरीष, आम्र, प्रियङ्गु, पनस, आशापल्लव, कदली, जामुन, लकुच, दाड़िम आदि मांगलिक वृक्षों को लगाया जाना चाहिए।

कृत्वा बहुत्वमेतेषां रोप्यास्सर्वे ह्यनन्तरम्।
शाल्मलिं कोविदारं च वर्जयित्वा विभीतकम् ॥ १२॥

उक्त सभी पेड़ों को एक के बाद एक लगाने के बाद अन्य द्रुम भी लगाए जा सकते हैं किंतु विभीतक या बहेड़ा, शाल्मली (सेमल) तथा कोविदार का विचार त्यागना चाहिए।

असनं देवदारुं च पलाशं पुष्करं तथा।
न विवर्ज्यस्तथा कश्चिद्देवोद्यानेषु जानता॥ १३॥
तत्रापि बहुता कार्या माङ्गल्यानां द्विजोत्तम।

असन, देवदार या कल्पवृक्ष, पलाश एवं कमल का रोपण त्याज्य नहीं है, किसी भी देवालय के साथ लगे उद्यान या अन्य वाटिकाओं के लिए किंतु इनके लिए कई प्रकार के माङ्गलिक कार्य करने होते हैं।

सेचनविधि-

सायं प्रातस्तु घर्मान्ते शीतकाले दिनांतरे॥ १४॥
वर्षाकाले भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः।

वृक्षों को ग्रीष्मकाल में सायंकाल तथा सुबह पानी देना चाहिए। जाड़े में एक दिन के अंतराल पर तथा वर्षाकाल में जब भूमि का जल सूखता दिखे तब सिञ्चाई करनी चाहिए।

उत्तमं विंशतिर्हस्तं मध्यमं षोडशांतरम्॥ १५॥
स्थानात्स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम्।
अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम्॥ १६॥
अव्यक्तमिश्रमूलात्वाद्भवन्ति विफला द्विज।

पौधों का रोपण कितनी दूरी पर किया जाए, इसके लिए कहा गया है कि एक से दूसरे पौधे की दूरी बीस हाथ रखना उत्तम, सोलह हाथ मध्यम तथा बारह हाथ की दूरी अधम कही गई है। इससे कम अंतराल रखे जाने पर वृक्ष पास-पास होने से वे एक दूसरे को स्पर्श करने लगते है। हे ब्राह्मण! इसी प्रकार उनकी भूमिगत जड़ें मिलने लगती है और पेड़ों को फल शून्य कर देती है।

अथ द्रुमव्याधि-

तेषां व्याधिसमुत्पत्तौ शृणु राम चिकित्सतम्॥ १७॥

आदौ संशोधनं तेषां किञ्चिच्छस्त्रैण कारयेत्।

विडङ्गघृतपङ्काक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा॥ १८॥

हे (परशु)राम! अब पेड़ों की व्याधियों के लिए कहा जा रहा है जिसे श्रवण करो। पौधों में किसी भी प्रकार की व्याधि होने पर सर्वप्रथम व्याधिग्रस्त भाग को किसी शस्त्र से काट दिया जाना चाहिए। इसके बाद विडङ्ग, घी, कीचड़ आदि सहित ठण्डे पानी से उसकी सिञ्चाई करनी चाहिए।

फलनाशे कुलुत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः।

श्रितशीतपयस्सेकः फलपुष्पाय सर्वदा॥ १९॥

यदि पेड़ों के फलों का विनाश होता हो तो कुलुत्थ, माष या उड़द, मुद्ग या मूँग, तिल और जौ को ठण्डे पानी में मिला कर सेचन करने से वह वृक्ष सदा फल-फूलों से आच्छादित होने लगेगा।

अग्निपुराणकार का भी यही कथन है— विडङ्गघृतसंयुक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा॥ फलनाशे कुलुत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः। घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा॥ (वही २६-२७)

आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च।

गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रं निधापयेत्॥ २०॥

उत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदम्।

यदि भेड़-बकरी की मेंगनी, जौ व तिल का चूर्ण, गोमांस मिला पानी का सात रात्रि तक मिलाकर दिया जाए तो सभी वृक्षों का विकास उत्तम होने लगता है। इस प्रयोग से फल, पुष्पादि की भी वृद्धि होती है।

यही अग्निपुराणकार का कथन है— आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च। गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रं निधापयेत्। उत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पातिवृद्धिदम्॥ (वही २८-२९)

रङ्गतोयोषितं बीजं रङ्गतोयाभिषेचितम्॥ २१॥

उदग्रपुष्पं (तद्रङ्गपुष्यम्) भवति यौवने नात्र संशयः।

मत्स्याम्भसातु सिक्तेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम्॥ २२॥

वर्णीय बीज जो तद्वर्णीय पानी के साथ ही रोपे और सींचे जाते हैं, उनके पौधे युवाकाल में उत्कृष्ट (अथवा उसी वर्ण के) पुष्प उत्पन्न करते हैं, इसमें संशय नहीं है। इसी प्रकार मछली वाले पानी से सेचन करने पर वृक्षों की शाखाओं की वृद्धि होती है।

अन्तिम पङ्क्ति अग्निपुराण में भी है– मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम्। (वही २८)

ततः प्रधानतो वक्ष्ये द्रुमाणां दोहदान्यहम्।
मत्स्योदकेन शीतेन चाम्राणां सेक इष्यते॥ 23॥

अब पेड़ों के दोहद के विषय में कहा जा रहा है। आम्र के पेड़ों को मछली वाले ठण्डे जल से सीञ्चा जाना लाभकारी होता है।

अन्तिम पङ्क्ति अग्निपुराण में भी है— मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते। (वही ३०)

मद्वीकानां तथा कार्यस्तेनैवं रिपुसूदन।
पक्कासृग्रुधिरं चैव दाडिमानां प्रशस्यते॥ २४॥

द्राक्षा की सिञ्चाई का कार्य अकेले में करना चाहिए, यह कार्य शत्रु जय तुल्य स्वीकार्य है जबकि दाड़िम के लिए पका हुआ नेजा का रक्त जल दिया जाना प्रशस्त होता है।

तुषं देयं च भव्यानां मद्यं च बकुलद्रुमे।
विशेषात्कामिनीवत्रसंसर्गात्तु गुणं (मधुरं) च यत्॥ २५॥

बकुल के वृक्षों के लिए तुष या ओंस का पानी उत्तम होता है, इस पर भी यदि कोई कामिनी अपने मुखासव से बकुल को सिञ्चित करती है तो वह अति गुण करता है।

प्रशस्तं चाप्यशोकानां कामिनीपादताडनम्।

इसी प्रकार अशोक के वृक्ष को यदि कोई रमणी अपने पैरों से प्रताड़ित करती है तो वह फलता-फूलता है।

यही पङ्क्ति इसी रूप में अग्निपुराण में है। (वही ३०)

सृगालमांसतोयं च नारङ्गाक्षोटयोर्हितम्॥ २६॥
मधुयष्ट्युदकं चैवं बदराणां प्रशस्यते।
गन्धोदकं च गोमांसं कतकानां प्रशस्यते॥ २७॥

सियार के मांस का पानी नारङ्गी तथा अखरोट के पेड़ों की सिञ्चाई के लिए उत्तम होता है। मूलेठी मिश्रित पानी बेर की झाड़ी और गंधक का पानी तथा गोमांस कतक के पेड़ के लिए प्रशस्त माना गया है।

क्षीरसेकेन भवति सप्तपर्णो मनोहरः।
मांसपूतो वसा-मज्जासेकः कुरबके हितः॥ २८॥

सप्तपर्णी के पेड़ को दूध से सेचन करने से वह मनोहर हो जाता है। कुरबक के

लिए मांस, अस्थि, वसा व मज्जा के जल से सेचन करना हितकारी होता है।

पूतिमत्स्य (पूतिमज्जा) घृतं पूतिकर्पासाफलमेव च ।

अरिमेदस्य (अतिमेघस्य) सेकोऽयं पाटलेषु च शस्यते॥ २९ ॥

गन्दा पानी, मछली, घृत का प्रयोग कपास के लिए और मांस (या वृष्टिजल) से पाटल के पेड़ का सेचन प्रशस्तकारी होता है।

कपित्थ-बिल्वयोः सेकं गुडतोयेन कारयेत्।

जातीनां मल्लिकायाश्च गन्धतोयं परं हितम्॥ ३० ॥

कपित्थ कैंथ और बिल्व के वृक्षों को गुड़ मिश्रित पानी से तथा चमेली व मल्लिका को गन्ध मिश्रित जल से सिञ्चाई करना हितकर होता है।

तथा कुब्जक-जातीनां कूर्ममांस प्रशस्यते।

खर्जूर-नारिकेराणां-वंशस्य-कदलस्य च॥ ३१ ॥

लवणेन सतोयेन सेको वृद्धिकरः स्मृतः।

इसी प्रकार कुब्जक, चमेली को कूर्म का मांस दिया जाना प्रशस्त होता है। खर्जूर, नारियल, बाँस एवं कदली को नमक मिले पानी से सिञ्चे जाने पर वे बहुत वृद्धि करने लगते हैं।

विडङ्गं तण्डुलोपेतं मत्स्यमांस भृगूत्तम।

सर्वेषामविशेषेण दोहदं परिकल्पयेत्॥ ३२ ॥

विडङ्ग के साथ तण्डुल या चावल, मत्स्य मांस को दिया जाना सभी वृक्षों के लिए उत्तम विशेषणीय दोहद माना गया है।

उक्त दो श्लोक अग्निपुराण से तुलनीय है— खर्जूरनारिकेलार्लवणाद्भिर्विवर्धनम्। विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वषां दोहदं शुभम्॥ (वही ३१)

एवङ्कृते चारुपलाशपुष्पाः सुगन्धिनो व्याधिविवर्जिताश्च।

भवन्ति नित्यं तरवः सरस्याश्चिरायुषः साधुफलान्विताश्च॥ ३३ ॥

इस प्रकार से पलाश के सुन्दर, चारु फूलों को सुगन्धित कर व्याधियों का वर्जन किया जा सकता है, नित्य ही उचित देखभाल से तरु सरस होते हैं और चिरायु होकर उचित रूप से फलान्वित रहते हैं।

इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरे द्वितीयखण्डे मार्कण्डेयवज्रसंवादे

वृक्षायुर्वेदवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

परिशिष्टम्-४
अथ शुक्रप्रोक्त वृक्षादीनां विमर्शः

विविध द्रुमारोपणपोषणविधिः

ग्रामे ग्राम्यान् वने वन्यान् वृक्षान् संरोपयेन्नृपः।
उत्तमान् विंशतिकरैर्मध्यमांस्तिथिहस्ततः ॥ १ ॥

अब वृक्षारोपण एवं पोषण के नियम बताए जाते हैं- ग्राम के लिए निर्दिष्ट वृक्षों को ग्राम में और वनारण्य के पेड़ वनों में लगवाने चाहिए। एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच की दूरी बीस हाथ रखना उत्तम है जबकि पन्द्रह हाथ का अन्तराल मध्यम बताया गया है।

सामान्यान् दशहस्तैश्च कनिष्ठान् पञ्चभिः करैः।
अजाविगोशकृद्भिर्वा जलैर्मांसैश्च पोषयेत् ॥ २ ॥

वृक्षों के मध्य दस हाथ का अन्तराल सामान्य होता है जबकि पाँच हाथ की दूरी कनिष्ठ कही जाती है। लगाए गए द्रुमों को बकरी, भेड़ की मेंगनी, गाय के गोबर की खाद और जल सहित मांस का सेचन कर पोषण का प्रबन्ध करना चाहिए।

ग्राम्यवृक्षनामानिः

उदुम्बरा-श्वत्थ-वट-चिञ्चा-चन्दन-जम्भलाः।
कदम्बा-शोक-बकुल-बिल्वा-म्रात-कपित्थकाः ॥ ३ ॥

अब ग्राम्य वृक्षों के नाम कहे जा रहे हैं। ग्राम्य वृक्षों में मुख्य रूप से गूलर, अश्वत्थ, वट, इमली, चन्दन, जम्भल अथवा जम्बीरी नींबू, कदम्ब, अशोक, बकुल, बिल्व, आम्रातक या आमड़ा और कपित्थ या कैथ हैं।

राजादना-म्र-पुन्नाग-तूदकाष्ठा-म्ल-चम्पकाः।
नीप-कोकाम्रराल-दाडिमा-क्षोट-भिस्सटाः ॥ ४ ॥

इसी प्रकार राजादन या चिरौंजी, आम, पुन्नाग, तूदकाष्ठ, अम्ल, चम्पक, नीप, कोकम, अराल या चीड़, दाड़िम, आक्षोट या अखरोट, भिस्सट भी ग्राम्यवृक्ष हैं।

शिंशपा-शिग्रु-बदर-निम्ब-जम्बीर-क्षीरिका।
खर्जूर-देवकरज-फल्गु-तापिच्छ-सिम्भलाः ॥ ५ ॥

शिंशपा या शीशम, शिग्रु या सहजना, बेर, नीम, जम्बीर या जमेरिका, खिरनी, खर्जूर, देवकरञ्ज, फल्गु या अञ्जीर, तापिच्छ अथवा तमाल और सिम्भल के पेड़ भी उक्त

कोटि के होते हैं।

कुद्दालो-लवली-धात्री-क्रमुको-मातुलुङ्गकः।
लकुचो-नारिकेलश्च रम्भाऽन्ये सत्फला द्रुमाः ॥ ६ ॥

ग्राम्य कोटि द्रुमों में ही कुद्दाल, लवली अथवा हरफारेवड़ी, आँवला, मातुलिङ्ग अथवा बीजोरा, लकुच या बड़हर, नारियल और केला जैसे सद्फलों वाले वृक्षों की भी गणना होती है।

गृहाऽऽरामनिर्माणनिर्देशः

सुपुष्पाश्चैव ये वृक्षा ग्रामाभ्यर्णे नियोजयेत्।
वामभागेऽथवोद्यानं कुर्य्याद् वासगृहे शुभम् ॥ ७ ॥

पूर्वानुसार जो भी सुन्दर पुष्पवाले वृक्ष होते हैं, उनको ग्राम्य योग्य जानकर लगाया जाना चाहिए। इसी प्रकार बस्ती अथवा अपने निवास स्थल के वामभाग में उद्यान का निर्माण करवाया जाना शुभ होता है।

द्रुमसेचनविधिः

सायं प्रातस्तु घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे।
वसन्ते पञ्चमेऽह्नस्तु सेव्या वर्षासु न क्वचित् ॥ ८ ॥

वृक्षों को ऋतुभेदानुसार सीञ्चना चाहिए। यदि ग्रीष्मकाल हो तो सुबह और संध्या को पेड़ों को पानी दिया जाना चाहिए। शीतकाल में एक दिन के अन्तराल पर सिञ्चाई करें। वसंत ऋतु या पतझड़ का मौसम हो तो दिन के पाँचवें मुहूर्त या पाँचवे दिन पर पेड़ों को पानी पिलाना उचित है जबकि वर्षाकाल (पर्याप्त वर्षा हुई) हो तो जल की आवश्यकता नहीं होती।

फलनाशचिकित्सा-

फलनाशे कुलुत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलैः।
शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥ ९ ॥

अब वृक्षों की चिकित्सा पर विचार है। वृक्षों के फल यदि बारंबार विनष्ट होते हों तो कुलुत्थ या कुलथी, उड़द, मूँग, जौ व तिल को पानी में औटाएं और शीतल होने पर उस जल से वृक्षों को सीञ्चे। इससे वृक्ष सर्वदा फल व पुष्पों से आच्छादित रहते हैं।

वृद्ध्योपायः

मस्त्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनाम्।
आविकाजशकृच्चूर्ण यवचूर्ण तिलानि च। १० ॥

गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत्।
उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ॥ ११ ॥

वृक्षों पर फल, फूल वृद्धि के लिए उपाय निम्न है- मछलियाँ जिस पानी में रहती है अथवा मछलियों के धोने से शेष पानी से वृक्षों से सींचे तो शाखाओं की वृद्धि होती है। इसके साथ ही भेड़ व बकरी की मेंगनी का चूर्ण, जौ का आटा, तिल एवं गोमांस मिला पानी सात रात्रि पर्यंत मिलाकर वृक्षों को दिया जाए तो सभी प्रजातियों के वृक्षों पर फल व फूलों की वृद्धि होने लगती है।

अथारण्यद्रुमाः

ये कण्टकिनो वृक्षाः खदिराद्यास्तथापरे।
आरण्यकास्ते विज्ञेयास्तेषां तत्र नियोजनम्॥ १२ ॥

अब वन्य वृक्षों के विषय में कहा जा रहा है कि जंगली पेड़ जो कि काँटों वाले और खदिरादि होते हैं, उनका रोपण-नियोजन अरण्यभूमि पर ही किया जाना चाहिए।

नानाद्रुमाः

खदिरा-श्मन्त-शाका-ग्निमन्थ-स्योनाक-ब्बुलाः।
तमाल-शाल-कुटज-धवा-र्जुन-पलाशकाः ॥ १३ ॥

ऐसे वृक्षों में खदिर या खैर, अश्मन्तक, सागवान, अग्निमन्थ या अरणी, स्योनाक या सोनपाठा, बबूल, तमाल, शाल, कुटज या खोरया, धव या धोकड़ा, अर्जुन और पलाश स्मरणीय हैं।

सप्तपर्ण-शमी-तुन्न-देवदारु-विकङ्कताः।
करमर्देङ्गुदी-भूर्ज-विषमुष्ठि-करीरकाः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार सप्तपर्णी या सतवन, शमी, तून, देवदारु, विकङ्कत, करमर्द या करौंदा, इङ्गुदी, भूर्ज या भोजपत्र, विषमुष्ठि या कुचला और करीर भी सगण्य हैं।

शल्लकी-काश्मरी-पाठा-तिन्दुको-बीजसारकः।
हरीतकी च भल्लातः शम्पाको-ऽर्कश्च पुष्करः ॥ १५ ॥

शल्लकी या सलई, काश्मरी या खम्भार, पाढ़र, तेंदू, बीजसार या विजूसार, हरड़, भल्लाट या भिलावाँ, शम्याक, मन्दार और पुष्कर या पोहकर वृक्षों की भी गणना की जानी चाहिए।

अरिमेदश्च पीतद्रुः शाल्मलिश्च बिभीतकः।
नरवेलो-महावृक्षोऽपरे ये मधुकादयः ॥ १६ ॥

अरिमेद या रक्त खदिर, पीतद्रू अथवा पीलू, शाल्मली या सेमल, बहेड़ा, नरवेल, महावृक्ष और महुआ के वृक्ष भी जंगल योग्य हैं।

प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यो गुल्मिन्यश्च तथैव च।

ग्राम्या ग्रामे वने वन्या नियोज्यास्ते प्रयत्नतः॥ १७॥

इनके साथ-साथ तोरण-सी चलने वाली लम्बी व कृशकाय शाखाओं वाली लताएं, गुल्मादि हैं, उनको जाने कि वे ग्राम्य योग्य हैं या वन योग्य। जो जहाँ के लिए योग्य हो, उनको वहीं पर लगाना चाहिए।

कूपावाप्यादिनिर्माणनिर्देशः

कूप-वापी-पुष्करिण्य-स्तडागाः सुगमास्तथा।

कार्याः खाताद् द्वि-त्रिगुण-विस्तारपदधानिकाः॥ १८॥

उद्यानों के साथ ही कूप, वापी, पुष्करणी, तड़ागादि का निर्माण करवाएं और उनकी जलराशि तक सुगमतापूर्वक पहुँचने के लिए मार्ग, सीढ़ियाँ आदि भी तैयार करवानी चाहिए। वापी, जलाशय के लिए तट से जलपेटे तक दो, तीन गुना विस्तार के साथ पदधानिका या पौढ़ी अथवा पगत्याँ आदि का निर्माण भी करवाना चाहिए।

यथा तथा ह्यनेकाश्च राष्ट्रे स्याद्विपुलं जलम्।

नदीनां सेतवः कार्या विबन्धाः सुमनोहराः॥ १९॥

नौकादिजलयानानि पारगानि नदीषु च।

राष्ट्र प्रबन्धकों को चाहिए कि जहाँ-जहाँ पर भी जल की उचित आवक हो वहां पर उचित बाँधों का निर्माण करवाएं ताकि जलराशि का सदुपयोग हो। नदियों पर सुन्दर बाँध और सेतु या पुल का निर्माण करवाएं। ऐसे जलस्थानों पर पारगमन के लिए नौका, जलयानादि का भी उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

इति शुक्रनीतौ राष्ट्रमध्यं चतुर्थाध्यायस्य

लोकधर्मनिरूपणं वृक्षादिविमर्शः॥ श्लोकाङ्क ४६-६५॥

परिशिष्टम्-५
अथ वृक्षोत्सव विधिः

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद।
विधिनां केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः॥ १॥

पुराकाल में एक बार ऋषियों ने सूतजी से कहा- सूतजी! अब आप हमारे प्रति वृक्ष लगाने की विधि को विस्तार के साथ कहने का कृपा करें। आप यह भी बताएं कि वृक्षों को किस विधि से लगाएं, वृक्षारोपण करने वाले को किन लोकों की प्राप्ति होती है, वह भी इस समय आप हमें उपदेश करें।

सूत उवाच-

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु।
तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर॥ २॥

सूत बोले [कि यही प्रश्न पूर्वकाल में मनु ने भगवान मत्स्य से पूछा था, इस पर जो भगवान मत्स्य ने बताया वह मैं आपके प्रति कह रहा हूँ कि]- मैं उद्यानों में वृक्षों को लगाने की विधि का तुम्हारे प्रति कथन कर रहा हूँ। यह विधि भी तडाग प्रतिष्ठा के समान ही समझनी चाहिए।

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम्।
पूजयेद ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः॥ ३॥

इस विधि के अन्तर्गत भी ऋत्विज, मण्डप अन्य पूजा सामग्री और आचार्य को पूर्वानुसार रखें और स्वर्ण, वस्त्र और चंदनादि लेपन से ब्राह्मणों का पूजन करें।

सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान्।
वृक्षान् माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्॥ ४॥

इसके बाद रोपे गए सभी पौधों का सर्वोषधि मिश्रित जल से सेचन करें। उनके ऊपर दही और अक्षत डालकर विभूषित करें। वृक्षों को पुष्पमालाओं से सजाएं और वस्त्रों से परिवेष्टित करें।

सर्वोषधियों के नाम इस प्रकार हैं— कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा

चम्पकमुस्ते च सर्वौषध्यो दश स्मृता॥ चतुर्वर्गचिंतामणि, व्रतखण्ड पृष्ठ ४९ एवं अग्निपुराण १७७, १३, अग्निपुराण में भी उक्त श्लोक मिलते है- प्रतिष्ठा पादपानां च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम्। सर्वोषध्योदकैर्लिप्तान्पिष्टातकविभूषितान॥ वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्। (७०, १-२)

सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्।
अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया॥ ५॥

उक्त सिंगार के बाद सभी पौधों के पत्तों का सोने की सुई से कर्णवेधन करना चाहिए। उनको अञ्जनशलाका से सुरमा भी लगाना चाहिए।

अग्निपुराण का कथन है— सूच्या सौवर्णया कार्य सर्वेषां कर्णवेधनम्॥ हेमशलाकयाऽञ्जनं वेद्यां तु फलसप्तकम्॥ (वही २-३)

फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत्।
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत्॥ ६॥

इसके अनन्तर सात या आठ स्वर्ण के फल बनवाएं और उनके साथ सभी वृक्षों को पूजार्थ बनवाई गई वेदी पर अधिवासित करें।

इसी प्रकार अग्निपुराण में आगे कहा गया है- अधिवासयेच्च प्रत्येकं घटान्बलिं निवेदयेत्॥ (वही ३)

धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान्।
सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः॥ ७॥

इस स्थापना के बाद वृक्षों को गुग्गुल से आधूपित करना श्रेष्ठ है। उनको अलग-अलग ताम्र के पात्र में रखें और सप्तधान्य में स्थित करें। वृक्षों को वस्त्र, गंध, अनुलेप से भी युक्त करें।

सप्तधान्य के नाम हेमाद्रि ने यव, गेहूँ, धान्य, तिल, कङ्गु, श्यामाक एवं चीनक बताएँ हैं (चतुर्वर्गचिंतामणि, व्रतखण्ड १, ४८) जबकि वायुपुराण ८, १५०-१५२ में और मार्कण्डेयपुराण ४६, ६७-६९ में सत्रह धान्य बताए गए हैं।

कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर।
सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम्॥ ८॥

भगवान मत्स्य ने आगे कहा— हे नरेश्वर मनु! इसके उपरान्त उन वृक्षों के पास कलश स्थापित करें और उनमें स्वर्णखण्ड डालकर बलि-प्रसाद से उनकी पूजा करें।

कुम्भ के लक्षण हेमाद्रि ने व्रतखण्ड में इस प्रकार बताए हैं— कलां कलां गृहीत्वा च देवानां विश्वकर्मणा निर्मितोऽयं सुरैर्यस्मात्कलशस्तेन उच्यते॥ (१, ६०८)

यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषत: ।
वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होम: कार्यो द्विजातिभि: ॥ ९ ॥

पूजन के उपरांत रात्रि में विद्वानों द्विजों को न्यौतकर उनसे इन्द्र एवं अन्य लोकपालों सहित वनस्पतियों के निमित्त यथाशक्त्य हवन करवाएं।

अग्निपुराणकार का कथन है- इन्द्रादेरधिवासेऽथ होम: कार्यो वनस्पते:। ऋग्यजु: साममन्त्रैश्च वारुणैर्मत्तभैरवै:॥ वृक्षवेदिककुम्भैश्च स्नपनं द्विजपुङ्गवा:। तरुणां यजमानस्य कुर्युश्च यजमानक:॥ (वही ४-५)

तत: शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम्।
[illegible]कांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम्।
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम्॥ १० ॥

हवन के पश्चात् दूध देने वाली एक गाय को लाकर उसे श्वेताम्बर धारण करवाएँ। उसके सिर पर स्वर्णशृङ्ग से सिंगार करवाएँ। उसका दोहन करने के लिए काँसे की दोहनी वहाँ रखें। इस प्रकार उस शोभायमान गो को उत्तर में मुखरख कर खड़ी करें और वृक्षों के मध्य से गुजारें।

ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकै: ।
ऋग्यजु:साममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा।
तैरेव कुम्भै: स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मण पुङ्गवा: ॥ ११ ॥

इस गोगमन के अवसर पर श्रेष्ठ ब्राह्मण वाद्यवादन व मङ्गलगीतों के साथ ही अभिषेक के मन्त्रों का उच्चारण करते रहें अर्थात् ऋग्वेद, यजु एवं सामवेद से वरुण से सम्बद्ध ऋचाओं का पाठ करें। इस पाठ के साथ ही वे उन कलशों के जल से यजमान का अभिषेक करें।

स्नात: शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत्।
गोभिर्विभवत: सर्वानृत्विजस्तान् समाहित: ॥ १२ ॥

जब अभिषेक हो जाएं तब यजमान श्वेत परिधान धारण करें और अपने सामर्थ्य के अनुसार गो, स्वर्णसूत्रादि से ऋत्विजों का बहुमान करें।

अग्निपुराणकार का कथन है-भूषितो दक्षिणां दद्याद्गोभूभूषणवस्त्रकम्। (वही ६)

हेमसूत्रै: सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकै: ।
वासोभि: शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकै: ।
क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम्॥ १३ ॥

उन ऋत्विजों को स्वर्ण शृंखला, कड़े, अङ्गुठी, पवित्री, वस्त्र, शय्या, शय्या के लिए उपयुक्त सामान एवं पादुकाएं देकर पूजन करें। उनको चार दिन तक दूध की खीर के साथ भोजन करवाएं।

होमश्च सर्षपै कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः।
दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तितः॥ १४॥

इसी प्रकार वहाँ पर सरसो के दाने, यव और कृष्ण तिलों से होम सम्पन्न करवाएँ। इस होम के लिए पलाश की समिधा उत्तम स्वीकारी गई है। इस होमे के बाद चौथे दिवस विशेष उत्सव का आयोजन करें। इस अवसर पर भी आगंतुकों को यथाशक्ति पुनः दान-दक्षिणा प्रदान करें।

अग्निपुराणकार ने कहा है— क्षीरेणभोजनम् दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम्॥ होमस्तिलाज्यै कार्यस्तु पलाशसमिधैस्तथा। आचार्ये द्विगुणं दद्यात्पूर्ववन्मण्डपादिकम्॥ पापनाशः परा सिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया। (वही ६-८)

यद् यदिष्टतमं किञ्चित् तत्तद् दद्यादमत्सरी।
आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १५॥

अपने को जो भी वस्तुएं प्रिय हों, उनके प्रति ईष्या या लगाव का विचार त्याग कर उन सभी वस्तुओं का दान करना चाहिए। आचार्य को दोगुना दान प्रदान करें और प्रणाम निवेदन कर यज्ञायोजन का विसर्जन करें।

अथ फलाफलम्-

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सवं बुधः।
सर्वान् कामानवाप्नोति फलं चानन्त्यमश्नुते॥ १६॥

जो ज्ञानीजन पूर्वोक्त विधि से वृक्षोत्सव आयोजित करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती है और वह अक्षय फल का हिस्सेदार होता है।

यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः।
सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयम्॥ १७॥

हे राजेन्द्र मनु! इस विधि से जो कोई एक वृक्ष भी लगाता है, वह तीस इन्द्रों के कार्यकाल तक स्वर्गलोक में निवास करता है।

भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् द्रुमसम्मितान्।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १८॥

द्रुमों का रोपण करने वाला व्यक्ति जितने पेड़ लगाता है, वह अपने पूर्व की और पीछे की उतनी ही पीढ़ियों का उद्धार करने वाला होता है। उसकी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती, उसे दुर्लभ सिद्धि सुलभ होती है।

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।
सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते॥ १९॥

जो कोई व्यक्ति नित्यप्रति इस वृक्षारोपण प्रसङ्ग को सुनता है या सुनाता है, वह भी देवताओं से समाद्रत, सम्पूजित होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृक्षोत्सवो नामैकोनषष्टिमोऽध्यायः॥५९॥

●

परिशिष्टम्-६
अथ मात्स्योक्त वृक्षवैकृत्यम्
गर्ग उवाच-

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः।

रुदन्तो वा हसन्तो वा स्त्रवन्तो वा रसान् बहून्॥ १॥

महर्षि गर्ग ने (अत्रि के प्रश्न पर) कहा कि जिन गाँवों में दैविक कारणों से वृक्ष स्वतः रुदन करते प्रतीत होते हों या हँसते हो या बहुत मात्रा में रस स्रावित करते हों (तो यह जानना चाहिए कि वह वृक्ष किस उत्पात को अभिव्यक्त कर रहा है)।

विष्णुधर्मोत्तर में भी यह अध्याय उपलब्ध है। वहां यह श्लोक इस रूप में है- पुरेषु येषु दृष्यन्ते पादपा दैवचोदिताः। रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रुवन्तो वा बहून्रसान्॥ (२, २३७, १)

अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्त्यथ द्रुमाः।

फलं पुष्पं तथाकाले दर्शयन्ति त्रिहायनाः॥ २॥

बिना किसी रोग या हवा के यदि कोई वृक्ष शाखाओं को गिरा देता हो, तीन साल के अंदर ही कोई वृक्ष फल या फूल देने लगता हो।

विष्णुधर्मोत्तर में किञ्चित पाठान्तर है- पुरोगवा विना वासं शाखां मुञ्चन्त्यसंश्रमात्। फलपुष्पं तथा बाला दर्शयन्ति त्रिहायनाः॥ (वही २)

पूर्ववत् स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथान्तरे।

क्षीर स्नेहं तथा रक्तं मधु तोयं स्त्रवन्ति च॥ ३॥

इसी प्रकार अकाल ही कोई वृक्ष ऋतुकाल तुल्य फल व पुष्पों से आच्छादित लगता हो तथा दूध, तेल, रक्त, शहद या जल का स्राव करने लगता हो।

विष्णुधर्मोत्तर का पाठ है- सर्वावस्थां दर्शयन्ति फलपुष्पमथाभवम्। क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं मधु तोयं स्त्रवन्ति च॥ (वही ३)

शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः।

उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः॥ ४॥

तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकं फलमेव च।

अथवा रोग के बिना ही पेड़ यदि सूखने लगा हो, सूखा हुआ पेड़ पुनः अङ्कुरित

होने लगा हो, गिरा हुआ पेड़ उठ खड़ा हुआ हो अथवा खड़ा पेड़ धराशायी हो गया हो तो वहाँ जो परिणाम होंगे, उनको मैं कह रहा हूँ-

।विष्णुधर्मोत्तर में ये श्लोक यथावत है। (वही ३-४)

रोदने व्याधिमभ्येति हसन देशविभ्रमम्॥ ५॥

शाखाप्रपतनं कुर्यात् संग्रामे योधपातनम्।

बालानां मरणं कुर्युरकाले पुष्पिता द्रुमाः॥ ६॥

हे ब्रह्मन्! वृक्षों के रुदन से व्याधियों का प्रसार होता है। हँसने पर देश में विभ्रम की स्थिति उपजती है, अकारण ही शाखाओं के गिरने पर संग्राम में योद्धाओं का विनाश मानना चाहिए और असमय पेड़ों के फूलने पर बालकों के मरण की आशंका होती है।

वराहमिहिर ने भी गर्ग मत से ही वृक्षवैकृतम् को लिखा है— शाखामङ्गेऽकस्माद्-वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम्। हसने देशभ्रंश रुदिते च व्याधिबाहुल्यम्॥ राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले। वृक्षात् क्षीरस्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति॥ बृहत्संहिता ४६, २५-२६, विष्णुधर्मोत्तर में पाठभेद इस प्रकार है- रोदने व्याधिमाख्याति हसने देशविप्लवम्॥ शाखाप्रपतने कुर्यात्संग्रामे योऽधपातनम्। बालानां मरणे कुर्याद्वालानां फलपुष्पता॥ (वही ५-६)

स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फल-पुष्पमथान्तरे।

क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम्॥ ७॥

वृक्षों के समूह में फलने-फूलने का परिणाम देशों के बीच मतभेद से जानना चाहिए। यदि गोदुग्ध का स्राव होता है तो क्षय की आशंका होती है और तेल बहता है तो अकाल पड़ेगा, ऐसा समझें।

भटोत्पल्ल ने बृहत्संहिता की विवृत्ति में इस श्लोक को गर्ग मत से इस प्रकार उद्धृत किया है- स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनातर्वम्। बालानां मरणं कुर्याद्वालनां फलपुष्पजम्॥ वही २६ पर उद्धृत, विष्णुधर्मोत्तर में पाठभेद इस प्रकार है- स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पसनातनम्। क्षयं सर्वत्रगे क्षीरे स्नेहे दुर्भिक्ष लक्षणम्॥ (वही ७)

वाहनापचयं मद्ये रक्ते सङ्ग्राममादिशेत्।

मधुस्त्रावे भवेद् व्याधिर्जलस्त्रावे न वर्षति॥ ८॥

मद्य के स्राव से वाहन-परिवहन विषयक विनाश और रक्तस्राव से घमासान संभावित होता है। मधुस्राव से व्याधि तथा जलस्राव से वृष्टि का अभाव होता है।

वराह ने भी कहा है— मद्ये वाहननाशः सङ्ग्रामः शोणिते मधुनि रोगः। स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःस्रुते सलिले॥ वही २७, विष्णुधर्मोत्तर में किञ्चित पाठांतर है- वाहनापचयं मध्ये रक्ते संग्राममादिशेत्। मधुस्त्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्त्रावेण वर्षति॥ (वही ८)

अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् दुर्भिक्षलक्षणम्।
शुष्केषु सम्प्ररोहस्तु वीर्यमन्नं च हीयते॥ ९॥

रोगाभाव में पेड़ों के सूखने से दुर्भिक्ष होता है तथा सूखे हुए पेड़ से पत्तों का फूटना बल-पराक्रम एवं अन्न निष्पत्ति को खतरा बढ़ता है।

(विष्णुधर्मोत्तर में यही पाठ है। वही ९)

उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत्।
स्थानात् स्थानं तु गमने देशभङ्गस्तथा भवेत्॥ १०॥

गिरकर पुनरूत्थान को प्राप्त पेड़ भेद एवं भय का द्योतक है जबकि स्थानांतरित हो जाने की दशा में देश विभाजन की पीड़ा भोगनी पड़ सकती है।

वराह का मत है— शुष्कविरोहे वीर्यान्नसङ्क्षय: शोषणे च विरुजानाम्। पतितानामुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च॥ सर्पस्तु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसङ्क्षयो विनिर्दिष्ट:। वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासै: फलविपाक:॥ वही २८ एवं ३०, विष्णुधर्मोत्तर में अन्तिम पङ्क्ति इस प्रकार है- स्थानात्स्थानाचुरङ्गाणां देशभङ्गं तथादिशेत्॥ (वही १०)

ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुद्रत्स्वपि धनक्षयम्।
एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते॥ ११॥

आकस्मिक रूप से पेड़ यदि जलने लगे या रुदन करने लगे तो सम्पति का क्षय मानना चाहिए। वृक्षों के ये उपद्रव यदि पूजान्तर्गत रहे वृक्षों में दिखाई देते हैं तो राजा पर निश्चय ही आपदाएँ आती हैं।

वराह ने इस मत को इस प्रकार लिखा है- पूजितेवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपबधाय निर्दिष्टम्। धूमस्तस्मिन् ज्वालाऽथवा भवेन्नृपबधायैव॥ वही २९, विष्णुधर्मोत्तर में यह पाठ है— जल्पत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम्। एतत्पूजित वृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपच्यते॥ (वही ११)

अथ शान्तिप्रकारा:

पुष्पे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत्।
अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रित:॥ १२॥

पेड़ों के पुष्पों व फलों में विकृतियाँ दिखाई दे तो राजा का विनाश जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्य वैकृत भी हो सकते हैं, जिनका योग्यजनों को परीक्षण करना चाहिए।

विष्णुधर्मोत्तर में 'वृक्षेषु' की अपेक्षा 'युक्तेषु' पाठ है। (वही १२)

आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्।
वृक्षोपरि तथा च्छत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये॥ १३॥

ज्ञानियों को वृक्षोत्पात को जानकर सम्बन्धित वृक्ष को शिखर से ढककर चंदनादि से आलेपित करना चाहिए और मालाएँ डाल सजावट करनी चाहिए। पाप की शान्ति के लिए वृक्ष के उपर छत्र स्थापित करना चाहिए।

वराह का भी यही निर्देश है— स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य छत्रं विधायोपरि पादपस्य। वही ३१, विष्णुधर्मोत्तर में अन्तिम पङ्क्ति में 'कुर्यात्तापप्रशान्तये' पाठ है। वही १३)

शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्।

रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः॥ १४॥

इसी प्रकार उपद्रवों के शमन के लिए शिव की पूजा कर पशुओं को 'रुद्रेभ्यः' मन्त्र के साथ निवेदन करना और पश्चात् रुद्र का जप करना चाहिए।

वराह का भी यही अभिमत है— कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडेव होमा॥ वही ३१, विष्णुधर्मोत्तर में अन्तिम पङ्क्ति इस प्रकार है— मूलेभ्य इति षण्माषान्हुत्वा रुद्रीं जपेत्तथा॥ (वही १४)

मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात्।

गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्तु देवं हरं पापविनाशहेतोः॥ १५॥

इसके बाद शहद तथा घृत मिश्रित खीर से विप्रों को संतुष्ट करना चाहिए। उन्हें भूमिदान करते हुए गीत, नृत्य, अर्चनादि आयोजनों से शिव से पाप के विनाश का आह्वान करना चाहिए।

वराहाचार्य का कथन है— पायसेन मधुनापि भोजयेद्ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः। मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते हितार्थिभिः॥ (वही ३२, विष्णुधर्मोत्तर में भी यही पाठ है। वही १५)

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशमनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३२॥

(विष्णुधर्मोत्तर में अध्यायांत इस प्रकार किया गया है— इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरे द्वितीयखण्डे मार्कण्डेयवज्रसंवादे रामं प्रति पुष्करोपाख्याने औत्पातिके वृक्षवैकृत्यवर्णनो नाम सप्तत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः॥ १३७॥)

उपस्कारक ग्रंथ

अग्निपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक- तारणीश झा व घनश्याम त्रिपाठी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1998 ई.

अथर्ववेद : अनुवादक- श्रीरामशर्मा, गायत्री शक्तिपीठ, हरिद्वार 2000 ई.

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास विरचित, संपादक एम. आर. काले, मोतीलाल बनारसीदास, दशम संस्करण 1980 ई.

अर्थशास्त्र : कौटिल्य चाणक्य विरचित, संपादक टी. गणपति शास्त्री, टीका शामा शास्त्री, मद्रास, 1920 ई.

अष्टाङ्गहृदय : वाग्भट्ट कृत तथा पं. शिव शर्मा कृत शिवदीपिका टीका, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई 1997 ई.

अष्टादशस्मृति : सर्वधर्म निरूपण सहित, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई तथा बीस स्मृतियाँ : संपादक - श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेद नगर, बरेली 1994 ई.

उत्तराध्ययनसूत्र : मैक्समूलर कृत सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट सिरीज में हरमन जैकोबी संपादित खण्ड 45

ऋग्वेद: अनुवादक- श्रीरामशर्मा, गायत्री शक्तिपीठ, हरिद्वार 2000 ई.

ऐतरेय ब्राह्मण - एक अध्ययन : नाथूलाल पाठक, रोशनलाल जैन एण्ड संस, जयपुर 1966 ई.

कथासरित्सागर : सोमदेव भट्ट प्रणीत, संपादक जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1977 ई.

कृषिपराशर : पराशर मुनि प्रणीत, अनुवादक- चौधरी नारायणसिंह, जयभारत प्रेस बनारस, 1971 ई.

कादम्बरी : बाणभट्ट विरचित संपादक- पीटर पीटर्सन, पूना, एवं कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन - वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, बनारस, 1996 ई.

कामसूत्र : वात्स्यायन विरचित एवं यशोधरकृत जयमङ्गला टीका, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई 1920 ई.

कालिकापुराण : नाग पब्लिशर्स, जवाहरनगर, दिल्ली 1999 ई.

काश्यपीयकृषिसूक्ति : जी. वोत्तेला कृत अंग्रेजी अनुवाद-ए संस्कृत वर्क ऑन एग्रीकल्चर-2, ऑक्टा ऑरियण्टालिया, एकेडमी साइंटिएरम, हंगरी तथा एसएम अयाचित कृत अनुवाद- एग्री हिस्ट्री बुलेटिन 4, एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकन्दराबाद, 2002 ई.

काश्यप संहिता : यतिराज संपतकुमार मुनि द्वारा प्रकाशित मेलकोटे, संस्करण १९३३ ई.

कुमारसंभवम् : कालिदास प्रणीत, संपादक एम. आर. काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली सातवाँ संस्करण 1981 ई.

कौतुकचिंतामणि : पी. के. गोडे कृत स्टडीज इन इण्डियन कल्चरल हिस्ट्री, खण्ड द्वितीय, पुणे 1960 ई. में उल्लिखित

गरुडपुराण : अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर कल्याण के वर्ष 74 का विशेषाङ्क 2000 ई.

ज्योतिषरत्नमाला : श्रीपतिभटाचार्य प्रणीत, संपादक-व्याख्याकार श्रीकृष्ण 'जुगनू' परिमल पब्लिकेशंस, शक्तिनगर, दिल्ली 2004 ई.

ज्योतिर्निबन्ध : शूरमहाठश्रीशिवराज विनिर्मित, संशोधक- रङ्गनाथ शास्त्री व प्रकाशक विनायक गणेश आप्टे, आनन्दआश्रम संस्कृत ग्रंथावलि क्रम 85, 1919 ई.

तैत्तिरीयसंहिता : सायण भाष्य सहित, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरिज, पूना 1931 ई.

नरपतिजयचर्यास्वरोदय : नरपतिकवि प्रणीत, संपादक गणेशदत्त तिवारी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1999 ई. का संस्करण

नारदपुराण : अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 28 का विशेषाङ्क 1954 ई.

नीतिवाक्यामृत : सोमदेव सूरि विरचित, माणिकचंद जैन ग्रन्थमाला, हीराबाग, मुम्बई विक्रमाब्द 1979, 1922 ई.

नीलमतपुराण : डॉ. काणे उल्लिखित

नैषधीयचरितम् : श्रीहर्ष विरचित, संपादक महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त, मुम्बई 1907 ई.

पद्मपुराण - अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 19 का विशेषाङ्क 1945 ई.

बृहत्कथाश्लोकसंग्रह : संपादक वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी 1974 ई.

बृहद्धर्मपुराण : वेदव्यास, संपादक- हरप्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस कृ.सं.सी. क्रम 18

ब्रह्मपुराण : वेदव्यास, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 21 के विशेषाङ्क के रूप में मार्कण्डेयपुराण के साथ प्रकाशित 1947 ई.

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण : अनुवादक पं. श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री 'राम' एवं रामाधार शुक्ल गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण के वर्ष 37 का विशेषाङ्क 1963 ई.

बृहत्संहिता : वराहमिहिर- भट्टोत्पलीयविवृति सम्पादक- सुधाकरद्विवेदी पुनर्संपादन कृष्णचंद्र द्विवेदी, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस, 1996, हिंदी अनुवाद अच्युतानंद झा, चौखम्बा प्रकाशन, बनारस संस्करण 1997 ई.

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् : दैवज्ञरामदीन, खेमराजकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1925 तथा डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी कृत अनुवाद, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2001 ई.

बृहद्वास्तुमाला : पं. रामनिहोर द्विवेदी कृत, संपादक ब्रह्मानंद त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९८

बृहद्वास्तुमालाप्रयोग : हरिशङ्कर पाठक संपादित, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, 1992-93 ई.

भविष्यपुराण : अनुवाद संयोजक महाप्रभुलाल गोस्वामी, गीताप्रेस गोरखपुर के कल्याण के 66वें वर्ष का विशेषाङ्क 1992 ई.

भागवतमहापुराण : वेदव्यासकृत, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण 1999 ई.

मनुष्यालयचन्द्रिका : संपादक टी. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्र संस्कृत सीरीज 1919, अनुवादक - डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, न्यू चंद्रावल, दिल्ली संस्करण 2004 ई.

मत्स्यपुराण : वेदव्यास विरचित, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण का विशेषाङ्क 1985 ई.

मनुस्मृति : अनुवादक- गणेशदत्त पाठक, ठाकुर प्रसाद बुक सेलर, वाराणसी,

संस्करण 1991 ई.

मयमतम् : मयमुनि विरचित संपादक टी. गणपतिशास्त्री, अनंतशयन ग्रंथावली, तिरुवनंतपुरम् 1919 ई. भाषाटीका श्रीकृष्ण जुगनू, प्रकाशनाधीन.

महाभारत : वेद व्यास प्रणीत, गीताप्रेस गोरखपुर वि.सं. 2025 तृतीय संस्करण एवं पी. सी. राय सम्पादित, कलकत्ता, 1881 ई.

मानसार (सीरिज का तृतीय खण्ड) : संपादक प्रसन्नकुमार आचार्य, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, संस्करण 1995 ई.

मार्कण्डेयपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, सहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण 1983 ई.

मालविकाग्निमित्रम् - कालिदास प्रणीत, श्रीरामषारकविदुषा विरचित सारार्थदीपिका सहित, संशोधक शङ्करराम शास्त्री, श्रीबालमनोरमा मुद्रायंत्रालय, मद्रास, संस्करण 1929 ई.

मेघदूत - कालिदास प्रणीत एवं मल्लिनाथ कृत टीका संपादक- एम. आर. काले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 1983 ई.

यजुर्वेद : अनुवादक- श्रीरामशर्मा, गायत्री शक्तिपीठ, हरिद्वार, संस्करण 2000 ई.

याज्ञवल्क्यस्मृति : व्याख्याकार उमेशचंद्र पाण्डेय चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी 1967 ई. तथा विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षरा व्याख्या व हिंदी टीका पं. दुर्गाधर झा, भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, संस्करण 2002 ई.

रघुवंश : कालिदास विरचित, संपादक गोपाल रघुनाथ नन्दर्जिकर, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पञ्चम संस्करण 1982 ई.

रत्नावलीनाटिका : संपादक गिरीश विद्यारत्न, यन्त्रालय कोलकता, शकाब्द 1821 तथा भूषणाख्य भाषा टीका समलङ्कृत, व्रजरत्न भट्टाचार्य, भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, संस्करण 1997 ई.

राजवल्लभवास्तुशास्त्रम् : सूत्रधार मण्डन विरचित, टीकाकार डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' प्रकाशनाधीन

लिङ्गपुराण : वेदव्यास प्रणीत, संपादक- जीवानंद विद्यासागर, कोलकता, संस्करण 1885 ई.

लीलावती- भास्कराचार्य, संपादक- रामचन्द्र पाण्डेय, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण 1993 ई.

वराहपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण का विशेषाङ्क 1977 ई.

वामनपुराण : वेदव्यास प्रणीत अनुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, कल्याण का विशेषाङ्क 1982 ई.

वाल्मीकीयरामायण : अनुवादक– रामनारायण त्रिपाठी राम, गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण २००४ ई.

वायुपुराण : वेदव्यास प्रणीत, अनुवादक रामप्रताप त्रिपाठी– हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1987 ई.

वास्तुप्रदीप : दैवज्ञ वासुदेव प्रणीत, विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी संपादित वास्तु रत्नाकर, चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस 1997 ई. में उद्धृत

वास्तुरत्नाकर : विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, सप्तम संस्करण 1997 ई.

विष्णुपुराण : पराशर मुनि विरचित, अनुवादक– मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस गोरखपुर, बीसवाँ संस्करण 1998 ई.

विश्वकर्माप्रकाश : विश्वकर्मा प्रणीत, भाषाकार मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण 1998 ई.

विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद : चक्रपाणि मिश्र विरचित, संपादक– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', 'महाराणा प्रताप का दरबारी पण्डित चक्रपाणि मिश्र और उसका साहित्य' में प्रथमग्रंथ, महाराणा प्रताप स्मारक समिति, उदयपुर 2002 ई.

विष्णुधर्मोत्तरमहापुराण : कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत, संपादक– मधुसूदन माधवप्रसाद शर्मा, खेमराजकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1911–12 ई. पुनर्संपादन– नागशरणसिंह, नाग पब्लिकेशन, जवाहर नगर, दिल्ली, संस्करण 1998 ई.

वृक्षायुर्वेद : अंग्रेजी अनुवाद– नलिनी सांधले, वाई.एल. नेने, एशियन एग्रो हिस्ट्री फाउण्डेशन, सिकन्दराबाद, एएएचएफ-बुलेटिन संख्या 1, 1996 ई.

शतपथब्राह्मण : माध्यंन्दिन, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई 1940 ई., हिंदी अनुवाद गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, प्राचीन वैज्ञानिक अध्ययन अनुसंधान संस्थान, दिल्ली 1967 ई. विज्ञानभाष्य पं. मोतीलाल शर्मा, श्रीबालचन्द्र यन्त्रालय, मानवाश्रम, दुर्गापुरा, जयपुर, संस्करण 1956 ई.

शार्ङ्गधरीय उपवनविनोद : संपादक–अनुवादक डॉ. मजूमदार, इण्डियन रिसर्च

इंस्टीट्यूट, कोलकाता, संस्करण 1935 ई.

शार्ङ्गधरीय उपवनविनोद : अनुवाद-डीबी बोर्कर - बोर्कर ग्रंथमाला में प्रकाशित पुणे (महाराष्ट्र)

शार्ङ्गधरपद्धति : संपादक- पीटर पीटर्सन, निर्णयसागर प्रेस मुम्बई, संस्करण 1915 ई.

शालभञ्जिका : उदयनारायण राय, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1993 ई.

शिल्परत्नम् : श्रीकुमार प्रणीत, संपादक- टी. गणपतिशास्त्री व साम्बशास्त्री, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरिज, तिरुवनंतपुरम् 1919 ई.

शिल्पशास्त्र : संपादक- फणीन्द्रनाथ बोस, इण्डोलॉजीकल बुक हाऊस, जवाहरनगर, दिल्ली, पुनर्प्रकाशित 1978 ई.

शुक्रनीति : शुक्राचार्य प्रणीत, व्याख्याकार- ब्रह्मशङ्कर मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, बनारस चतुर्थ संस्करण 1999 ई.

सङ्ग्रहशिरोमणि : पं. सरयूप्रसादद्विवेदिनासङ्गृहीता तथा कमलाकान्तशुक्ल संपादित महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ग्रन्थमाला, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1996 ई.

समराङ्गणसूत्रधार : धाराधिपभोज प्रणीत, संपादक टी. गणपति शास्त्री, बड़ोदा ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा 1925 ई.

सुश्रुतसंहिता : पं. मुरलीधर शर्मा राजवैद्य कृत सान्वय टीका, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई 1998 ई.

स्कंदपुराण : वेदव्यास विरचित, गीताप्रेस गोरखपुर के मुखपत्र कल्याण के 25वें वर्ष का वार्षिकाङ्क 1951 ई.

हरिवंशपुराण : वेदव्यास प्रणीत, टीकाकार- रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', गीताप्रेस गोरखपुर 1999 ईस्वी तथा हरिवंशपुराण का सांस्कृतिक विवेचन : डा. वीणापाणि पाण्डे, सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ 1960 ई.

हर्षचरित : वाणभट्ट प्रणीत, संपादक पी. वी. काणे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 1973 ई.

अन्य शोध प्रबंध व ग्रंथ

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी : हिन्दूराजशास्त्र, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 1949 ई.

आनंद के. कुमारस्वामी : यक्षाज़, मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, संस्करण 1971 ई.

कपिलदेव द्विवेदी : अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर-वाराणसी, 1988 ई.

कृष्णाकुमारी श्रीवास्तव : पाली जातक-एक सांस्कृतिक अध्ययन, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ 1984 ई.

जगदीशचंद भट्ट : रामायणकालीन समाज एवं संस्कृति, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली 1982 ई.

डी.एन. झा : प्राचीन भारत : एक रूपरेखा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1995 ई.

दोहद ए फोक कस्टम ऑफ ऐन्शिएण्ट इण्डिया, हिस्ट्री एण्ड कल्चर : बी. पी. सिन्हा, फेलिसिटेशन वॉल्यूम, रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली 1987 ई.

धुनीराम त्रिपाठी: प्राच्यभारतीयम् ऋतुविज्ञानम्, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2002 ई.

पाण्डुरङ्ग वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थभाग हिंदी अनुवाद अर्जुन चौबे काश्यप, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ 1996 ई.

एफ. ई. पार्जीटर : एन्शिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, ऑक्सफोर्ड, संस्करण 1922 ई.

राजबलि पाण्डे : प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1999 ई.

राधाकुमुद मुखर्जी : अशोक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1995 ई.

राधाकुमुद मुखर्जी : चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1990 ई.

रामशङ्कर भट्टाचार्य : इतिहास-पुराण का अनुशीलन, इंडोलोजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1963 ई.

भदंत आनन्द कौशल्यायन : जातक, हिंदी अनुवाद, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, वि.सं. 1941-2013

पाण्डुलिपियाँ

काश्यपीयकृषिसूक्ति : काश्यप मुनि विरचित, अड्यार लायब्रेरी, चैन्नई में संगृहीत।

मयूरचित्रकम् : सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी में संगृहीत पाण्डुलिपि।

मानसोल्लास : भूलोकमल्ल सोमेश्वर प्रणीत, भण्डारकर ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना और प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में संगृहीत।

मेघमाला : रुद्रयामलान्तर्गत, सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी में संकलित।

वनमाला : दैवज्ञ जीवनाथ झा विरचित, सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी में मौजूद पाण्डुलिपि।

वस्तुविज्ञानरत्नकोश : अज्ञातकर्तृक, उदयपुर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान कार्यालय में संगृहीत।

वास्तुमण्डनम् : सूत्रधार मण्डन कृत वास्तुग्रंथ जिसमें वाटिकादि निर्माण विषयक जानकारी है। इसका मैंने प्रकाशन योग्य पाठ तैयार कर लिया है। बड़ोदा के ऑरियण्टल इंस्टीट्यूट में संगृहीत।

वृक्षायुर्ज्ञानम् : कोटेश्वर दशोरा संगृहीत, उदयपुर के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान कार्यालय में संगृहीत।

शार्ङ्गधरसंहिता : महाराजा हमीर के दरबारी शार्ङ्गधर कृत इस ग्रंथ की विभिन्न प्रतियों का अध्ययन उपवनविनोद के पाठ के लिए किया गया। उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में संगृहीत।

सिंहासनद्वात्रिंशिका : पुरोहित गिरिवर कृत प्रतिलिपि, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर कार्यालय में संगृहीत।

अकरादिक्रमानुसार श्लोकानुक्रमणिका

य

र

ल

व

श

स

ह

Some Important Books

Aphrodisiac Therapy-Vājiikaraṇa Tantra.
By Prof. (Dr.) Gyanendra Pandey (B. A. S. 17) 775.00

Ārogya Rakṣā Kalpadrumaḥ. (Kerala's Tradition of Ayurvedic Pediatric Care) Text with English Trans. By Dr. Lal Krishnan (B. A. S. 34) 650.00

Aṣṭāṅga Saṃgraha of Vāgbhaṭa's. Text with English Translation, Notes, Index & Sloka Index.
By Dr. P. Srinivas Rao. Comp. in 3 Vols. 1800.00
Vol. I (Sūtrasthāna) 425.00
Vol. II (Sarira, Nidana, Cikitsa & Kalpa Sthana).600.00
Vol. III Uttar Sthana (K. A. S. 106) 775.00

Atharvaveda And Ayurveda.
Dr. V. W. Karmbelkar (K. A. S. 96) 300.00

Bhāvaprakāśa. Composed by Vaidya Bhavamiśra.
Text with English Translation, Notes, Index & Appendixes .
By Prof. K. R. Srikanthamurthy
Complete in 2 Vols. (K. A. S. 45) 2025.00
Vol. I. Prathama Khaṇḍa including Nighaṇṭu Bhāga. 950.00
Vol. II. Madhya and Uttara Khanda. 1075.00

Bhaiṣajyaratnāvalī. (Reknowned Treatise Applied on Pharmaceutical Therapeutics in Medical Practice).
Text with English Commentary and Supplements.
By. (Prof.) Dr. Gyanendra Pandey.
Vol. I 950.00 Vol. II 1200 & Vol. III 1350.00
Complete Set (B. A. S. 8) 3500.00

Caraka Saṃhitā : Text in Sanskrit with a New English Translation and Critical Notes Based on Cakrapāni's **Āyurvedadīpikā**
by Dr. Ramkaran Sharma & Vaidya Bhagwan Dash.
Comp. in 7 Vols (C. S. St. 94) 3050.00
Vol. I Sūtra Sthāna 500.00
Vol. II Nidāna to Indriya Sthāna 500.00
Vol. III Cikitsā Sthāna chap. [illegible] (V 500.00
Vol. IV Cikitsā Sthāna chap. XV-XXVI 500.00
Vol. V Cikitsā Sthāna chap. XXVII-XXX 300.00
Vol. VI Kalpa & Siddhi Sthāna 450.00
Vol. VII Śloka Index 300.00
Śārīra Sthāna 200.00

Mādhavanidānaṃ of Sri Mādhavakara. Sanskrit Text and Madhukośa Commentary with English Translatiȯn and Glossary. By Dr. P. H. C. Murthy. (Complete in 2 Vols.) 700.00
Vol. I Purvardha (B. A. S. 31) 350.00
Vol. II Uttarardha 350.00

Pancakarma Therapy (Ancient Classical Concepts, Traditional Practices, Recent Advances and Guidelines of Standard Practice). Second Revised & Enlarged Edition. by Prof. R. H. Singh & Foreward by Prof. P.V. Sharma (C. S. St. 104) 335.00

Prasuti Tantra (Text Book as per CCIM Syllabus) By Bharati Kumaramangalam Editor Uttama Vaidya Pammi Satyanarayana Sastri Preface by Prof. (Km.) Premvati Tewari (K. A. S. 122) 275.00

Rasaśāstra. The Mercurial System with Colour Photographs, Appendices on Analytical techniques, Values, N.P.S.T.; G.M.P.; Pharmaceutical guidelines; Minerological description and list of P.G. dissertations and Ph.D. Theses on the subject. By P. Himasagara Chandra Murthy. H.B. 600.00 (B. A. S. 49) P.B. 495.00

Rasendrasārasaṅgrah of Sri Gopal Krishna. Text with Eng. Trans., Notes Index & Appendixes by Dr. Ashok D. Satpute (K. A. S. 85) 475.00

Rasaratna Samuccaya of Sri Vagbhatacarya. Translation and Commentary in English. By Dr. V. A. Dole. Foreword by Dr. Siddhinandan Mishra (B. A. S. 33) 300.00

Roga Vijñāna & Vikriti Vijñāna. (According to C. C. I. M. Syllabus) Foreworded by Padmasri Dr. K. Rajagopalan, Author Dr. Manoj Sankaranarayana. (B. A. S. 39) H.B. 425.00

Sahasrayogam. Text with English Translation. (A Popular Book on Keraliya Tradition of Ayurvedic Treatment) By Dr. K Nishteswar & Dr. R. Vidyanath (B. A. S. 18) 450.00

Sālākya Tantra. English By Dr. K. Nishteshwar & R. Vidyanath & K. Vijaya Kumari, with colour illustrations. Comp. (B. A. S. 54) 625.00
(Paper-I Netraroga Vijñāna) 275.00
(Paper-II E.N.T. & Head Disorders) 350.00

Sārṅgadhara Samhitā of Śārṅgadharācārya. Text with English Translation, Notes and Appendixes. By P. H. C. Murthy (C. S. St. 113) 400.00

***

चरक संहिता

श्रीचक्रपाणिदत्तविरचित 'आयुर्वेददीपिका' व्याख्या एवं 'आयुर्वेददीपिका' की 'तत्त्वप्रकाशिनी' हिन्दी व्याख्या तथा यत्र-तत्र श्रीगङ्गाधरकविरत्नकृत 'जल्पकल्पतरु' की हिन्दी व्याख्या एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

तत्त्वप्रकाशिनी व्याख्याकार—**डॉ. लक्ष्मीधर द्विवेदी**

सह व्याख्याकार—**डॉ. बी. के. द्विवेदी, डॉ. पी. के. गोस्वामी**

चरक संहिता आयुर्वेद का सर्वमान्य आकर ग्रन्थ है। आचार्य अग्निवेश कृत तन्त्र का प्रतिसंस्कार कर आचार्य चरक ने इसे चरक संहिता का रूप दिया जो अधुना आयुर्वेद जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। चरक संहिता की अनेक टीकायें की गई जिनमें आचार्य चक्रपाणिदत्त विरचित 'आयुर्वेददीपिका' अति लोकप्रिय टीका है। परन्तु टीका की भाषा संस्कृत में होने के कारण कतिपय आयुर्वेद के शिक्षक, विद्यार्थी इसके पूर्णभाव को समझ नहीं पाते थे, अतः आयुर्वेददीपिका की हिन्दी व्याख्या की आवश्यकता बनी रही। इस कार्य को संस्कृत व आयुर्वेद दोनों के मर्मज्ञ व्यक्ति ही करने में सक्षम हो सकते हैं। इस दुरुह कार्य को डॉ. लक्ष्मीधर जी द्विवेदी, अवकाश प्राप्त विभागाध्यक्ष संहिता विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने विद्वतापूर्वक पूर्ण किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में चक्रपाणिदत्त विरचित 'आयुर्वेददीपिका' की तत्त्वप्रकाशिनी हिन्दी व्याख्या विशद रूप में की गई है तथा यत्र तत्र कविराज गंगाधरकृत ''जल्पकल्पतरु'' टीका की भी हिन्दी व्याख्या की गई है जिससे इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ जाती है। इस ग्रन्थ की तत्त्वप्रकाशिनी व्याख्या की भाषा सरल व सुगम है।

इस ग्रन्थ में—

1. चरक संहिता का मूल पाठ व उसकी हिन्दी व्याख्या।
2. चक्रपाणि विरचित आयुर्वेददीपिका का मूल पाठ व उसकी तत्त्वप्रकाशिनी हिन्दी व्याख्या की गई है।
3. चरक संहिता का श्लोकानुक्रमणिका दिया गया है जो इस ग्रन्थ को अति उपयोगी बना दिया है।

यह ग्रन्थ आयुर्वेद के स्नातक, स्नातकोत्तर विद्यार्थी, शोधार्थी, शिक्षक, अन्वेषक आदि सबके लिए समान रूप से उपयोगी है।

प्रथम भाग (सूत्र स्थान) ४००.००

द्वितीय भाग (निदान, विमान, शारीर एवं इन्द्रिय स्थान) ४७५.००

अन्य स्थान **शीघ्र**

Also can be had from **Chowkhamba Krishnadas Academy**, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-145-1

₹ 175.00